अथ

आयुर्वेद का इतिहास

(पाश्चात्य कल्पनाओं का निराकरणात्मक तथा कालक्रम-प्रदर्शक)

प्रथम भाग

लेखक

कविराज सूरमचन्द्र बी० ए० वैद्यवाचस्पति

प्रकाशक

कविराज सूरमचन्द्र

१२४/१ लोअर बाजार

शिमला

विषय-सूची

भूमिका

सवत् १९९४ मे दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर से मैने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् तीन वर्ष पर्यन्त इतस्तत सस्कृत तथा आयुर्वेद का अध्ययन करता रहा। इस अन्तर में गाजियाबाद मे श्री आनन्द स्वामी जी के सहवास से आयुर्वेद मे अभिरुचि होगई। फलत. सवत् १९९७ में लाहौर पहुँच दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज मे प्रविष्ट हुआ। बी० ए० के दिनो से लाहौर के प्रसिद्ध अनुसन्धान-कर्ता तथा सस्कृत-विद्या के असाधारण ज्ञाता श्री पण्डित भगवद्दत्तजी से समय-समय पर सत्संग करता था। सवत् २००१ से उनका सपर्क अधिक बढा। उन्होने आयुर्वेद का इतिहास लिखने की प्रेरणा की। तब से इस विषय की थोडी-थोडी सामग्री एकत्रित करता रहा। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने अपने वर्षो के अध्ययन की फलरूपी सामग्री अत्यन्त उदारता से मुझे सौंप दी।

उन्ही दिनो आयुर्वेद के स्तम्भ वैद्यवर श्री यादवजी ने मुम्बई से ४।१२।४४ को पण्डित भगवद्दत्त जी को एक पत्र लिखा।

उसमे लिखा था—

आपकी सेवा मे पचास रुपये मनिआर्डर से आयुर्वेद के इतिहास के मुद्रण कार्य में सहायतार्थ भेजे थे। इति।

पण्डित जी को अन्य स्थानो से भी इस काम के लिए पत्र आते थे। मै इस काम में लगा रहा। सन् १९४७ मे भारत के विभाजन के कारण मेरी सब सम्पत्ति और मेरे सब ग्रन्थ पाकिस्तान मे नष्ट हो गए। सन् १९४७ के अक्तूबर मे मै शिमला मे स्थिर हो गया। वही सन् १९४८ के अन्त से मैने इस कार्य को पुनः आरम्भ किया।

मेरे से पूर्व के एतद्विषयक लेखक—इस महान् काम के लिए अपने से पूर्व के एतद्विषयक लेखको के ग्रन्थो का अध्ययन आवश्यक था। अतः उनके ग्रन्थों का मैने पाठ किया। उनमें से प्रधान लेखको और उनकी कृतियो के नाम निम्नलिखित है -

१ फ्रास के डा० पामिर कारडियर के लेख, युर्नल एशियाटीक में. सन् १९०१ से आगे।

२. जर्मनी के डा० जूलिअस जालि का ग्रन्थ Medicin, सन् १९०१ ।

३. बंगाल के श्री प्रफुल्लचन्द्र रे की हिस्टरी आफ हिन्दू कैमिस्टरी, सन् १९०२ मे प्रकाशित ।

४ इंगलेड के डा० रुडल्फ हर्नलि का लेख—सुश्रुत के टीकाकार, रायल एशियाटिक सो० के जर्नल सन् १९०६ मे मुद्रित । तथा आस्टिआलोजि ग्रन्थ, सन् १९०७ में मुद्रित ।

५. बगाली विद्वान् श्री गिरिन्द्रनाथ जी की हिस्टरी आफ इण्डियन मैडिसिन, तीन भागो मे, सन् १९२३, १९२६, तथा १९२९ ।

६ नेपाल देशस्थ श्री राजगुरु हेमराज जी लिखित, काश्यप सहिता का उपोद्घात, सन् १९३८ ।

७. महाराष्ट्र वैद्य श्री हरिशास्त्री पराडकर लिखित, अष्टाग-हृदय की भूमिका, सन् १९३९ ।

८. पंजाबान्तर्गत लाहौर-निवासी श्री हरिदत्त शास्त्री लिखित चरक-संहिता, प्रथम भाग, द्वितीयावृत्ति की भूमिका, सन् १९४० ।

९. मुम्बई-निवासी, श्री यादव शर्मा जी की चरकसहिता, तृतीयावृत्ति की भूमिका, सन् १९४१ ।

१० वगदेशीय श्री दिनेशचन्द भट्टाचार्य जी का लेख—New Light on Vaidyaka Literature, इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, भाग ३३, जून १९४७ में मुद्रित ।

११. मुम्बई-स्थित श्री महेन्द्रनाथ कृत आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास, सन् १९४८ में प्रकाशित ।

१२. जर्मन-देशीय, अमरीका-यूनाइटिड स्टेट्स-विनिर्गत श्री हैनरी आर० सिम्मर कृत—Hindu Medicine, बाल्टीमोर, सन् १९४८ ।

१३. फ्रांस देशवासी श्री जीन फिलिओजट कृत, LA Doctrine Classique De LA Medicine Indienne, सन् १९४९ ।

१४. श्री रघुवीर शरण वैद्य कृत, धन्वन्तरि परिचय, सन् १९५० ।

इन में से कारडियर (१), जालि (२) हर्नलि (४) और सिम्मर (१२) लगभग एक ही प्रकार के ऐतिहासिक तिथि-क्रम को मानते है । हर्नलि का यत्न बहुत अधिक है, पर तिथि-क्रम के समझने में वह सर्वथा असफल रहा है । श्री प्रफुल्लचन्द्र रे (३) जी का यत्न बहुत स्तुत्य है, पर उनका स्वीकृत तिथि-क्रम भी प्रायः अशुद्ध है । श्री गिरिन्द्रनाथ (५) जी का परिश्रम महान् है । यदि वे वेद के सामान्य-नामो का इतिहास के नामों से सम्मिश्रण न करते, तो

उनके परिणाम सत्य के अधिक निकट होते । अगला यत्न श्री राजगुरु हेमराज (६) जी का है । राजगुरु जी ने असाधारण पाण्डित्य का परिचय दिया है । उन के प्राय निष्कर्ष सत्य और युक्त है । उनकी सेवा महती है । पराडकर (७) जी का संक्षिप्त लेख भी उपादेय है । उन्हो ने आयुर्वेद के अष्टाङ्ग-विभाग के ग्रंथकारो का जो वर्गीकरण लिखा है, वह यदि सप्रमाण होता तो वास्तविक महत्त्व का होता । वाग्भट-विषयक उन का मत सर्वथा प्रशस्त है । पण्डित हरिदत्त (८) जी का छोटा लेख भी उपयोगी है । श्री यादव शर्मा (६) जी की आयुर्वेद के प्रति सेवा का वर्णन असम्भव है । उन्होने अनेक पाश्चात्य-कल्पित मतो का सहेतुक खण्डन किया है । श्री दिनेशचन्द्र (१०) जी का लेख अति उपादेय है, पर वाग्भट आदि के तिथि-क्रम-विषय में उनके विचार निराधार है । श्री महेन्द्रनाथ (११) जी का ग्रंथ अच्छा संग्रह है । श्री सिम्मर (१२) पाश्चात्यो मे अकेला व्यक्ति है, जिस ने आयुर्वेद के अध्ययन में सहानुभूति प्रकट की है, पर माईथोलोजि के भूत ने उस के सारे परिश्रम पर मट्टी डाल दी है । श्री फिलिओजट (१३) जी ने अभी परिश्रम आरम्भ किया है । यदि वे पाश्चात्य पक्षपातों को त्याग सके, तो उन के भविष्य के लेख मूल्यवान हो सकते है । श्री रघुवीर शरण (१४) जी का ग्रंथ बहुत श्रेष्ठ है । उन्हो ने यथेष्ट सामग्री पण्डित भगवद्दत्त जी के ग्रन्थो से ली है, पर दो-एक स्थानो पर उनका लेख सर्वथा मौलिक है । काल-क्रम का स्पष्ट चित्र वे नहीं खींच सके । धन्वन्तरि अनेक थे, उनका यह पक्ष बहुत अस्पष्ट रहा है । अस्तु ।

इतने महानुभावो के ग्रन्थो का पर्यालोचन, उपलब्ध आयुर्वेदीय सम्पूर्ण ग्रन्थो का पाठ तथा पूर्ववर्ती लेखको की भूलो का प्रदर्शन करके यह इतिहास लिखा गया है । आर्य इतिहास सम्मत काल-क्रम का स्पष्ट चित्र इसमे प्रथमवार उपस्थित होता है ।

इस तिथि-क्रम की आधारशिला श्री पण्डित भगवद्दत्त जी के वैदिक वाङ्मय का इतिहास, तीन भाग, भारतवर्ष का इतिहास तथा भारतवर्ष का बृहद् इतिहास प्रथम भाग है । पक्षपाती पाश्चात्य लेखको के विचारो से आवृत वर्तमान अन्धकारमय भारत मे ये ग्रन्थ है, जो यथार्थ भारतीय इतिहास को स्पष्ट कर रहे है । मेरे अध्ययन ने उनका तथ्य मेरे मन पर अधिकाधिक प्रकाशित कर दिया है ।

आयुर्वेद एक महान विज्ञान है । ऐलोपैथी आदि अधूरे-विज्ञान इसके समीप भी नही पहुँच पाए । आयुर्वेद की इस महत्ता को मै इस इतिहास में प्रकट नही कर सका । स्थानाभाव इसका मुख्य कारण है । इस इतिहास मे

संक्षिप्त रूप से तिथि-क्रम ही अधिक स्पष्ट किया गया है। यह तिथि-क्रम इतिहास का एकमात्र आधार है। अतः इसे शुद्ध रूप में रखने का मेरा पर्यास है। तिथि-क्रम को ठीक समझने के लिए आयुर्वेद के संग्रह-ग्रन्थो के लेखको तथा टीकाकारो के यथार्थ काल का समझना अत्यावश्यक है। श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने इस विषय पर एक सक्षिप्त लेख भा० बृ० इ०, प्रथम भाग, पृ० ३१७, १८ पर किया है। मैने उसका परिवर्धित रूप इस इतिहास के अन्तिम अध्याय के पश्चात् परिशिष्ट रूप में लिखा है। उसकी विशेष व्याख्या इस ग्रन्थ के द्वितीय भाग में करूँगा।

आयर्वेद का इतिहास भारतीय ऋषियो का इतिहास है। इसकी छटा इस पुस्तक में मिलेगी। प्रत्येक ऋषि कितने विषयों का पारगत पण्डित था, वह कितना दीर्घजीवी हुआ, यह इस ग्रन्थ से ज्ञात हो जाएगा। उन परम-पुनीत ऋषियो को पाश्चात्य लेखको ने असत्य-वक्ता और अल्पज्ञानी ठहराया था, इसका ज्वलन्त निराकरण इस पुस्तक में है। विकासमत की निराधारता और आदि से सारे ज्ञान की पूर्णता का सिद्धान्त इस ग्रन्थ से समझ में आएगा। वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, पुराण और अनेक सस्कृत ग्रन्थो के प्रमाणो से यह पुस्तक अलंकृत है। पूरा आनन्द लेने वालों को उन ग्रन्थो का यथार्थ ज्ञान उपलब्ध करना चाहिए। तदर्थ संस्कृत विद्या का गम्भीर परिचय अभीष्ट है। आयुर्वेद का ज्ञान भी सस्कृत-विद्या के बिना नहीं हो सकता। तथापि मैंने इस सब सामग्री को हिन्दी भाषा में कर देने का कठिन काम किया है।

चिकित्सा के काम में सलग्न रहने के कारण मै इस काम को शनैः शनै कर रहा हूँ। यह ग्रन्थ इतना शीघ्र न छप सकता, यदि मेरी धर्मपत्नी पण्डिता सूनृता शास्त्री, बी० ए० इसकी प्रेस कापी प्रस्तुत न कर देती। उन्होंने मेरी सारी सामग्री को क्रम देकर पुस्तकाकार बना दिया और ग्रन्थ मे उद्धृत सब प्रमाण मूल पुस्तको से मिला लिए।

आशा है इस ग्रन्थ के पाठ से आयुर्वेद के विद्यार्थियो को पर्याप्त लाभ और उनके हृदय में आयुर्वेद मे गहरी गवेषणा करने का उत्साह उत्पन्न होगा।

जिन महानुभावो के ग्रन्थो से मैंने लाभ उठाया है, उन सबका मै धन्यवाद करता हूँ। आदरणीय पडित भगवद्दत्त जी के प्रति मै विशेष कृतज्ञ हूँ। उनकी प्रेरणा, सहायता और उत्साह-प्रदान के विना यह ग्रन्थ कभी पूर्ण न हो सकता। श्री पण्डित देशराज शास्त्री, एम०ए० पुस्तकाध्यक्ष, आर्किओलोजिकल लाएब्रेरी, देहली का भी हार्दिक धन्यवाद है। इनकी कृपा से उपयोगी ग्रन्थ यथा समय उपलब्ध होते रहे है।

शिमला, जुलाई ३१, १९५२ सन् कविराज सूरमचन्द्र

अथ

आयुर्वेद का इतिहास

प्रथम अध्याय

नमस्कार प्रयोजन तथा वर्तमान सृष्टिचक्र का आरम्भ

नमस्कार—सर्वज्ञानमय स्वयभू ब्रह्म, दक्ष प्रजापति, देवभिषक् अश्विनिकुमार, अमरगुरु इन्द्र, भगवान् कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि, भृगु, धन्वन्तरि, भरद्वाज तथा पुनर्वसु आत्रेय आदि महर्षियो और विज्ञान के अपरिमित भण्डारो को भक्तिपुर सर कोटि कोटि नमस्कार है, जिनकी महती कृपा और अपार दया से ससार को आयु प्रदान करने वाला आयुर्वेद का शाश्वत और परम निर्मल ज्ञान उपलब्ध हुआ।

प्रयोजन—पुण्यभूमि भारत मे गत अनेक शताब्दियो मे राजाश्रय के अभाव से आयुर्वेद रूपी जो अमृत ज्ञान ह्रास को प्राप्त हुआ है, उसके पुनरुद्धार, तथा संसार में आयुर्वेद के अलौकिक और स्वत सिद्ध तथ्यो के प्रचार, अपिच पश्चिम के कतिपय अल्प-सस्कृतविद्या-विद्य जर्मन, फ्रैञ्च, अग्रेज और अमरीकी आदि लेखको द्वारा प्रसारित बहुविधा भ्रान्तियो के उन्मूलन तथा पुरातन आचार्यो के सत्य काल-प्रदर्शन के निमित्त यह हमारा प्रबन्ध है।

संवर्तकाग्नि और जलप्लावन—इस पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति कई वार हो चुकी है। गत सृष्टि के अन्त मे सवर्तकाग्नि के प्रभाव से सम्पूर्ण पशु, पक्षी और वनस्पति आदि दग्ध हो गए। पृथ्वी का जल ताप के अत्यधिक होने से धूम्राकार होकर आकाश मे लीन हो गया। इस भयकर अग्निदाह के पश्चात् आँधियाँ आई। वायु का प्रकोप अत्यन्त बढा। तब कई मास तक धारासार वर्षा हुई। पृथ्वी जल-निमग्न हो गई।

आर्य शास्त्र और मानव सृष्टि—पृथ्वी की पूर्वोक्त दशा केवल आर्य शास्त्रो में वर्णित है। यह वृत्त तथा इसके पश्चात् मानव के पुन प्रादुर्भाव का

सत्य इतिहास युक्तियुक्त है, और आत्मसत्ता पर आश्रित है। इस विषय मे वेद और सम्पूर्ण आर्यशास्त्र का ऐकमत्य है। निर्मल ज्ञान से ओत-प्रोत आर्य शास्त्र के आधार पर इसका उल्लेख आगे होगा।

डार्विन आदि पाश्चात्यों का विकासमत—आत्मा के अस्तित्व मे सशयशील, आत्मस्वरूप से सर्वथा अनभिज्ञ तथा आत्मवैभव मे अपरिचित इङ्गलैण्ड-देशोत्पन्न डार्विन ने प्राणियो आदि मे कतिपय सादृश्यो के आधार पर एक मत चलाया कि सृष्टि मे मनुष्य का प्रादुर्भाव विकासमत के अनुसार हुआ। पहले अति सूक्ष्मकाय प्राणी उपजे। तदनु कालान्तर में परिवर्त्तन होते होते प्राणियो की अनेक जातियाँ बनी। एक जाति के प्राणियो से दूसरी जाति के प्राणियो का उद्गम हो गया। इस प्रकार परिवर्त्तन के फलस्वरूप अन्त मे मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ। मनुष्य पर पहुँच कर जाति परिवर्त्तन सदा के लिए रुक गया। योरुप का यह मत स्थूल दृष्टि से रोचक होता हुआ भी युक्ति तथा प्रमाण विरुद्ध है। आदि मे चेतन की इच्छा के विना जड प्रकृति का सजीव होना असम्भव है। पुरुष तथा प्रकृति पर आश्रित साख्य-सिद्धान्त पूर्ण प्रशस्त तथा सत्य तर्क पर आश्रित है। साख्य आदि सम्पूर्ण शास्त्रो मे महदादि तथा पञ्चभूत-विशेषान्त सृष्टि का वर्णन मिलता है। पुरुषाधिष्ठित महान् से समस्त जड विकृति बनी। तब प्राणी-सृष्टि हुई। उसके मूल तत्त्व के विषय मे श्री० प० भगवद्दत्त जी द्वारा रचित भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग प्रथम पृ० ५५-६० पर डार्विन मत की तर्क-विरुद्धता का सक्षिप्त वर्णन द्रष्टव्य है।

आर्ष सिद्धान्त—विकास मत मे प्रकृति और उसके सत्व, रजस, तम गुणो का अणुमात्र उल्लेख नही। इन गुणो के विना मनुष्य के क्रोध आदि का यत्किञ्चित् विश्लेषण नही हो सकता।[1] पाश्चात्य मनोविज्ञान (psychology) के ग्रन्थ इसी कारण अधूरे है।

महामुनि चरक ने चरकसहिता, सूत्रस्थान मे लिखा है—**नांकुरोत्पत्तिरबीजात्।[2] कर्मसदृशं फलं। नान्यस्माद् बीजाद् अन्यस्योत्पत्तिः। ११।३२ ॥**

डार्विन का खण्डन

१ कामक्रोधौ मनस्तापो लोभो मोहस्तथामृषा।
प्रवृद्धे परिवर्धन्ते रजस्येतानि सर्वशः॥
अनुशासनपर्व २४१।१२॥

२. तुलना करो, चरक, शारीर० ३। १९॥

अर्थात् नही अकुर की उत्पत्ति विना बीज से। कर्म के सदृश फल होता है। नही अन्य के बीज से अन्य की उत्पत्ति।

इससे ज्ञात होता है कि ऋषि लोग डार्विन के जाति-परिवर्त्तन के मत को अवैज्ञानिक समझते थे। इसी भाव से न्याय शास्त्र मे महान् वैज्ञानिक गौतम मुनि लिखते है—

समानप्रसवात्मिका जातिः ।२।२।७१॥

अर्थात्—जाति वही है जिससे आगे तद्रूप समान प्रकार की परम्परा चले।

चतुर्विधाः प्रजाः—इस भूतल पर सम्पूर्ण प्राणियो का जो वैज्ञानिक विभाग आर्य शास्त्रकारो ने किया है वैसा अन्यत्र नही मिलता। यह विभाग चार प्रकार का है—

चतुर्विधं प्रजाजातं निर्दहत्याशु तेजसा।
जराय्वण्डस्वेदजातमुद्भिज्जं स नराधिप॥

शान्तिपर्व ३१७।१ ॥

आयुर्वेद शास्त्रो मे भी इसी विभाग की मान्यता है—

भूतानां चतुर्विधा योनिर्भवति। जराय्वण्डस्वेदोद्भिदः। तासां खलु चतसृणामपि योनीनामेकैका योनिः अपरिसंख्येयभेदा भवति। भूताना-माकृतिविशेषपरिसंख्येयत्वात्॥ चरक सं० शारीर स्थान ३।२३॥

अर्थात्—इन चारो जातियो मे एक-एक जाति अपरिसंख्येय भेद वाली हो जाती है।

वायुपुराण भी इसी वैज्ञानिक वर्गीकरण का सकेत करता है—

ततः प्रवृत्तो दक्षस्तु प्रजाः स्रष्टुं चतुर्विधाः।
जरायुजाण्डजाश्चैव उद्भिज्जाः स्वेदजास्तथा॥
दश वर्ष सहस्राणि तप्त्वा घोरं महत्तपः।
संभावितो योगबलैरणिमाद्यैर्विशेषतः[1] ॥६५।१२२, १२३॥

---

१. देवल धर्मसूत्र मे अणिमा का लक्षण—

तेषामणिमा-महिमा-लघिमास्त्रयः शारीराः। तत्र स्वशरीरत्व-मणिमा। अणुभावात् सूक्ष्माण्यप्याविशति। कृत्यकल्पतरु, मोक्ष-काण्ड, पृ० २१६।

परमयोगी भगवान् सनत्कुमार भी अणिमा आदि अष्टगुणयोग का वर्णन करते हैं। महाभारत, अनुशासनपर्व, अ० १६७ में लिखा है—

अणिमा लघिमा भूमा प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च।

अर्थात्—जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज तथा स्वेदज रूप से सम्पूर्ण प्राणी चार प्रधान जातियो के है।

मनुस्मृति १। ४६-४९। मे स्थावरो की ओषधि, वनस्पति आदि जातियो का विभाग पूर्ण वैज्ञानिक प्रकार से वर्णित है—

उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।
ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः॥
अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयस्स्मृताः।
पुष्पिणः फलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः॥
गुच्छगुल्मं च विविधं तथैव तृणजातयः।
प्रतानाश्चैव वल्यश्च वीरुधः परिकीर्तिताः॥
तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना।
अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः॥

ओषधि उत्पत्ति—ऋग्वेद मे लिखा है—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।१०।९७।१॥

अर्थात्—जो ओषधियाँ पूर्व उत्पन्न हुई। देवो से तीन युग पूर्व। प्रश्न होता है उद्भिज अर्थात् ओषधि,[1] वनस्पति, वृक्ष तथा वीरुध सृष्टि कैसे हुई।

कलल अवस्था—गर्भकाल मे सम्पूर्ण बीजो की कलल नामिका एक विशेष अवस्था सर्व-पूर्व होती है। सुश्रुतसहिता शारीर स्थान मे लिखा है—

तत्र प्रथमे मासि कललं जायते ।३।१८।

चरक सं० शा० ४।१० मे भी ऐसा ही उल्लेख है।

इसी तत्त्व का सकेत वायु पुराण मे है—

ततस्तु गर्भकाले तु कललं नाम जायते ।१४।१८॥

ईशित्वं च वशित्वं च यत्र कामावसायिता।
एतदष्टगुणं योगं योगानाममितं स्मृतम् ॥४३॥

इन श्लोकों से प्रतीत होता है कि महिमा और भूमा शब्द पर्यायवाची हैं।

आठ प्रकार का योगी का ऐश्वर्य चरक सं० शारीरस्थान १।१४०, ४१ में वर्णित है।

१. ओषधियाँ ग्राम्य और आरण्य है। उनका विस्तृत वर्णन वायुपुराण ८।१४९-१६० में है।

४. शेष कोष—जैन आचार्य हेमचन्द्र द्वारा अभिधानचिन्तामणि की स्वोपज्ञ टीका मे शेषकोष का पाठ उद्धृत है। उसमे ये नाम भी है—क्षेत्रज्ञ, पुरुष, सतत।

५. वायुपुराण—योगेश्वर, आत्मा, ऋषि, सर्वज्ञ, नारायण, महादेव, पुरुष, यज्ञ, कवि, आदित्य। इति। ५।३२-४५॥

६ ऋक्प्रातिशाख्य—शौनक मुनि ने अपने ग्रथ के आरम्भ मे ब्रह्मा को वेदात्मा, वेदनिधि, पद्मगर्भ तथा आदिदेव कहा है।

७. चरकसंहिता—सूत्रस्थान १।२३ मे 'पितामह' नाम मिलता है। सिद्धिस्थान ३।३०,३१, पृ० १६५१ पर जज्जट की टीका मे 'पैतामहाः' का वचन मिलता है। पृ० १६७१ पर जज्जट टीका मे पितामह का पाठ उद्धृत है। सूत्रस्थान २५।२३ मे लिखा है—

स्रष्टा त्वमितसंकल्पो ब्रह्मापत्यं प्रजापतिः।

यहा प्रजापति शब्द ब्रह्मा के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। स्वयभू ब्रह्म के कतिपय अन्य नाम भी है। इनमे से अनेक नाम वेद और ब्राह्मण ग्रथो मे ईश्वर के भी है।

ऐतिहासिक व्यक्ति—आधुनिक पाश्चात्य तथा अनेक एतद्देशीय लेखक कहते है कि ब्रह्मा ऐतिहासिक व्यक्ति नही प्रत्युत कल्पित (mythical) व्यक्ति है। आयुर्वेद की सहिताओ तथा अन्य समस्त आर्ष शास्त्रो मे ब्रह्माजी को ऐतिहासिक व्यक्ति माना है। जिन आप्तपुरुषो (ऋषियो) ने चरक और सुश्रुत सदृश वैज्ञानिक ग्रन्थो द्वारा ससार का महान् उपकार किया, तथा उपनिषदो के अद्वितीय अध्यात्मज्ञान से ससार को पावन किया, वे ऐकमत्य होकर असत्य का प्रचार करने मे अग्रसर हुए, ऐसा कथन कोई बुद्धि-विहीन और आर्यपरम्परा अनभिज्ञ व्यक्ति ही कर सकता है।

वास्तव मे ब्रह्माजी को कल्पित व्यक्ति मानने वाले स्वय कल्पना मे निमग्न है।

आयुर्वेद का प्रथम उपदेश—आयुर्वेद की सभी सहिताओं तथा संग्रह-ग्रन्थो मे ब्रह्माजी को आयुर्वेद का आदि-प्रवक्ता कहा है। यथा—

शिर अश्वियो ने जोडा था। उसकी टीका मे जज्जट लिखता है कि यज्ञ ब्रह्मा का नाम था। वायुपुराण ५।४४ मे भी ब्रह्मा का एक नाम यज्ञ है।

शतपथ ब्राह्मण १४।१।१।१८ के पाठ से प्रतीत होता है कि शिरःसन्धान आलंकारिक घटना है। फिर भी तथ्य के समझने के लिए यत्न करना चाहिए।

(क) स्वयंभूर्ब्रह्मा प्रजा सिसृक्षुः प्रजानां परिपालनार्थमायुर्वेद-मेवाग्रेऽसृजत् सर्ववित् ततो विश्वानि भूतानि। इति। काश्यपसंहिता, विमानस्थान।

(ख) इह खल्वायुर्वेदो नामोपाङ्गमथर्ववेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोक-शतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भू । इति। सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान, १।६।।

(ग) त्रिसूत्र शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः। इति। चरकसंहिता, सू० १।२४।।

अर्थात्—सर्ववित् स्वयभू ब्रह्माजी ने आदि मे समग्र आयुर्वेद का उपदेश एक सहस्र अध्यायो तथा एक लक्ष श्लोको मे किया।

उपवेद—आयुर्वेद उपाङ्ग अथवा उपवेद है, अथर्ववेद का। प्रतिज्ञा-परिशिष्ट की पचत्रिशी कण्डिका मे कात्यायन मुनि (भारत युद्ध के २०० वर्ष पश्चात्) लिखते है—

हस्तिशिक्षा सलक्षणा। आयुर्वेदविद्यास्तथा।.........
सर्वे ते अथर्ववेदस्योपवेदा भवन्ति।

अर्थात्—हस्तिशिक्षा, आयुर्वेद आदि अथर्ववेद के उपवेद है।

चरकसहिता, सूत्रस्थान, अध्याय ३० मे अथर्ववेद मे वैद्य की भक्ति का आदेश है। यथा—

अथर्ववेदभक्तिरादेश्या।

काश्यपसहिता पृ० ४१ पर भी ऐसा मत प्रदर्शित है—

अथर्ववेदोपनिषत्सु प्रागुत्पन्नः।

अर्थात्—आयुर्वेद अथर्व-उपनिषत् के रूप मे पहले उत्पन्न हुआ।

अत निर्विवाद है कि अथर्ववेद मे आयुर्वेद-विद्या का मूल-बीज प्रधान रूप से उपस्थित है।

अथर्ववेद विषयक भ्रान्तमत—आथर्वण शान्ति, स्वस्त्ययन, अभिचार, उद्वासन, वशीकरण आदि को यथार्थ रूप से न समझ कर अनेक लोगो ने आथर्वण मन्त्रो की निन्दा की है। अभी-अभी प्रकाशित होने वाले एक ग्रन्थ मे लिखा है—

The crudity of early Indian medicine can be judged from the Atharvaveda, which betrays belief in the demons of disease and prescribes spells as cures.

The Age of Imperial Unity, Nov. 1951, p 276; Ch. XVI, by M A. Mehendale M A., Ph. D.

अर्थात्—अथर्वान्तर्गत पुरातन वैद्यक अनघड थी। उसमे रोग-उत्पन्न करने वाले राक्षसो मे विश्वास है और मन्त्रो द्वारा रोग-नाश बताया गया है।

अथर्ववेद मे रोग के कीटाणु ही राक्षस है। इस तथ्य को न जान कर अध्यापक मेहेण्डेल ने अपने अज्ञान का प्रदर्शन किया है। तथा आत्म-तत्त्व को न समझ कर अध्यापक ने लिखा है कि मन्त्र-द्वारा रोग-नाश का विश्वास भ्रम है। मन्त्र-द्वारा रोग-नाश-विद्या पर पृथक् ग्रन्थ मे प्रकाश पड सकता है।

अथर्ववेद का काल पाश्चात्य और उनके शिष्य वैज्ञानिकब्रुव एतद्देशीय लेखको ने बहुत अर्वाचीन लिखा है। यथा, ईसा से लगभग १२०० वर्ष पूर्व। यह मत युक्तिरहित अत अमान्य है।

द्वितीय प्रवचन—कालान्तर मे ब्रह्माजी ने जब मनुष्य की मेधा और आयु का ह्रास देखा तो पूर्व-उपदिष्ट आयुर्वेद को आठ अङ्गों में विभक्त कर दिया। यथा—

ततोऽल्पायुष्ट्वमल्पमेधस्त्वं चालोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रणीतवान्। इति। सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान १।६॥

आठ अंग—काश्यपसहिता विमानस्थान पृ० ४२ पर लिखा है—

नस्य कौमारभृत्यं, कार्यचिकित्सा, शल्याहर्तृकं, शालाक्यं, विषतन्त्रं, भूततन्त्रमगदतन्त्रं, रसायनतन्त्रमिति।

सुश्रुतसहिता, सूत्र १।७ मे इन आठ तन्त्रो का निम्नलिखित क्रम है—

शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगद, रसायन तथा वाजीकरण।

चरकसहिता, सूत्र ३०।२८ मे लिखा है—

कायचिकित्सा, शालाक्य, शल्यापहर्तृक, विष-गर-वैरोधिक-प्रशमन, भूतविद्या, कौमारभृत्य, रसायन, वाजीकरण।

क्रम-कारण—काश्यपसहिता कौमारभृत्य तन्त्र है, उसमे कौमारभृत्य तन्त्र को अष्टाङ्ग परिगणन मे प्रथम स्थान दिया है। सुश्रुत शल्यतन्त्र है, अत उसमे शल्यतन्त्र का प्रमुख स्थान है। चरकसहिता में इसी कारण से कायचिकित्सा का प्रथम उल्लेख है।

त्रेतायुग के आरम्भ मे ये तन्त्र विद्यमान थे, इसका प्रमाण छान्दोग्य उपनिषद् ७।१।२ मे मिलता है—

भगवान् सनत्कुमार से नारद कहता है—

ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां भगवोऽध्येमि।

यह भूतविद्या अष्टाङ्ग आयुर्वेद का एक अङ्ग है। इस एक अङ्ग के

विद्यमान होने से आयुर्वेद के अन्य अङ्ग भी तब उपलब्ध थे, यह स्वत सिद्ध है।

सर्वज्ञानवित् ब्रह्मा—समस्त प्राचीन शास्त्रो मे ब्रह्मा जी को सर्वज्ञानमय कहा है। सब वैज्ञानिक तथा दार्शनिक शास्त्र इस विषय को प्रमाणित करते है कि इस सृष्टि मे सर्वप्रथम ब्रह्माजी द्वारा ज्ञान का प्रकाश हुआ। ब्रह्माजी ने चारो वेदो के अतिरिक्त आयुर्वेद, व्याकरण-शास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, नाट्य-शास्त्र, ब्रह्मज्ञान, धनुर्वेद, पदार्थ विज्ञान, राजनीति-शास्त्र, अश्वशास्त्र, हस्ति-शास्त्र, वृक्ष-आयुर्वेद आदि अनेक प्रकार के शास्त्रो का ज्ञान ससार को दिया। इनका विस्तृत वर्णन प्राचीन इतिहास विशेषज्ञ श्री प० भगवद्दत्त कृत 'भारत-वर्ष का बृहद् इतिहास' भाग द्वितीय अध्याय तृतीय मे देखे।

प्रजोत्पादन से पूर्व आयुर्वेदोपदेश—सुश्रुत तथा काश्यपसहिता के पूर्व-लिखित प्रमाणो से स्पष्ट है कि प्रजाओ की उत्पत्ति से पूर्व, जब न रोग था न रोगी, तब निदान और चिकित्सा सहित समस्त आयुर्वेद के ज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। विकासमत की भित्ति पर स्थित वर्तमान चिकित्सा पद्धति को यह एक भारी चुनौती है। सुश्रुत ही नही परन्तु अनेक आर्ष-ग्रन्थो से इस ऐतिहासिक सत्य को प्रमाणित किया जा सकता है कि रोगो का निदान और चिकित्सा का ज्ञान रोगो की उत्पत्ति से पूर्व मिल चुका था। यह बात त्रिकाल ज्ञान के कारण हुई।

ऐलोपैथी की अपूर्णता—ऐलोपैथी गत दो-तीन सौ वर्ष में प्राय: अधूरे अनुभवो के आधार पर खडी हुई है। इसके सिद्धान्त अभी तक निश्चित नही हो सके। विकासमत की भित्ति पर खडे होने के कारण इसमे आए दिन परि-वर्तन हो रहे है और होते रहेगे।

आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त निर्भ्रान्त-सत्य पर आश्रित होने के कारण आदि-सृष्टि से आज तक अपरिवर्त्तित है। इसी कारण गत कई सौ वर्षों की भया-नक विघ्न-बाधाओ के होने पर भी आयुर्वेद ससार का उपकार कर रहा है।

ग्रन्थ नाम—भावप्रकाश मे भावमिश्र लिखता है—

विधाताऽथर्वसर्वस्वमायुर्वेदं प्रकाशयन्।
स्वनाम्ना संहितां चक्रे लक्षश्लोकमयीमृजुम्।१।१॥

अर्थात्—विधाता की सहिता का नाम ब्रह्मसहिता था।

ब्रह्मतन्त्र की दो शाखाएँ—आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्मा ने दक्ष और भास्कर को दिया। दक्ष की परम्परा मे सिद्धान्त का प्राधान्य था, तथा भास्कर की परम्परा मे व्याधिनाश अर्थात् चिकित्सा-पद्धति का। चिकित्सापद्धति का उल्लेख हम यथा-स्थान करते जाएगे।

काल—ब्रह्माजी इस कल्प के आरम्भ मे जलप्लावन के पश्चात् आदिकाल मे हुए।

सधिसहित कृतयुग के ४८००, त्रेता के ३६००, द्वापर के २४००, कलि के १२००, तथा महाकलियुग के लगभग ४००० वर्ष अब तक हो चुके है। इनका सम्पूर्ण योग हुआ १६००० वर्ष। इससे पहले आदिकाल का न्यूनातिन्यून परिमाण १००० वर्ष था। इस प्रकार ब्रह्माजी आज से न्यूनातिन्यून १७००० सत्रह सहस्र वर्ष पूर्व हुए।

यह अवधि अधिक खोज के पश्चात् इतने वर्षो से अधिक सिद्ध हो सकेगी, न्यून कदापि नही। 'भारतीय इतिहास की काल-गणना के विषय मे सम्पूर्ण पाश्चात्य अनुमानित-मत, जिन्हे वृथा ही वैज्ञानिक कहा जाता है, सर्वथा भ्रान्त है।

आयु—ब्रह्माजी की आयु के विषय मे अभी तक पूर्णतया कुछ नही कहा जा सकता। अनेक प्रमाणो से स्पष्ट है कि ब्रह्माजी ने आदिकाल के आरम्भ मे प्रथम वार आयुर्वेद का प्रवचन किया। त्रेता युग के आदि मे उन्होने अष्टाङ्ग विभागपूर्वक इसका पुन उपदेश किया। अत आदिकाल, कृतयुग, तथा त्रेता के कुछ काल पर्यन्त अर्थात् ६००० वर्ष तक ब्रह्माजी अवश्य जीवित थे।

गुरु और शिष्य—ब्रह्माजी सर्ग के आदि मे हुए, अत उनका गुरु ईश्वर था। उन्होने आयुर्वेद का उपदेश अपने शिष्य दक्ष-प्रजापति को किया।

अश्विद्वय भी कभी-कभी ब्रह्माजी से साक्षात् उपदेश-ग्रहण कर लेते थे। गदनिग्रह मे इसका प्रमाण है। वह स्थल अश्वि-प्रकरण मे लिखा जाएगा।

भास्कर ने भी ब्रह्मा जी से आयुर्वेद शास्त्र सीखा, परन्तु उसने स्वतन्त्र-सहिता मे चिकित्सा-पद्धति का अधिक विस्तार किया।

ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मखण्ड अध्याय १६ मे लिखा है—

> कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः।
> स्वतन्त्रसंहितां तस्मात् भास्करश्च चकार सः॥

ब्रह्माजी का पुत्र—ब्रह्माजी का ज्येष्ठ पुत्र आत्म-ज्ञान का प्रदाता अथर्वा था।[1] अन्य अनेक ऋषि उनके मानसपुत्र अर्थात् वरे हुए पुत्र थे।

विशेष घटनायें—चरकसहिता चिकित्सास्थान के प्रमाण से हम पूर्व लिख चुके है कि यज्ञ का कटा हुआ शिर अश्वियो ने जोडा। इस स्थल की टीका मे आचार्य जज्जट 'यज्ञ' का अर्थ 'ब्रह्मा' करता है। चरकसहिता क

---

१. मुण्डक उपनिषद् १।१।१॥

यही वचन अष्टाङ्गसग्रह, उत्तर स्थान, पृ० ४७७ पर उद्धृत है। सुश्रुतसहिता, सूत्रस्थान, १।१७ मे भी इसी घटना का उल्लेख है —

श्रूयते हि यथा—रुद्रेण यज्ञस्य शिरश्छिन्नमिति।
… … । ताभ्यां यज्ञस्य शिरः संहितम्। इति।

इस प्रमाण से प्रतीत होता है कि ब्रह्माजी का शिर रुद्र द्वारा काटा गया था। यह घटना अभी विचारणीय है। सर्वज्ञानमय ब्रह्मा को अपना शिर कट जाने का पूर्वज्ञान न होना समझ मे नही आता। सभव है यह अलकार हो अथवा रुद्र द्वारा यज्ञ-भग का वर्णन हो।

ब्रह्माजी के योग - यद्यपि ब्रह्माजी का मूल उपदेश अब सुरक्षित नही है, तथापि उनके उपदिष्ट सोलह से अधिक योग आयुर्वेद ग्रन्थो मे अब भी उपलब्ध होते हैं। उनमें से तीन नीचे लिखे जाते है—

चन्द्रप्रभावटी, गदनिग्रह, भाग १, पृ० ११६।

ब्राह्मी तैल।

अष्टाङ्ग हृदय, चि० ६।५५ तथा उत्तर ३६।१५ मे ब्राह्म-रसायन वर्णित है। इसका उल्लेख गिरिन्द्रनाथ जी ने नही किया।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे
द्वितीयोऽध्यायः

तृतीय अध्याय

२. दक्ष प्रजापति

देवयुग तथा कृतयुग

भारतीय इतिहास मे दक्ष नाम के तीन से अधिक व्यक्ति हुए है।

१. मानसपुत्र दक्ष।

२ प्राचेतस दक्ष।

३ पार्वति अर्थात् पर्वत-पुत्र दक्ष।

वायुपुराण मे ब्रह्मा के नव-मानस-पुत्र तथा मत्स्यपुराण मे दश मानस अपिच कई शारीर-पुत्र कहे गए है। मानसपुत्रो मे एक दक्ष भी था।

भारतीय इतिहास मे इक्कीस प्रजापति वर्णित है। दूसरा दक्ष इन प्रजापतियो मे से एक था। महाभारत आदिपर्व ७०।४ मे उसे प्राचेतस दक्ष कहा है। आयुर्वेद की परम्परा मे वर्णित दक्ष-प्रजापति प्राचेतस-दक्ष था। अष्टाङ्ग-सग्रह निदानस्थान अ० १ पृ० २ पर इसका प्रमाण है—

> ज्वरस्तु स्थाणुशापात् प्राचेतसत्वमुपागतस्य प्रजापते·
> क्रतौ ·· ··निश्चचार।

अर्थात्—प्रजापति [दक्ष] प्राचेतसपन को प्राप्त हुआ था।

महाभारत आदि मे उल्लिखित है कि मानसपुत्र दक्ष ही दूसरे जन्म मे प्राचेतस दक्ष हुआ।

गरु और शिष्य—दक्ष प्रजापति ने श्री ब्रह्माजी से आयुर्वेदाध्ययन किया—

> ब्रह्मणा हि यथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापति.।
> जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः॥

चरकसंहिता, सू० १।४॥

अर्थात्—प्रजापति ने ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट निखिल अर्थात् सम्पूर्ण आयुर्वेद ग्रहण किया। अश्विनीकुमारो ने दक्ष प्रजापति से आयुर्वेद पढा। समस्त उपलब्ध आयुर्वेदीय सहिताओ मे यही परम्परा उल्लिखित है।

काल—दक्ष प्रजापति के काल के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से अभी कुछ नही कहा जा सकता। हा, इतना निश्चित है कि ये कृतयुग के अन्त मे हुए।

नाम अथवा नामपर्याय—महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २०७ मे लिखा है—

प्राचीनबर्हिर्भगवांस्तस्मात् प्राचेतसो दश।
दशाना तनयस्त्वेको दक्षो नाम प्रजापतिः।
तस्य द्वे नाम्नी लोके दक्ष क इति चोच्यते ॥७॥

अर्थात्—प्राचेतस दक्ष को लोक [भाषा] मे क भी कहते है।

इसका अभिप्राय यह है कि वेदमन्त्रो मे जो क है, वह ऐतिहासिक दक्ष नही।

लोकभाषा मे दक्ष कुक्कुट का भी पर्याय है। देखो चरक स० चि० २।१३ पर जज्जट टीका।

विशेष वृत्त—आयुर्वेदीय चरकसहिता चिकित्सास्थान ३।१५,१६ मे लिखा है—

द्वितीये हि युगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितम्।
दिव्यं सहस्रं वर्षाणामसुरा अभिदुद्रुवुः ॥१५॥
तपोविघ्नाशनाः कर्तुं तपोविघ्नं महात्मनः।
पश्यन् समर्थश्चोपेक्षां चक्रे दक्षः प्रजापतिः ॥१६॥

अर्थात्—द्वितीय-युग अथवा त्रेता (के आरम्भ) मे दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ मे शिव की उपेक्षा की।

दक्ष-मत निदर्शन—काश्यपसहिता मे चिकित्सासपत् के चार पादो (भिषक्, भेषज, आतुर, परिचारक) के सम्बन्ध मे दक्ष प्रजापति का मत दिया है—

नेति प्रजापतिः प्राह भिषङ्मूलं चिकित्सितम्।
भिषग्वशे त्रिवर्गो हि सिद्धिश्च भिषजि स्थिता ॥

अर्थात्—चिकित्सासपत् मे आतुर प्रधान नही है। चिकित्सा का मूल भिषक् है। शेष तीनो भिषक् के वश मे है।

दक्ष प्रजापति के योग—भावप्रकाश मे प्रजापति के नाम से महारास्नादि क्वाथ का उल्लेख है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे
तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थ अध्याय

३. अश्वि-द्वय

कुल परिचय—कश्यप प्रजापति परमर्षि था। वह अनेक वेदमन्त्रो का द्रष्टा अपिच दैत्यो, दानवो तथा देवो (आदित्यो) आदि का पिता था। दैत्य, दानव और देव (आदित्य) क्रमश: दिति, दनु और अदिति-नाम्नी दक्ष-प्रजापति की प्रसिद्ध कन्याओ के सन्तान थे। डायोनिसियस (Dionysius) (दानवासुर) और हरकुलीज (Hercules) (=विष्णु) जो कि प्राचीन यवन-साहित्य मे अनेक बार वर्णित है, दानवो और देवो के नेता थे।

देव अथवा आदित्य सख्या मे १२ थे। यवन-लेखक हैरोडोटस (४०० वर्ष ई० पू०) लिखता है—हरकुलीज द्वितीय श्रेणी के १२ देवो मे से एक था। इन १२ मे से ३ प्रसिद्ध देव विवस्वान्, इन्द्र और विष्णु थे। विवस्वान् (पारसी अथवा ईरानी इतिहास मे विवहवन्त) के चार पुत्र थे, मनु, यम और अश्विद्वय। निरुक्तकार यास्कमुनि (विक्रम से ३१०० वर्ष पूर्व) विवस्वान् आदित्य के इतिहास पर प्रकाश डालते है। तदनुसार—

इनमे से मनु भारतवर्ष का और यम ईरान देश का राजा बना। अश्वि-द्वय देव-भिषक् बने।
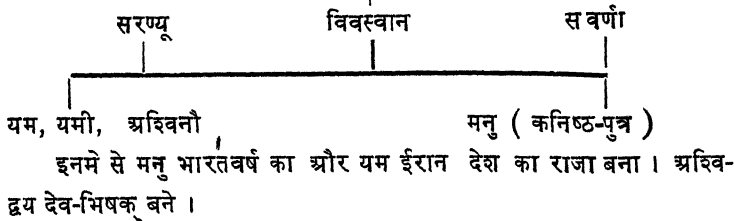
विद्या-ग्रहण—अश्वियो ने आयुर्वेद शास्त्र अपने मातामह दक्ष-प्रजापति से पढा। शास्त्रो मे लिखा है—

(क) अश्विभ्यां क प्रददौ। काश्यपसं० विमानस्थान, पृ० ४२।

(ख) प्रजापतिः जग्राह निखिलेनादौ, अश्विनौ तु पुनस्ततः।

चरकसंहिता १।४॥

नाम अथवा नाम-पर्याय—अश्विद्वय के पृथक्-पृथक् नाम इतिहास मे सुरक्षित है। महाभारत शान्तिपर्व अध्याय २०७ मे लिखा है—

नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ।
मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः ॥१६॥

यही श्लोक हरिवंश पर्व १, अध्याय ६, संख्या ५५ तथा वायुपुराण अध्याय ८४, श्लोक २४ और ७७ है।

इस प्रकार इनके प्रमुख नाम अश्विनौ, नासत्यौ, दस्रौ, देवभिषजौ, यज्ञवहौ इत्यादि है। मन्त्रो मे ये पद व्यक्ति-विशेषो के नाम नही है।

काल—विवस्वान् और उसके पुत्र देवयुग मे जन्मे ।

आयु—अश्वियो की आयु का पूर्ण-ज्ञान हमे नही हो सका, परन्तु थे ये दीर्घजीवी। प्रतीत होता है कि वे कई सहस्र वर्ष जीवित रहे। ब्रह्माजी द्वारा उपदिष्ट दीर्घायु-विषयक गहन-तत्त्वो का ज्ञान तथा अमृतपान इनकी दीर्घायु के कारण थे। आज के युग मे आश्चर्यजनक होते हुए भी उस समय यह तथ्य सामान्य था। जो व्यक्ति आयुर्वेद-विशेषज्ञ हे उनकी आयु अवश्य दीर्घ होनी चाहिए।

जीवन घटनाएं

१. **ओषधि-संस्थान तथा अमृत सृजन**—मध्य एशिया मे 'वक्षु' नाम की नदी बहती है। अग्रेजी मे इसे 'ऑक्सस' (Oxus) तथा फारसी मे 'जेहू' कहते है। इसकी पश्चिम दिशा मे कैस्पियन (Caspian) समुद्र विद्यमान है। प्राचीन सस्कृत वाड्मय मे वर्णित क्षीर अथवा क्षीरोद सागर ही कैस्पियन समुद्र है।[1] यह दैत्यो, दानवो, देवो तथा मानवो (मनु की सन्तान) का प्रधान निवास-स्थान था। क्षीरोद-सागर के चारो ओर पर्वत थे। उन पर्वतो मे से एक का नाम था चन्द्र-पर्वत। वायुपुराण मे लिखा है—

द्वितीयः पर्वतश्चन्द्रः सर्वौषधिसमन्वितः ।
अश्विभ्याममृतस्यार्थे ओषध्यस्तत्र संस्थिताः ॥७॥
पञ्चमः सोमको नाम देवैर्यत्रामृतं पुरा ।
संभृतं च हृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता ॥१०।
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यः महाबलाः ।
विशल्यकरणी चैव मृतसंजीवनी तथा ॥३५॥ अ० ४६।

अर्थात्—इस पर्वत पर सब प्रकार की ओषधियाँ थी। अश्विद्वय ने अमृत-सृजन के लिए वहाँ विशेष ओषधियाँ उगाई। सोमक पर्वत भी वहाँ

---

१. प्राचीन-भारत का भौगोलिक कोश के लेखक श्री० नन्दूलालदे ने यह खोज की है।

था। उस पर यज्ञ के सभारो मे अमृत भी रखा गया। वही द्रोणपर्वत पर विशल्यकरणी और मृतसञ्जीवनी ओषधियाँ थी।[1]

अमृत के प्रादुर्भाव के लिए ओषधियो का चुनना और उनका युक्त स्थान मे उगाना अश्विद्वय का विशेष कार्य था।

अमृत-विषयक आवश्यक बातें—यह प्रसग अधूरा रहेगा, यदि यहाँ अमृत-विषय की कुछ आवश्यक बाते न लिखी जाए। अत उनका वर्णन आगे किया जाता है।

अमृत-प्रयोजन—काश्यपसहिता के निम्नलिखित वचन से स्पष्ट हो जाएगा कि अमृत कब और क्यो उत्पन्न किया गया—

ये देवाश्चासुराश्च कालेन भक्ष्यमाणा. प्रजापतिमेव शरणमीयुः। स एभ्योऽमृतमाचख्यौ। तेऽमृतं ममन्थुस्तद्भवर्दिति कोन्विदमग्रे भक्षयिष्यतीति। तं देवा एवाभक्ष्यन्त। ततो देवा अजराश्चामराश्चाभवन्। ते देवा अमृतेन क्षुधं कालं चानुदन्त। काश्यप सं०, रेवतीकल्प, कल्पस्थान, पृ० १५३।

अर्थात्—देव और असुर मृत्यु को प्राप्त हो रहे थे। वे प्रजापनि अर्थात् ब्र ा की शरण मे आए। उसने उन्हे अमृत-प्राप्ति का उपदेश किया। उन्होने अमृत-मन्थन किया। अमृत प्राप्त कर लिया गया। इसे सबसे पहले कौन खाए। देवो ने ही उसे खाया। उससे देव जरारहित तथा मृत्युमुक्त हो गए। उन देवो ने अमृत से भूख तथा मृत्यु को परे कर दिया।[2]

---

१. वाल्मीकीय रामायण मे वहीं से विशल्यकरणी तथा मृतसंजीवनी ओषधियां लाने के लिए हनुमान् को आदेश दिए जाने का वर्णन है। देखो, दाक्षिणात्य पाठ, युद्धकाण्ड ५०।२९-३२॥ तथा भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० १४२।

२. स्पष्ट है कि जितनी ओषधियाँ क्षुधा को जितने काल के लिए शान्त कर दें और शरीर मे किसी प्रकार की शिथिलता न आने दें उनमे उतना ही अमृतपन है। अपामार्ग के बीजो मे यह गुण है। मत्स्यपुराण अध्याय २१९ के एतद्विषयक दो श्लोक द्रष्टव्य है—

शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूर घृतप्लुतम्।
क्षुद्योगः कथितो राजन् मासार्धस्य पुरातनैः ॥२॥
कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा विषम्।
दूर्वाक्षीरघृतैर्मण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः ॥३॥

अमृत का स्वरूप तथा सृजन—याजुष काठक ब्राह्मण के वचन से अमृत के यथार्थ रूप तथा सृजन-विधि का कुछ सकेत मिलता है—

देवाश्च वा असुराश्चापां रसममन्थंस्तस्मान्मथ्यमानादमृतमुदतिष्ठत्ततो यः सर्वतो,रसः समस्रवत् स सोमस्तत्सोमस्य सोमत्वम्। इति। काठकब्राह्मणसंकलन पृ० २३।

अर्थात्—देव वा असुरो ने जलो के तत्त्वो को (जो अद्वितीय प्रभावयुक्त ओषधियो से निकाला गया था) मिश्रित किया। उस मिश्रण से अमृत उत्पन्न हुआ।

वायुपुराण, ६२।१७५-१९३ मे पृथ्वी के दश वार दोहन का बडा सुन्दर वर्णन है। तृतीय वार का दोहन देवो ने इन्द्र नेतृत्व मे किया—

पुनः स्तुत्वा देवगणैः पुरंदरपुरोगमैः।
सौवर्णं पात्रमादाय अमृतं दुदुहे तदा ॥१७६॥

अर्थात्—ओषधियो का अमृतरस मही [अमृतालय] की स्तुति के पश्चात् सुवर्ण-पात्र मे एकत्र किया गया।

अमृतालय—क्षीरोद के पास अमृतालय एक स्थान-विशेष था। वही दक्ष का जन्म हुआ—

स्रग्वी कुकुद्मी द्युतिमानमृतालयसंभवः॥ वायु० ६६।७६॥

विष-उत्पत्ति—अमृतमन्थन के समय ओषधि-रस के ऊपर जो प्रथम फेन आया, वह विष था। आलकारिक भाषा मे उसका विग्रहवान् रूप चरकसहिता आदि मे वर्णित है—

अमृतार्थं समुद्रे तु मथ्यमाने सुरासुरैः।
जज्ञे प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः ॥४॥

आयुर्वेद-विशेषज्ञो को इस विषय की खोज करनी चाहिए। योरुपीय जातियों में दिन मे चार वार खाने का जो प्रकार बन गया है, वह हानिकर है। वारम्वार भूख का लगना और उसे वारम्वार मिटाना इस मौलिक सिद्धान्त के विरुद्ध अपिच आयु को न्यून करने वाला है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

तस्मादु साय प्रातराश्येव स्यात्स यो हैव विद्वान्त्सायप्रातराशी भवति सर्व हैवायुरेति।२।४।२।६॥

अर्थात्—साय और प्रात दो काल खाने वाला होवे। पूर्ण सौ वर्ष का आयु प्राप्त करता है।

दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरिकेशोनलेक्षणः ।
जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनासौ विषसंज्ञितः ॥५॥ च० चि० २३।

अर्थात्—देवासुरो द्वारा अमृत-सृजन करते समय अमृतोत्पत्ति से पूर्व विष उत्पन्न हुआ।

घोर नाम का एक भयकर दैत्य भी था। वह हालाहल नामक अन्तिम देवासुर सग्राम मे मारा गया।

घोरो हालाहले हतः ॥ मत्स्यपुराण ४७।५१॥

वायुपुराण अध्याय ५४ मे भी इसी अभिप्राय के श्लोक दो पाठो मे उपलब्ध है। यथा—

(क) सुरासुरैर्मथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः।
भुजङ्गभृङ्गसंकाशं नीलजीमूतसंभवम् ॥
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ॥५७॥

इसी प्रकरण मे इससे कुछ आगे इसका दूसरा पाठ निम्नलिखित है—

(ख) सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण।
भगवन्मेघसंकाशं नीलजीमूतसंनिभम् ॥८५॥
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम्।
कालमृत्योरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ॥८६॥

अमृत उपलब्ध हो गया। उसके महान् प्रभाव को आदि के असुर अथवा देव-शरीर ही सह सकते थे। अश्वि इसके सहस्रो वर्ष पश्चात् तक जीते रहे। देवशरीर अमृत-शरीर हो गए। जैमिनीय ब्राह्मण १।३ मे लिखा है—

तेऽब्रुवन् देवशरीरैर्वा इदममृतशरीरैस्समापयाम । न वा इदं मनुष्यास्समाप्स्यन्ति।

अर्थात्—देव बोले। हम इस [सहस्र सवत्सर के यज्ञ को] देवशरीर अथवा अमृत-शरीर के कारण समाप्त कर सके है। मनुष्य [अल्प आयु के कारण] इसे समाप्त नही कर सकेगे।

परन्तु देव-शरीरो वाले व्यक्ति ससार मे पुन उत्पन्न नही हुए, और उतनी बलवीर्ययुक्त ओषधिया भी ससार मे न रही, अत. दूसरी बार ससार मे अमृत उत्पन्न नही किया गया। पितरो ने जो स्वधा उत्पन्न की, वह कवि उशना अथवा ईरान के कैकोस के पास थी। उसी स्वधा का उल्लेख सोहराब-रुस्तम की कथा मे शाहनामा मे फिरदौसी ने पुराने ईरानी इतिहासो के आधार पर किया।

अवरकाल के ऋषि लोगो ने रसायन आदि के प्रयोग से दीर्घायु प्राप्त

की । मनुष्य उन रसायनो को भी पूरा नही सह सकते ।

चतुर्थ देवासुर-संग्राम—बारह सग्रामो मे से चौथा देवासुर सग्राम इसी अमृतमन्थन अवसर पर हुआ । अमृत कौन ले, इस पर घोर युद्ध हुआ । इन्द्र विजयी हुआ और प्रह्लाद आदि दैत्य परास्त हुए ।[1]

२ **च्यवन का वार्द्धक्य नाश**—भारतवर्ष के पश्चिम मे पुरातन सुराष्ट्र (वर्तमान गुजरात) था । उसका राजा था शर्याति मानव । उसकी सुकन्या नाम्नी कन्या का विवाह भार्गवकुलोत्पन्न जरा-प्राप्त च्यवन नामक महर्षि से हुआ । वृद्ध च्यवन अश्विद्वय की चिकित्सा से यौवन को प्राप्त हो गया । फिर वह दीर्घकाल तक जीवित रहा । यह आख्यान शतपथ ब्राह्मण ४।१।५।१–१२ मे उल्लिखित है । जैमिनीय ब्राह्मण और शाट्यायन ब्राह्मण में भी यह आख्यान उपलब्ध होता है । चरक स० चिकित्सास्थान १।४४ मे भी इस घटना का सकेत है । "च्यवनप्राश" नामक प्रसिद्ध औषध च्यवन के नाम से प्रचलित है ।

३. **श्वेतकेतु आरुणेय का किलास-हरण**—याज्ञवल्क्यस्मृति का पुरातन टीकाकार आचार्य विश्वरूप अपनी बालक्रीडा टीका १।३२ मे याजुष चरक-सहिता का निम्नलिखित वचन उद्धृत करता है—

श्वेतकेतुं हारुणेयं ब्रह्मचर्यं चरन्तं किलासो जग्राह । तमश्विनावूचतुः "मधुमांसौ किल ते भैषज्यम्" इति ।

अर्थात्—अरुणकुलोत्पन्न किलास-ग्रस्त श्वेतकेतु की चिकित्सा अश्विद्वयने की ।

४. **यज्ञशिरःसंधान**—प्राचीन वाङ्मय मे यज्ञशिर सधान की कथा प्रसिद्ध है । शतपथ ब्राह्मण ४।१।५।१५ का पाठाश नीचे लिखा जाता है—

तावेतद्यज्ञस्य शिरः प्रत्यधत्ताम् तदद्स्तद्दिवाकीर्त्यानां ब्राह्मणे व्याख्यायते यथा यज्ञस्य शिरः प्रतिदधतु' । इति ।

अर्थात्—उन्होने यज्ञ का शिर जोड दिया । यज्ञ का शिर जैसे जोडा गया वह दिवाकीर्त्तियों के ब्राह्मण मे व्याख्यात है । प्रतीत होता है यज्ञ की कोई क्रिया भूल गई थी, अश्वियो ने उसे ठीक किया, यही यज्ञशिरःसधान था । निश्चय नही कि इस कथा मे अलङ्कार कितना है तथा ऐतिहासिक अश कितना । महाभारत, पुराण तथा चरकसहिता आदि में इसी प्रकार की कथा का सकेत है । वहाँ अश्वियो द्वारा यज्ञ (ब्रह्मा) का सिर जोडे जाने का वर्णन है । इस विषय के प्रमाण पूर्व पृ० १६, १७ पर लिख चुके है ।

५. **पूषण की दन्तचिकित्सा**—ब्राह्मण ग्रन्थो मे अदन्तकः पूषा वचन

---

१. प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने । मत्स्यपुराण ४७।४८॥

मिलता है। चरक चिकित्सास्थान, रसायनपाद १।४२ मे उल्लेख है कि पूष्ण के प्रशीर्ण दातो की चिकित्सा अश्वियो ने की।

६. **भग-नेत्र-चिकित्सा**—दक्ष प्रजापति के यज्ञ मे शिव ने भग-नेत्र हरे।[1] ब्राह्मण ग्रन्थो मे **अन्धो भगः** पाठ मिलता है। चरक चि०, रसायनपाद, १।४२ से ज्ञात होता है कि उसकी चिकित्सा अश्वियो ने की।

७. **भुज-स्तम्भ-चिकित्सा**—चरक चि०, रसायनपाद १।४२ से यह विदित होता है कि अश्वियो ने इन्द्र की स्तब्ध-भुजा को रोगमुक्त किया।

८. **चन्द्र-यक्ष्म-मोचन**—चन्द्र यक्ष्मारोग से आक्रान्त हुआ। चरक चिकित्सास्थान, रसायनपाद १।४२ से स्पष्ट होता है कि उसे भी अश्वियो ने नीरोग किया।

वेदमन्त्रो मे वर्णित **अश्विनौ** यास्क के अनुसार द्यावापृथ्वी, अहोरात्र, सूर्य-चन्द्र आदि है, अत तत्सम्बन्धी घटनाए मानव-इतिहास-परक नही है।

९. **नेत्राञ्जन-निर्माण**—अष्टाङ्गहृदय का टीकाकार हेमाद्रि किसी प्राचीन ग्रन्थ के प्रमाण के आधार पर लिखता है—

इन्द्र का वृत्रासुर के साथ युद्ध हुआ। युद्ध-गमन से पूर्व अश्वियो ने इन्द्र के लिए एक विशेष मागल्य नेत्राञ्जन बनाया। अष्टाङ्गहृदय टीका, सूत्रस्थान ७।२६॥

१०. **त्रिबन्धुर-रथ**—सस्कृत-वाङ्मय के पाठसे ज्ञात होता है कि अश्विद्वय अटनशील थे। बृहद्देवता ३।८६ मे लिखा है—

बृहस्पतेरथाश्विभ्यां रथं दिव्यं त्रिबन्धुरम्।

यह रथ उनके लिए आङ्गिरस सुधन्वा के तीन पुत्रो ने बनाया था। ये तीन पुत्र यन्त्र-विद्या-विशेषज्ञ त्वष्टा के शिष्य थे।

गुरु-शिष्य—पूर्व लिख चुके है कि अश्विद्वय ने अपने मातामह दक्ष-प्रजापति से आयुर्वेद पढा। समय-समय पर अश्वियो ने साक्षात् पितामह से भी चिकित्सा-क्रिया का उपदेश ग्रहण किया—

सुखोपविष्टं ब्रह्माणमश्विनौ वाक्यमूचतुः।
... कतिजातिश्च कीर्त्यते।
अश्विनोर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्॥

गदनिग्रह द्वितीय भाग पृ० ६७९ हरीतकीकल्प।

अश्वियो के पितृव्य (चचा) इन्द्र ने उनसे समस्त आयुर्वेद पढा।

---

१. सुश्रुतसहिता उत्तरतन्त्र ३७।१३॥

वर्ण—ब्राह्मण अश्वि इन्द्र के समान राज्यशासन मे भाग लेकर क्षत्रिय नही हुए। चिकित्सा द्वारा धनप्राप्त करने के कारण वे हीन-वर्ण हो गए। महाभारत शान्तिपर्व मे लिखा है—

अश्विनौ तु मतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समाहितौ ।२०१।२३॥

अर्थात्—उग्र तप करने पर भी अश्विद्वय शूद्र माने जाते है।

पहले यज्ञ आदि मे उनका भाग नही था। च्यवन के विद्यादान देने के पश्चात् वे यज्ञ मे भाग प्राप्त करने के अधिकारी बने।

ग्रन्थ

१. आश्विन संहिता—चिकित्सा-विशेषज्ञ, देवभिषक्, अश्विद्वय ने आयुर्वेद का ग्रन्थ रचा। गदनिग्रह, प्रथमभाग पृ० ६९ पर हिंग्वादिचूर्ण के अन्त मे 'आश्विनसंहितायाम्' पाठ उपलब्ध होता है। यथा –

शूलानि नाशयति वातबलासजानि
हिंग्वाद्यमुक्तमिदमाश्विनसंहितायाम् ॥

गदनिग्रह भाग प्रथम पृ० ६१।

नावनीतक मे भी आश्विनसँहिता उद्धृत है। अध्याय ११ अतर्गत हरीतकी कल्प आश्विनसहिता से लिया गया है। यह मूल सहिता इस समय प्राप्त नही, परन्तु किसी किसी ग्रन्थ मे इसके उद्धरण मिलते है। भाव-प्रकाश मे भी आश्विनसहिता उद्धृत है।

पं० भगवद्दत्त जी को कागडान्तर्गत ज्वालामुखी पर्वत से अश्विसहिना के ज्वरप्रकरण के कतिपय पत्रे प्राप्त हुए थे। निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि ये पत्र मूलसहिता का अश रखते थे वा नही।

बडोदा के हस्तलिखित ग्रन्थों के सूचिपत्र के पृ० १२९२ तथा सख्या ६२८ पर १० पत्रात्मक आश्विनेयसहिता का हस्तलेख सन्निविष्ट है।

२. चिकित्सासार तन्त्र—ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार अश्वियो ने चिकित्सा-पद्धति पर एक ग्रन्थ रचा। यथा—

चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमघ्नञ्चाश्विनीसुतौ।

ब्रह्मखण्ड अ०, १६।

३. भ्रमघ्न—पूर्वोक्त प्रमाण के अनुसार यह भी चिकित्सा-पद्धति का ग्रन्थ था। ब्रह्मवैवर्त पुराण मे आयुर्वेद की परम्परा मे चिकित्सा-पद्धति के ग्रन्थो का उल्लेख प्रतीत होता है।

चरकसहिता आदि प्रधानतया सिद्धान्त ग्रन्थ है और आमूलचूल चिकित्सातन्त्र इनसे पृथक् थे।

४. **नाडो परीक्षा**—मद्रास सरकार के हस्तलिखित पुस्तकालय की सूची, भाग २३, सख्या १३१५१ में यह लघुग्रन्थ सन्निविष्ट है। तदनुसार इसके अन्त मे लिखा है—

अश्विनीदेवताकृतौ नाडीपरीक्षा सप्त-
विंशतिश्लोकाः समाप्ताः।

सभवतः यह किसी बृहद् ग्रन्थ का एक भाग है।

५. **धातुरत्नमाला**—बीकानेर राज के सग्रह मे यह ग्रथ संख्या १३९३ के नीचे निविष्ट है। वह प्रति सवत् १७१७ की लिखी हुई है। इसके अत मे लिखा है—

इति वैद्यकशास्त्रे अश्विनीकुमारसंहितायां
रत्नमाला समाप्ता।

इस ग्रन्थ मे सुवर्ण, रजत, ताम्र, यशद आदि का वर्णन है। सभवतः यह भी स्वतन्त्र ग्रन्थ न था।

योग— अश्वि-निर्दिष्ट ४० योग गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपने अंग्रेजी ग्रन्थ में एकत्र किए हैं।

वृन्द ७४।९ में अश्विदृष्ट रसायन उल्लिखित है। वङ्गसेन (हेमाद्री, पृ० ५८१) मे अश्विविहित रक्तपित्तनाशन तथा (हेमाद्री, पृ० ६००) वाजिगन्धासर्पि उल्लिखित है। मुखोपाध्याय जी ने इनका उल्लेख नही किया।

नेपाल के राजगुरु श्री प० हेमराज शर्मा काश्यपसहिता के परिशिष्ट पृ० २३४ पर लिखते हैं कि ज्वरसमुच्चय नामक पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थ मे अश्वियो के ज्वर-विषयक अनेक श्लोक उद्धृत है। सभव है, वहा ज्वर-चिकित्सा के अश्वि-निर्दिष्ट योग भी हो।

पाश्चात्य भाषा-मत—आयुर्वेदीय ब्रह्मतन्त्र और आश्विनसहिता आदि का अति पुरातन काल मे अस्तित्व, भाषा-विषयक कल्पित जर्मनमतो पर एक वज्र प्रहार है। वैज्ञानिक-ब्रुव ऐतिहासिक इसका उत्तर दे। उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थो से सहस्रों वर्ष पूर्व लोकभाषा के ये ग्रन्थ विद्यमान थे।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चम अध्याय

देवराज इन्द्र

कृतान्तर्गत देवयुग

वंश—इन्द्र कश्यप प्रजापति का पुत्र था। इसकी माता-दक्ष-प्रजापति की कन्या अदिति थी। कौटल्य के अर्थशास्त्र में बाहुदन्ती-पुत्र का मत दिया है। प्राचीन टीकाकारो के अनुसार बाहुदन्ती-पुत्र इन्द्र ही था। हो सकता है अदिति का अपरनाम बाहुदन्ती हो। इन्द्र आदि बारह भ्राता थे। यथा, महाभारत शान्तिपर्व (पूना स०) अ० २०१ मे लिखा है—

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् ॥१४॥
भगोऽशश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा।
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः ॥१५॥
पूषा त्वष्टा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते।
त एते द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसंभवाः ॥१६॥

अर्थात्—भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, इन्द्र, विष्णु ये बारह आदित्य थे।

अदिति के पुत्र होने से ये आदित्य कहाते थे।[1] श्रेष्ठ गुण-युक्त होने से वे देव कहाते थे। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्नि और सोम भी इन्द्र के भाई थे, परन्तु सहोदर नही। इन्द्र भास्कर से छोटा तथा विष्णु सबसे छोटा था। यह वही इन्द्र था जिसने देवासुर सग्रामो मे भाग लिया। इन्द्र की धर्मपत्नी शची थी। निम्नलिखित वशवृक्ष से पूर्वोक्त सम्बन्ध अधिक स्पष्ट हो जायगा—

---

१. दिति–अदिति–आदित्य–पति-उत्तरपदाण्ण्यः। अष्टाध्यायी ४।१।८५॥ पाणिनि ने किन्हीं कल्पित (mythical) व्यक्तियों के लिए यह सूत्र नहीं बनाया। वह वेद और लोक मे इनके अर्थ जानता था।

नाम तथा पर्याय—इन्द्र, शक्र, शतक्रतु, अमरप्रभु, अमरेश्वर, शचिपति, सहस्राक्ष आदि नाम अथवा नामपर्याय विशेष कारणों से बने हैं। आयुर्वेद की परम्परा में वर्णित इन्द्र का मूलनाम क्या था, इसका अभी निश्चय नहीं। इन्द्र गुणनाम है। महाभारत शान्तिपर्व २१७। ५४ में लिखा है—

बहूनीन्द्रसहस्राणि समतीतानि वासव।

अर्थात्—अनेक इन्द्र हो चुके हैं।

तैत्तिरीय संहिता ७।२।१० का प्रमाण इस बात को और भी स्पष्ट करता है—

तेनेन्द्रं प्रजापतिरयाजयत् ततो वा इन्द्र इन्द्रोऽभवत्
तस्मादाहुर् आनुजावरस्य यज्ञः। इति।

अर्थात्—प्रजापति कश्यप ने इन्द्र का यज्ञ कराया। तब इन्द्र इन्द्र बना।

वेद मे इन्द्र शब्द के भिन्न अर्थ है। ऐतिहासिक इन्द्र का उनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

चरकसहिता सूत्रस्थान मे इन्द्र के निम्नलिखित विशेषण है—

१. शचीपति १।१८॥
२. बलहन्ता १।२०॥
३. सुरेश्वर १।२१॥
४. अमरप्रभु १।२२॥
५. शतक्रतु[1] १।२३॥

चरक चि० १।४।३–८ मे तीन अन्य विशेषण प्राप्त होते है। अमराधिपति, सहस्रदृक्, अमरगुरु।

विष्णुगुप्त कौटल्य का सहस्राक्ष का अर्थ—मौर्य-साम्राज्य का महामन्त्री ब्राह्मण-प्रवर आचार्य चाणक्य अर्थशास्त्र मे लिखता है—

इन्द्रस्य हि मन्त्रिपरिषद् ऋषीणां सहस्रम्। स तच्चक्षुः। तस्मादिमं द्व्यक्षं सहस्राक्षमाहुः। आदि से अध्याय १५।

हे पाश्चात्य ऐतिहासिकब्रुवो सोचो, क्या वह महापुरुष मिथिकल (mythical) था।

कौटल्य अर्थशास्त्र १।८ मे इन्द्र का एक पर्याय "बाहुदन्ती-पुत्र मिलता है।

---

१. अष्टांग संग्रह सूत्रस्थान में—शतक्रतवे ददौ ततः, पाठ मिलता है। शान्तिपर्व २२०।२६ अनुसार अनेक शतक्रतु।

पिंगल छन्द का टीकाकार यादवप्रकाश इन्द्र का एक नाम "दुश्च्यवन" लिखता है ।

अर्जुन—माध्यन्दिन शतपथब्राह्मण २।१।२।११ तथा ५।४।३।७ में लिखा है—

अर्जुनो ह वै नामेन्द्रो यदस्य गुह्यं नाम ।

अर्थात्—इन्द्र का गुह्य नाम अर्जुन है ।

पारसी धर्म-पुस्तक अवेस्ता में इन्द्र का द्रुजेम् नाम वर्णित है । द्रुजेम् नाम का अंग्रेजी रूपान्तर Dragon है । हओम यस्त में लिखा है—

यो जनट अजीं दहाकेम्, थ्रि जफनेम् थ्रि कमेरेधेम् ख्शवस् अशीम्, हजन् यओखश्तीम् अश अओजन्हेम् दस्वीम् द्रुजेम् (Dragon) अघेम् गाएथाव्यो ।[1]

Who killed Azi dahaka three-jawed, three headed, six-eyed and with one thousand powers (of deceit) the very strong devilish, druj, evil to the living creatures.[1]

अर्थात्—जिस द्रुजेम्=अर्जुन ने त्रिशीर्ष और षडक्ष अहिदानव का वध किया ।

काल—इन्द्र ने जिन देवासुर संग्रामों में भाग लिया वे त्रेता के आरम्भ में हुए । त्रेता के अन्त में इन्द्र ने आयुर्वेदोपदेश किया, अत त्रेता के लगभग ४०० वर्ष व्यतीत होने पर अर्थात् विक्रम से लगभग ८५०० वर्ष पूर्व इन्द्र अवश्य था । यहां हमने काल का न्यूनतम मान लिखा है । बहुत संभव है, इन्द्रादि देव इस से सहस्रों वर्ष पूर्व हुए हों ।

यवन ऐतिहासिक हेरोडोटस (विक्रम से लगभग ४०० वर्ष पूर्व) मिश्र की अनवच्छिन्न परम्परा के आधार पर लिखता है—

Seventeen thousand years before the reign of Amasis, the twelve gods were, they affirm, produced from the eight and of these twelve Herculese is one.

(Book II, Ch. 43)

अर्थात्—एमिसिस (विक्रम से लगभग ५०० वर्ष पूर्व) के काल से सत्रह सहस्र वर्ष पूर्व आठ अथवा बारह देव हुए । हरकुलीज=विष्णु उनमें से एक था ।

---

1. A. I. O. C., Mysore, 1937, p. 147.

प० भगवद्दत्तजी ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग[1] मे हेरोडोटस के इस वचन की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है। प०जी प्रबल प्रमाणो से सिद्ध करते है कि ये बारह देव विवस्वान्, इन्द्र आदि बारह भ्राता थे। अत. इन्द्रादि का काल आज से लगभग २० सहस्र वर्ष पूर्व है। आयुर्वेद विद्या तब से ससार का कल्याण कर रही है।

वेदो को ईसा से २००० वर्ष पूर्व मानने वालो के पास इसका कोई उत्तर नही।

आयु—ब्रह्मा के पश्चात् दूसरा दीर्घजीवी ऋषि इन्द्र हुआ। बहुशास्त्रवित् इन्द्र की आयु का ठीक अनुमान अभी कठिन है। इतना अवश्य कह सकते है कि वह दीर्घायु था। अध्यात्म-ज्ञान के लिए प्रजापति कश्यप के समीप उसने १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य वास किया। इन्द्र ने अपने प्रिय शिष्य भरद्वाज को तृतीय पुरुषायुष की समाप्ति पर वेद की अनन्तता का उपदेश किया। शाखायन श्रौतसूत्र १४।१२ मे लिखा है—

अथातः सौत्रामणः।१। इन्द्रो हायुष्कामस्तपस्तेपे। स तपस्तप्त्वा एतं यज्ञक्रतुमपश्यन् सौत्रामणम्। तमाहरत। तेनायजत। तेनेष्ट्वा दीर्घायुत्वमगच्छत्। तमु ह भरद्वाजाय जीर्णाय प्रोवाच। अनेन वा अहमिष्ट्वा दीर्घायुत्वमगच्छमनेनापि त्वं यजेति। तेन ह भरद्वाज इष्ट्वा सर्वायुत्वमगच्छत् ।।२।।

अर्थात्—आयुष्काम इन्द्र ने तप तपा। उसने सौत्रमणि यज्ञ देखा। उस यज्ञ को उसने किया। वह दीर्घायु हुआ। उसी यज्ञ का उपदेश उसने अतिवृद्ध भरद्वाज के लिए किया। इसी से मै दीर्घायु हुआ हू। भरद्वाज भी उस यज्ञ को करके दीर्घायु हुआ।

जिस इन्द्र ने भरद्वाज को वारम्वार युवा किया, जो स्वय रसायनज्ञ वैद्य तथा प्रजापति के आयुष्काम अह का ज्ञाता था, वह यदि स्वय दीर्घजीवी हुआ तो इसमे आश्चर्य ही क्या है।

गुरु और विद्याध्ययन—इन्द्र ने अनेक गुरुओ से विविध विद्याए ग्रहण की। विशेष परिश्रम और गुरुपद-सेवन से इन्द्र बहुशास्त्रवित्[2] हो गया। अधोलिखित पक्तियो में उसकी गुरुपरपरा का उल्लेख है—

१. **आयुर्वेद**—चरकसहिता आदि आयुर्वेद के ग्रन्थो के अनुसार इन्द्र ने

---

१. पृ० १५७, २१५–२२८ तथा २६८–२७६।

२. शान्तिपर्व २२१।१७ के अनुसार सर्ववित्।

अपने भ्रातृपुत्र अश्विद्वय से आयुर्वेदज्ञान प्राप्त किया। चरकसंहिता सूत्रस्थान, १ में लिखा है—

अश्विभ्यां भगवान् शक्रः प्रतिपेदे ह केवलम्।
ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत् ॥५॥

अर्थात्—केवल इन्द्र ने अश्विद्वय से आयुर्वेदज्ञान उपलब्ध किया। इसका अभिप्राय स्पष्ट है। अश्वियो ने इन्द्र के अतिरिक्त सम्पूर्ण आयुर्वेद और किसी को नही पढाया। चरकसंहिता, चि० १।४।४ के अनुसार इन्द्र स्वय कहता है—

आत्मनः प्रजानां चानुग्रहार्थम् आयुर्वेदम् अश्विनौ मह्यं प्रायच्छताम्।

अर्थात्—आत्मीय तथा प्रजाओ के अनुग्रह के लिए आयुर्वेद को अश्वियो ने मुझे दिया।

सुश्रुतसंहिता १।२० मे भी लिखा है—

अश्विभ्यामिन्द्रः

अर्थात्—इन्द्र ने अश्विद्वय से आयुर्वेद सीखा।

२. आत्मज्ञान—छान्दोग्य उपनिषद् ८।७-११ के अनुसार इन्द्र ने प्रजापति से आत्मज्ञान प्राप्त किया।

३. मीमांसाशास्त्र—श्लोकवार्तिक के टीकाकार पार्थसारथिमिश्र ने मीमाँसा की परम्परा के विषय में एक प्राचीन वचन उद्धृत किया है। तदनुसार इन्द्र ने मीमासादर्शन भी प्रजापति से पढा।[1]

४. शब्दशास्त्र—ऋक्तन्त्र तथा पातञ्जल महाभाष्य १।१।१ के अनुसार इन्द्र ने बृहस्पति से शब्दशास्त्र का अध्ययन किया।

५. पुराण—वायुपुराण १०३।६० से सिद्ध होता है कि मृत्यु-यम ने इन्द्र को पुराण का उपदेश किया।[1]

६. नीतिशास्त्र—बार्हस्पत्य अर्थसूत्र मे इन्द्र का बृहस्पति से नीतिशास्त्र पढने का उल्लेख है।[1]

७. छन्दशास्त्र—पिगल छंदशास्त्र के टीकाकार यादवप्रकाश के मतानुसार बृहस्पति ने दुश्च्यवन इन्द्र को छदशास्त्र पढाया।[2]

---

१ इनके प्रमाणों के लिए देखो पं० युधिष्ठिर जी मीमांसककृत संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० ४६ तथा ५७-५८।

२. इसका प्रमाण देखो पं० भगवद्दत्तजी कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग पृ० २४६।

८. मन्त्रद्रष्टा—बहुशास्त्रवित् इन्द्र मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी था। शतपथ ब्राह्मण ६।५।२।१ मे लिखा है—

इन्द्र एतत् सप्तर्चमपश्यत् ।

अर्थात्—इन्द्र ने यह सात ऋचा का सूक्त देखा।

कात्यायनकृत ऋक्सर्वानुक्रमणी के अनुसार ऋग्वेद १०।४८, ४६, ५० का ऋषि इन्द्र वैकुण्ठ है। ऋग्वेद १०।८६ का ऋषि इन्द्र और इन्द्राणी दोनो है। शतपथ ब्राह्मण तथा सर्वानुक्रमणी के लेख से स्पष्ट है कि इन्द्र ऐतिहासिक व्यक्ति था।

पाश्चात्य लेखक और अनुक्रमणी—योरुपीय लेखको ने जब देखा कि सर्वानुक्रमणी के प्राचीन लेख मे पुरातन इतिहास अत्यन्त स्वच्छरूप मे सुरक्षित है, तथा उस इतिहास से उनका कल्पित भाषामत (philology) खडित होता है, तो उन्होने सर्वानुक्रमणी के लेख को असत्य कह दिया। यथा—

(क) जर्मन लेखक ओल्डनबर्ग लिखता है—"pseudo-tradition of the Anukramani"

अर्थात्— अनुक्रमणी की ऐतिहासिक-परपरा असत्य है।

(ख) तत्पश्चात् अमरीकी लेखक ब्लूमफील्ड ने लिखा है—

"The Statements of the Sarvanukramani, ... betray the dubiousness of their authority"—

अर्थात्—सर्वानुक्रमणी का लेख उसकी प्रामाणिकता की सदिग्धता को बुरे रूप से स्पष्ट करता है।

आलोचना—हेतु और उदाहरणरहित योरुपियन लेखको की पूर्वोक्त प्रतिज्ञाए उनकी तथा उनके भाषामत के पराजय की द्योतक है। सर्वानुक्रमणी का आधार ब्राह्मणग्रन्थ है। ब्राह्मणग्रन्थो की आचार्य-परपरा अनवच्छिन्न रही है। इस योरुपीय पक्ष का खडन श्री प० भगवद्दत्तजी ने वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, स० १९८४, पृ० १६४-१६७ पर किया है। उसका उत्तर न देकर जे ए. फान-वेल्जे ने अपने ग्रन्थ Names of Persons in early Sanskrit Literature, पृ० ३४ पर पुन इस मत को दोहराया है। प० भगवद्दत्त जी ने इस मत की निसारता पर भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २७५-७६ पर कुछ और प्रकाश डाला है।

९. ब्राह्मणप्रवक्ता—सहस्राक्ष इन्द्र ब्रह्मवादी था। महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय ५८ मे लिखा है—

सहस्राक्षो महेन्द्रश्च तथा प्राचेतसो मनुः ॥२॥
भरद्वाजश्च भगवांस्तथा गौरशिरा मुनिः ।
राजशास्त्रप्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिनः ॥३॥

अर्थात्—सहस्राक्ष महेन्द्रादि ने राजशास्त्र का निर्माण किया। वे सब ब्रह्मवादी थे।

शास्त्रोपदेश—इन्द्र ने अपने पिता प्रजापति कश्यप के पास १०१ वर्ष का दीर्घब्रह्मचर्य वास किया तथा अनेक ज्ञानवृद्ध महात्माओ का सत्सग किया। गुरुपद-सेवन से इन्द्र ज्ञानगरिमान्वित हुआ। ज्ञान की प्रवृद्ध-गगा उपदेशरूप मे बह निकली। उसी से इन्द्र देवप्रवर हुआ। तैत्तिरीय ब्राह्मण मे लिखा है—

इन्द्रः खलु वै श्रेष्ठो देवतानाम्। उपदेशनात् ।२।३।१।३॥

अर्थात्—इन्द्र निश्चय ही देवो मे श्रेष्ठ है। उपदेश करने से।

शिष्यमंडल—आर्यप्रथा के अनुसार विद्या का सचय उसके अधिकाधिक प्रसार के लिए होता है। इन्द्र ने भी स्थान-स्थान से एकत्रित विद्याधन शिष्यमडल मे वितरण किया। इन्द्र के बहुश्रुत होने के कारण उसके शिष्य भी अनेक थे।

इन्द्र से आयुर्वेद-अध्येता

१—१०. भृगु, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित, गौतम आदि १० तथा कुछ अन्य ऋषियो को इन्द्र ने अनुष्ठान (practice) के लिए कुछ योग बताए। चरकसहिता चि० १।४।३—६ मे लिखा है—

अथेन्द्रस्तदायुर्वेदामृतमृषिभ्यः संक्राम्योवाच-एतत् सर्वमनुष्ठेयम् ।इति।

अर्थात्—तब इन्द्र उस आयुर्वेदामृत को ऋषियो के लिए देकर बोला, यह सब अनुष्ठान-योग्य है।

काश्यपसहिता, वि० पृ० ४२ पर भी ऊपर वाले दश ऋषियो मे से चार के नाम मिलते है। यथा—

इन्द्र ऋषिभ्यश्चतुर्भ्यः काश्यपवशिष्ठात्रिभृगुभ्यः ।

अर्थात्—इन्द्र ने कश्यप, वसिष्ठ, अत्रि तथा भृगु, इन चार ऋषियो को आयुर्वेद का उपदेश किया।

११. भरद्वाज—चरकसहिता सू० १।१९—२३ मे लिखा है—

भरद्वाजोऽब्रवीत्तस्मादृषिभिः स नियोजितः ॥१९॥
तस्मै प्रोवाच भगवानायुर्वेदं शतक्रतुः ।
पदैरल्पैर्मतिं बुद्ध्वा विपुलां परमर्षये ॥२३॥

अर्थात्—आयुर्वेद-सम्मेलन मे भृगु आदि ऋषियो ने परमर्षि भरद्वाज को इन्द्र से आयुर्वेदोपदेश ग्रहणार्थ नियुक्त किया। भगवान् शतक्रतु ने परमर्षि की विपुला बुद्धि को जान कर अल्प-शब्दो मे उसे आयुर्वेद का उपदेश किया।

इस प्रकार इन्द्र से आयुर्वेद सीखने वाले शिष्यों मे भरद्वाज भी एक थे। ऋक्तन्त्र के उद्धरण से ज्ञात होता है कि भरद्वाज के लिए व्याकरण शास्त्रोपदेष्टा भी इन्द्र ही थे।[1]

१२. पुनर्वसु आत्रेय—आत्रेय पुनर्वसु का इन्द्रशिष्यत्व विवादास्पद है। चरक, सू० १।२७–३० के अनुसार आत्रेय पुनर्वसु भरद्वाज का शिष्य है, परन्तु अष्टाङ्गहृदय १।३ मे वाग्भट ने लिखा है—

सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन्।

अर्थात्—सहस्राक्ष=इन्द्र से आत्रेय आदि मुनियो ने आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया।

इस उद्धरण से स्पष्ट हुआ कि वाग्भट आत्रेय पुनर्वसु को भरद्वाज का नही, अपितु साक्षात् इन्द्र का शिष्य मानता है।

१३. धन्वन्तरि—सुश्रुत, सू० १।२० मे लिखा है—

इन्द्रादहम्

अर्थात्—धन्वन्तरि ने इन्द्र से आयुर्वेद ज्ञान उपलब्ध किया।

५ पुनर्वसु, धन्वन्तरि, भरद्वाज, निमि, काश्यप, आलम्बायन आदि महर्षि संसार के रोगपीडित होने पर शतक्रतु=इन्द्र की शरण मे आए। प्रतीत होता है वाग्भट ने भिन्न-भिन्न आयुर्वेद सहिताओ के आधार पर ये नाम लिखे।

अभी तक इन्द्र से आयुर्वेद सीखने वाले तेरह शिष्यो की नामावलि लिखी गई है। आगे अन्य विषय पढने वाले चार शिष्यो का उल्लेख होगा। इनम से प्रथम और चतुर्थ ने आयुर्वेद भी पढा था।

अन्य-विद्या-अध्येता

१. वसिष्ठ—वायुपुराण १०३।६ से ज्ञात होता है इन्द्र ने वसिष्ठ को पुराणोपदेश किया।[2] ब्राह्मणग्रन्थो का उपदेश भी वसिष्ठ को इन्द्र से मिला। तैत्तिरीय संहिता ३।५।२ मे लिखा है—

---

१. प्रमाण देखो पं० युधिष्ठिरजी मीमांसककृत संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ० ४६।

२. ,, ,, संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास पृ० ५८ टिप्पणि ११।

ऋषयो वा इन्द्रं प्रत्यक्षं नापश्यन् तं वसिष्ठः प्रत्यक्षमपश्यत् सोऽब्रवीद्—ब्राह्मणं ते वक्ष्यामि।

अर्थात्—इन्द्र ने वसिष्ठ को कहा कि तेरे लिए ब्राह्मण कहूगा।

२. असुरगुरु—पिंगल छन्दशास्त्र के टीकाकार यादवप्रकाश के मतानुसार इन्द्र ने असुरगुरु = शुक्राचार्य को छदशास्त्र पढाया।[1]

३. आदित्य—पार्थसारथिमिश्र द्वारा उद्धृत प्राचीन वचनानुसार इन्द्र ने आदित्य को मीमासाशास्त्र पढाया।[2]

४. अंगिरा—इन्द्र ने प्रजापति का दीर्घायुप्रद-ग्रह अगिरा के लिए कहा।[3]

उपरिलिखित नामसख्या के अनुसार हम इन्द्र के जिन भिन्न-भिन्न शिष्यो के नाम शास्त्रीय प्रमाणो के आधार पर ढूढ सके है, वे लिख दिए गए। फलतः इन्द्र के अनेक शिष्य थे।

शास्त्र-रचन

अध्ययनाध्यापन के अतिरिक्त इन्द्र ने कई विषयो पर ग्रन्थ-रचना की।

१. आयुर्वेद—यद्यपि इन्द्र की आयुर्वेद सम्बन्धी किसी विशेष रचना का नाम हम अभी नही लिख सकते, तथापि इन्द्र के विभिन्न योग आयुर्वेद संहिताओ में मिलते है। परिणामत: आयुर्वेद सम्बन्धी ऐन्द्र रचना अवश्य थी।

काश्यपस० उपो० पृ० २३ पर उद्धृत शालिहोत्र-वचन से इन्द्र का आयुर्वेदशास्त्र-कर्तृत्व सिद्ध है।

कविराज महेन्द्रनाथ जी का लेख—आयुर्वेद का सँक्षिप्त इतिहास (सन् १९४८) मे शास्त्री महेन्द्रनाथ जी इन्द्र के विषय मे लिखते है—इस आचार्य की किसी सहिता का नाम ज्ञात नही होता। इति। पृ० २१। इससे आगे अति पुरातन सहिताओ के विषय मे वे लिखते है—अश्विनी संहिता, बलभित् सहिता। इति। पृ० २२।

यह बलभित् सहिता इन्द्र के माम से सम्बद्ध है।

२. ज्योतिषान्तर्गत शाकुनशास्त्र—वराहमिहिरकृत बृहत्सहिता ८५।१५ पर भट्ट उत्पल अपनी टीका मे शाकुनविद्या पर प्राचीन आचार्य ऋषिपुत्र का एक वचन उद्धृत करता है। उस उद्धरण के अन्त मे लिखा है—

इत्याह भगवान् इन्द्रः

---

१. देखो संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास पृ० ५८ टिप्पणी १२।

२. ,, ,, ,, ,, पृ० ५९ टिप्पणी १।

३. देखो भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० २७०।

अर्थात्--भगवान् इन्द्र ने यह कहा।

इससे स्पष्ट होता है कि शाकुनशास्त्र पर इन्द्र का ग्रन्थ था।

३. वास्तुशास्त्र—मत्स्यपुराण २५२।२ मे लिखा है कि वास्तुशास्त्रोपदेशक १८ आचार्यो मे पुरन्दर भी एक था। भट्ट उत्पल ने बृहत्सहिता ५२।४१ की टीका मे शक्र का वास्तुशास्त्र विषयक एक श्लोक उद्धृत किया है।

४. अर्थशास्त्र--सहस्राक्ष इन्द्र ने अर्थशास्त्र पर भी ग्रन्थ रचा। उसका नाम बाहुदन्तक था। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ५९ मे लिखा है--

वैशालाक्षमिति प्रोक्तं तदिन्द्रः प्रत्यपद्यत।
दशाध्यायसहस्राणि सुब्रह्मण्यो महातपाः ॥८८॥
भगवानपि तच्छास्त्रं संचिक्षेप पुरंदरः।
सहस्रैः पञ्चभिस्तात यदुक्तं बाहुदन्तकम् ॥८९॥

अर्थात्—इन्द्र ने शिव का दश-सहस्राध्याययुक्त वैशालाक्ष नामक त्रिवर्ग-शास्त्र प्राप्त किया। उसका सक्षेप पुरन्दर ने पाच सहस्र अध्यायो मे किया। इन्द्र के अर्थशास्त्र का नाम बाहुदन्तक था। हम पूर्व पृ० ३५ पर लिख चुके है कि इन्द्र का एक नाम बाहुदन्तीपुत्र था। इसी कारण यह ग्रन्थ बाहुदन्तक कहलाया।

५. व्याकरण—पं० युधिष्ठिरजी मीमासक ने सस्कृत-व्याकरण के इतिहासान्वेषण का प्रशस्तप्रयत्न किया है। ऐन्द्रव्याकरण का परिचयविशेष तथा उसके सूत्र मीमासकजी के इतिहास के पृ० ६० पर देखे।

६. गाथाएं—इन्द्र ने गाथाए भी गाईं। महाभारत वनपर्व अध्याय ८८ मे लिखा है—

एतस्मिन्नेव चार्थेऽसौ इन्द्रगीता युधिष्ठिर।
गाथा चरति लोकेऽस्मिन्गीयमाना द्विजातिभिः ॥५॥

अर्थात्—इसी अर्थ मे इन्द्रगीत-गाथा ब्राह्मणो द्वारा गाई जाती है।

विशेष घटनाएं

१. ब्रह्मचर्य—कई देवो मे कनिष्ठ तथा शरीर मे शिथिल होने के कारण इन्द्र आनुजावर कहलाता था। वह प्रजापति कश्यप के पास चार वार ब्रह्मचर्यवास के लिए गया। यह अवधि १०१ वर्ष की थी।[1] इस काल मे उसने अपने पिता से आत्मज्ञान तथा मीमासा का अध्ययन किया। यह सुदीर्घ ब्रह्मचर्य उसके जीवन की एक विशेषघटना हुई। प्रजापति ने इस ब्रह्मचर्यवास के समय

---

१. छान्दोग्य उपनिषद् ८।७-११।

तथा अपरकाल मे इन्द्र के कई यज्ञ कराए। इनमे से एक यज्ञ-विशेष के परिणामस्वरूप इन्द्र इन्द्र बना।

२. **देवों का आकृतिसाम्य**—सस्कृत साहित्य अथाह समुद्र है। इसका अनवरत अवगाहन बुद्धि-विकास के साथ-साथ कई आश्चर्यमयी घटनाओ का स्पष्टीकरण भी करता है। तैत्तिरीय सहिता ६।६।८ मे लिखा है—

देवता वै सर्वाः सदृशीरासन् ता न व्यावृतम् अगच्छन्।

अर्थात्—सारे देव सदृश अथवा समानाकृति थे। वे एक दूसरे से पहचाने न जाते थे।

इससे आगे तैत्तिरीय सहिता मे एक और वचन है—

इन्द्रो वै सदृङ् देवताभिरासीत्। स न व्यावृतमगच्छत्। स प्रजापतिमुपाधावत्।७।३।६।।

अर्थात्—इन्द्र शेष देवो के सदृश आकृति वाला था। वह स्पष्ट पहचाना नही जाता था। वह प्रजापति के पास गया।

प्रजापति के पास जाने के पश्चात् उसकी आकृति में कुछ अन्तर पडा। जैमिनीय ब्राह्मण १।१६० मे आदिकाल का एक और ऐतिहासिक तथ्य लिखा है। "तब सारे पशु रोहित वर्ण के थे। उत्तरकाल मे श्वेत, रोहित और कृष्ण वर्णों के हुए।"

३. **देवासुर संग्राम**—इन्द्र का देवासुर सग्रामो से घनिष्ठतम सम्बन्ध है। प्रजापति-निर्दिष्ट यज्ञ करने के पश्चात् इन्द्र अधिक बलशाली बना। तत्पश्चात् उसने देवासुर सग्रामो मे भाग लिया। हिरण्यकशिपु आदि दैत्य और विप्रचित्ति आदि दानव, देवो को उनका भूभाग तथा अन्य दायभाग नही देते थे। इस पर उनमें बारह सग्राम हुए। इन युद्धो मे शिव, कार्त्तिकेय-स्कन्द, विष्णु, अन्य देव तथा कई भारतीय सम्राट् इन्द्र के सहायक थे, परन्तु प्रधान भाग इन्द्र का ही था।

बलहन्ता—इन्द्र की जीवन-घटनाए अनेक है, पर विस्तरभय से यहा लिखी नही गईं। चरकसहिता, सूत्रस्थान प्रथम अध्याय मे लिखा है—

स शक्रभवनं गत्वा सुरर्षिगणमध्यगम्।
ददर्श बलहन्तारं दीप्यमानमिवानलम्॥२०॥

अर्थात्—परमर्षि भरद्वाज इन्द्रभवन मे बलहन्ता से मिले।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि त्रेतायुग के अन्त में भरद्वाज जिस इन्द्र से मिला, वह त्रेता युग के आरभ से पूर्व दैवासुर सग्रामो मे विरोचन-पुत्र अथवा

प्रल्हाद-पौत्र बल नामक दैत्य का हन्ता था। वस्तुत इन्द्र बहुत दीर्घजीवी व्यक्ति था।

वैदिक ग्रन्थों में बलहनन—कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय सहिता २।१।५ में लिखा है—

इन्द्रो बलस्य बिलमपौर्णोत्।

अर्थात्—इन्द्र ने बल का निवास-स्थान दुर्ग भेदन कर दिया। पुन ताण्डच ब्राह्मण १९।७।१ मे बलभिद् क्रतु के वर्णन मे लिखा है—

असुराणां वै बलस्तमसा प्रावृतोऽश्मापिधानश्चासीत्।

अर्थात्—असुरो का बल अन्धकार मे आवृत प्रस्तर के दुर्ग मे बन्द हो गया।

अध्यापक कालेण्ड की भूल—यूट्रेख्ट, हालेण्ड के अध्यापक कालेण्ड ने पञ्चविश ब्राह्मण के उपर्युक्त सदर्भ का निम्नलिखित अनुवाद किया है—

The cave belonging to the Asuras was enclosed by darkness (and) (its entrance) was covered with stones.

इस अनुवाद मे बल का नाम नही है। बल का cave अर्थ सर्वथा असगत है। तैत्तिरीय सहिता का पूर्व-लिखित वचन कालेण्ड के अर्थ का खण्डन करता है।

ताण्डच ब्राह्मण २५।१ मे भी बलभिद् नाम की इष्टि है।

बाइबिल मे लिखा है—

they hired against thee Balaam the son of Beor of Pethor of Mesopotamia, to curse thee. Deuteronomy XXIII. 4.

अर्थात्—विरोचन-पुत्र बल मैसोपोटेमिया मे था।

इस बल को इन्द्र ने मारा। इन्द्र आर्य ससार का परमपूज्य पुरुष था। मैसोपोटेमिया तथा ईरान आदि मे असुरजातिया रहती थी। वे इन्द्र से विरोध करती थी।

यह रही ऐतिहासिक घटना। हमारा इस लेख से यही प्रयोजन है कि आयुर्वेद का प्रदाता इन्द्र अति प्राचीनकाल मे था। उस समय अर्थात् आज से लगभग १२००० वर्ष मे पूर्व आयुर्वेद का पुनीत-ज्ञान ससार मे विद्यमान था।

वर्णविपर्यय—प्रजापति कश्यप परम वेदज्ञ ब्राह्मण थे। उनका पुत्र इन्द्र अनेक शास्त्रो का ज्ञाता, उपदेष्टा तथा प्रवक्ता था। उसके दीर्घ ब्रह्मचर्य,

अध्ययनाध्यापन तथा यजन-याजन से परिणाम निकलता है कि वह ब्राह्मण-वृत्ति था। असुरपीडन ने इन्द्र को क्षात्रवृत्ति धारण करने पर बाध्य किया। उसका वर्णविपर्यय हो गया।[१] सग्रामो मे वह बहुत विद्या भूला। उसने विस्मृत-विद्या की प्राप्ति आवश्यक समझी। अपने शिष्य, कौशिक गोत्रीय विश्वामित्र से उसने विस्मृत विद्या पुन प्राप्त की।

योग—इन्द्र का ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही। उसके निम्नलिखित पाच योग गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपने अग्रेजी ग्रथ के प्रथम भाग, पृ० १०७ पर दिए है—

१. ऐन्द्रिय रसायन	१. चरकसहिता, चि०	१।४।६ ॥
२. ,, ,,	२. ,, ,,	१।४।१३–२६॥
३ सर्वतोभद्र		
४. दशमूलाद्य तैल		
५. हरीतक्यवलेह		

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे पञ्चमोऽध्याय:

---

१. देखो प० भगवद्दत्तकृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, पृ० २७२।

षष्ठ अध्याय

प्रकीर्ण उपदेश

६-१५. भृगु आदि ऋषि (त्रेता आरम्भ)

प्रकीर्ण उपदेश—गत चार अध्यायो मे देवयुग के उन आचार्यों का वर्णन हो चुका, जिन्होने ब्रह्मा से आरम्भ होने वाली गुरुपरम्परा मे आयुर्वेद का ज्ञान उपलब्ध किया। यह गुरुपरम्परा त्रेता के अन्त मे आगे चली। इससे पूर्व त्रेता के आरम्भ में अनेक ऋषियो को आयुर्वेद की अनेक आवश्यक बातो का उपदेश हुआ। उन ऋषियो के कतिपय योग आयुर्वेद के ग्रन्थो मे इतस्तत मिलते है। उन्ही के उपदेश से मिश्र, काल्डिया, सीरिया, यूनान आदि देशो की प्राचीन जातियो मे आयुर्वेद का कुछ ज्ञान फैला। इस अध्याय मे उन उपदेश-ग्रहीता प्रकीर्ण-ऋषियो का उल्लेख किया जाता है।

त्रेता से पूर्व संसारावस्था—प्रकीर्ण ऋषियो के वर्णन से पूर्व आवश्यक है कि ससार की वह सामान्य अवस्था बताई जाए, जो आदिकाल तथा देवयुग मे थी। इसके समझे विना आयुर्वेद के प्रसार का इतिहास अज्ञात रहेगा। उस काल मे चार विशिष्ट बाते थी।

१. रोगाभाव—आदिकाल तथा कृतयुग मे प्रजाए नीरोग थी। स्वायभुव मनु की भृगुप्रोक्त सहिता मे लिखा है—

> अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः।
> कृते त्रेतादिषु ह्येषां वयो ह्रसति पादशः ॥१।२३॥

अर्थात्—सतयुग मे मनुष्य नीरोग और सर्वप्रकार से पूर्णकाम थे। तब मानव-आयु ४०० वर्ष थी। त्रेता मे यह आयु-परिमाण ३०० वर्ष, द्वापर मे २०० वर्ष और कलि मे १०० वर्ष होगया। प्रतियुग मानव-आयु पाद-पाद न्यून होती जाती है।

महाभारत शान्तिपर्व मे भृगुसहिता के उपरिलिखित श्लोक का निम्न-लिखित रूपान्तर है—

> अरोगाः सर्वसिद्धार्थाः चतुर्वर्शतायुषः।
> कृते त्रेतादिष्वे तेषां पादशो ह्रसते वयः ॥२४।२४॥

ससार के इतिहास मे कैसा सुन्दर काल था। धन्य वे आर्य ऋषि थे,

जिन्होने इस ऐतिहासिक घटना को सुरक्षित किया। विकासमत पर यह वज्र-प्रहार है।

आचार्य वाग्भट अपने अष्टाङ्ग-सग्रह, निदानस्थान मे लिखता है—

इह कृतयुगे······पुरुषा बभूवुः। · । ते
दीर्घायुषो नीरुजश्च बभूवुः। अध्याय १।

२. **अधर्माभाव**—महाभारत के पूर्वोक्त प्रकरण मे व्यासजी ने लिखा है—

नाधर्मेणागमः कश्चिद् युगे तस्मिन्प्रवर्त्तते ।।२४।२२।।

अर्थात्—उस सतयुग मे कोई आगम अधर्मभाव से प्रवृत्त नही होता था।

इससे सिद्ध हुआ कि कृतयुग मे समस्त शास्त्र सत्य थे, अत. मानवप्रजा ध ्युक्त रहती थी। वर्तमान ससार मे मनुष्य की अधिकाधिक हानि, प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त, अनार्ष-साहित्य से हो रही है। कागज काला करना साधारण बात हो गई है।

इसी विषय मे अग्निवेश के सतीर्थ्य महामुनि पराशर अपनी ज्योतिष-सहिता मे लिखते है—

पुरा खलु-अपरिमित-शक्ति-प्रभा-प्रभाव-वीर्य . धर्मसत्त्वशुद्ध-तेजसः पुरुषा बभूवुः।

अर्थात्—आदियुग मे अपरिमित शक्ति, कान्ति, प्रभाव, वीर्य, धर्म, सत्त्व, तथा शुद्ध-तेज वाले पुरुष हुए।

ज्ञात हुआ कि कृतयुग मे प्रजाए अपरिमित धर्मादि युक्त थी।

३. **अनिकेताश्रय**—कृतयुग मे प्रजाए निकामचारिणी थी। वायुपुराण अध्याय ८ मे लिखा है—

ततः सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि।
न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वंद्वं नापि च क्रमः ।।५२।।
पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेताश्रयास्तु ताः।
विशोकाः सत्त्वबहुला एकान्तसुखितप्रजाः ।।५३।।
ता वै निकामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः।

अर्थात्—प्रजाओ के विस्तृत होने पर भी उनमे परस्पर टक्कर नही होती थी। वे पर्वत और झीलो के पास रहने वाली, गृह आदि मे आश्रय न करने वाली, शोकरहित, सत्त्वप्रधान, नितान्त-सुखी, प्रसन्नमना तथा निकाम-चारिणी थी।

इस वचन से स्पष्ट है कि कृतयुग मे भी भूतल पर प्रजाए अत्यल्प न थी।

तथापि उस काल के लोग घर बना कर न रहते थे । उन्हे घर बना कर रहने की आवश्यकता न थी। वे शीतोष्ण के प्रभाव से ऊपर थे ।

४ निरामिष तथा उत्कृष्ट आहार—कृतयुग मे पूर्ण-वीर्य-युक्त उत्कृष्ट सस्य आहार थे । मासाहार का नाम भी न था । वायुपुराण मे स्पष्ट लिखा है—

पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै ।८।४८।

अर्थात्—आदियुग मे निश्चय ही पृथ्वीरस से उत्पन्न आहार पर लोग निर्वाह करते थे ।

पशु-बलि अभाव—न केवल भोजनार्थ अपितु यज्ञार्थ भी पशुवध न होता था । आयुर्वेदीय चरकसहिता मे लिखा है—

आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालभनीयाः
बभूवुर्नालंभाय प्रक्रियन्ते स्म ॥ चि० १९।४॥

अर्थात्—आदिकाल मे पशु स्पर्शमात्र के लिए लाए जाते थे, वध के लिए नही ।

उस पावन-काल मे जब अधर्म का आभास भी न था, तब पशुवध का होना अमान्य था । महाभारत अनुशासनपर्व मे पुरानी अनुश्रुति के आधार पर इसी तथ्य को व्यक्त किया है—

श्रूयते हि पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः ।
येनायजन्त विद्वांसः पुण्यलोकपरायणाः ॥११७।५४॥

अर्थात्—सुना जाता है, पुराकल्प मे, यज्ञ मे पशु समालभ के लिए भी नही लाए जाते थे । व्रीहिमात्र से यज्ञ हो जाता था ।

मनुष्य की आयु-दीर्घता, बुद्धि-सूक्ष्मता, आचार-उच्चता तथा नीरोगता का यही मूल है ।

पाश्चात्यों की मिथ्या-कल्पना—पूर्वोक्त वर्णन ऐतिहासिक है । इसमे अणुमात्र असत्य नही । पाश्चात्य-वैज्ञानिकब्रुवो ने विकासमत को स्वीकार करके कल्पना के आधार पर लिखा है—आदि मानव शिकार खेलता था, मास खाता था, घर बनाना नही जानता था, असभ्य तथा अज्ञानी था । उसे रोग भी होते थे । औषध के अभाव में पहले सहस्रो लोग मर जाते थे । धीरे-धीरे बुद्धि का विकास होने पर औषध-ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

शिकार में परस्व-हरण का अधर्म है । आदियुग मे अधर्म न था, पुन शिकार की क्या बात ।

जब शिकार न था, तो माँसाहार स्वप्न में भी न था ।

नगर, ग्राम तथा गृह-निर्माण की विद्या वेद मे वर्णित है, पर कृतयुग के सशक्त लोगो को गृह आदि की आवश्यकता नही पडी।

उस काल के लोग अज्ञानी तथा असभ्य भी न थे। सम्पूर्ण-ज्ञान के निधि वेद का उनमे प्रसार हो चुका था, तथा आयुर्वेदादि अनेक शास्त्र उपदिष्ट हो चुके थे।

उस काल मे अधर्माभाव के कारण रोगोत्पत्ति न हुई थी। अत असामयिक मृत्यु न थी। हम पहले अध्याय मे लिख चुके है कि आदि में त्रिकालज्ञ, आप्त-पुरुष उत्पन्न हुए, अत ज्ञान का धीरे-धीरे विकास कैसे माना जाए।

त्रेता का आरम्भ

रोगोत्पत्ति—रोगोत्पत्ति कृत तथा त्रेता की सधिवेला मे हुई। उस समय धर्म का एक पाद नष्ट हो गया।

रोगोत्पत्ति के कारण

१. अधर्म—रोग का मूल अधर्म है। आयुर्वेदीय चरकसहिता में अत्यन्त स्पष्ट रूप से रोग की उत्पत्ति का वर्णन है—

आदिकाले हि···· ·व्यपगतभयरागद्वेष····· रोगनिद्रातन्द्रा······ आलस्यपरिग्रहाश्च पुरुषा बभूवुरमितायुषः ॥२८॥

भ्रश्यति तु कृतयुगे केषाञ्चिदत्यादानात् साम्पन्निकानां शरीरगौरव-मासीत् सत्वानाम्। गौरवाच्छ्रमः, श्रमादालस्यम्, आलस्यात् सञ्चयः, सञ्चयात् परिग्रहः, परिग्रहाल्लोभः प्रादुर्भूतः कृते ॥२९॥

ततस्त्रेतायां लोभादभिद्रोहः।······ततस्त्रेतायां धर्मपादोऽन्तर्द्धान-मगमत्। पृथिव्यादीनां च गुणपादप्रणाशोऽभूत्। तत्प्रणाशकृतश्च सस्यानां[1] स्नेहवैमल्य··· ···गुणपादभ्रंशः। ततस्तानि प्रजाशरीराणि हीयमानगुणपादैश्चाहारविहारैरयथापूर्वमुपष्टभ्यमानानि· ·········प्राग्व्या-धिभिराक्रान्तानि ॥३०॥ विमानस्थान अ० ३।

अर्थात्—आदिकाल मे भय, राग, द्वेष, रोग, निद्रा तन्द्रा, श्रम तथा

---

१. ओषधियाँ ग्राम्य और आरण्य हैं। व्रीहि, यव, गोधूम आदि सप्तदश ग्राम्य ओषधियाँ वायुपुराण ८।१४६—१५२ में वर्णित हैं। अभिधान चिन्तामणि पृ० ४७१ पर भी इस विषय के पुरातन श्लोक उद्धृत हैं। चरकसंहिता आदि ग्रन्थों में भी सूत्रस्थान में अन्नपानविधि का उल्लेख है। ये अन्न ही सस्य कहाते हैं।

आलस्य रहित, तथा किसी से कुछ न लेने वाले अमितायु[1] पुरुष हुए।

कृतयुग के अन्तिम काल मे अत्यन्त (पदार्थ) लेने से सपन्न हुए लोगो का शरीर स्थूल हो गया। स्थूलता के कारण उन्हे श्रम करना पडा। श्रम से आलस्य, आलस्य से सञ्चय, सञ्चय से परिग्रह तथा परिग्रह से लोभ की उत्पत्ति हुई।

टिप्पण—सञ्चय=hoarding पाप का मूल है। अत. आर्य लोगो मे दान का माहात्म्य है। धन के उचित विभाग का ठेका लेने वाले गोमांसभक्षी कार्लमार्क्स तथा उसके अनुयायियो को दान की सुन्दर व्यवस्था नही सूझी। अस्तु।

फिर त्रेता मे लोभ से अभिद्रोह की भावना उत्पन्न हुई। तब त्रेता मे धर्म का एक पाद लुप्त हो गया। पृथिवी आदि के गुणो का एक पाद भी नष्ट हो गया। गुणो का एक पाद न्यून होने से धान्यो के स्नेह, विमलता आदि गुणो का भी एक पाद नष्ट हो गया। तब आहार-विहार के किञ्चित् उलटा होने से प्रजाओ के शरीर पहली वार ज्वरादि व्याधियो से आक्रान्त हुए।

रोग का सामान्य कारण

इस प्रकरण से ज्ञात हुआ कि लोभ से अधर्म उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् व्याधियो का जन्म हुआ। अष्टागसंग्रह में अनेक पुरातन आर्ष सहिताओ के आधार पर यही मत सग्रहीत है। यथा—

भ्रश्यति तु कृतयुगे युगस्वभावात् क्रमेण परिहीयमाणसर्वगुणेषु पृथिव्यादिषु शरीरेषु च धर्मातिक्रमात् पुरुषेष्ववश्यंभाविनो निरपेक्ष-रूक्षाभिरुपेक्षिता देवताभिर्ज्वरादयः प्रादुरभूवन्निति सर्वरोगाणां सामान्यतः संभवः। निदानस्थान, अ० १ पृ० २।

अर्थात्—कृतयुग के समाप्ति-काल मे, त्रेता के प्रभाव से, पृथिवी आदि तथा शरीरो के, क्रमश सर्वगुण-न्यून होने पर धर्म के नियमो के अतिक्रमण से पुरुषो मे अवश्य होने वाले, निराश तथा नि स्नेह देवताओ द्वारा प्रतिक्रिया न किए गए, ज्वरादि उत्पन्न हुए। यही सब रोगो की उत्पत्ति का सामान्य कारण है।

---

१. मुनि कात्यायन ने लिखा है कि—

जिस युग मे मानव-आयु का जितना परिमाण है, उस युग मे उस परिमाण से अधिक जीने वाले अमितायु होते है।

विशेष कारण

१. दक्षयज्ञ—दक्षयज्ञ एक भयावह घटना थी। वर्तमान समय मे प्रकाशित आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे दक्षयज्ञ का विध्वस सामान्य-रूप से वर्णित है। ज्वरोत्पत्ति का आलकारिक वर्णन इसी घटना पर आश्रित है। यह यज्ञ रोगोत्पत्ति का एक विशेष कारण था। चरकसहिता चिकित्सास्थान अ० ३ मे लिखा है—

क्रोधाग्निरुक्तवान् देवमहं किं करवाणि ते ॥२४॥
तमुवाचेश्वरः क्रोधं ज्वरो लोके भविष्यसि।

अर्थात्—दक्षयज्ञ मे भय से उत्पन्न क्रोधाग्नि ने शिव को कहा, देव मै तुम्हारा क्या कार्य करू। शिव ने उसे कहा—तू संसार मे ज्वर हो जाएगा।

चरकसहिता निदानस्थान मे भी लिखा है—

ज्वरस्तु खलु महेश्वरकोपप्रभवः। अ० १।४०॥

अर्थात्—ज्वर महेश्वर के क्रोध मे उत्पन्न हुआ।

वाग्भट ने अष्टागसग्रह मे इसका विशद वर्णन किया है—

तद्यथा। पाकलो गजेषु अभितापो वाजिषु·········
भूमौ ऊषरो मनुष्येषु ज्वर इति॥

तत्सहजाश्चारोचकांगमर्दशिरोव्यथाभ्रमक्लमग्लानितृष्णासंतापादयः। तत्संतापाच्च रक्तपित्तम्। तत्रैव च यज्ञे क्रोधभयाभिभूतानां परितो विद्रवतां लंघनप्लवनाद्यैर्देहविक्षोभणैर्गुल्मविद्रधिवृद्धिजठरादयः······ । सोऽपि हि न विना ज्वरेणानुबध्नातीति सकलोऽपि रोगग्रामो ज्वरपूर्वको ज्वरशब्दवाच्यो वा॥ निदानस्थान, अ० १, पृ० ३॥

अर्थात्—ज्वर के नाना नाम होने पर हाथियो मे उसका नाम पाकल हुआ, घोडो मे अभिताप, भूमि मे ऊसर तथा मनुष्यो मे ज्वर।

अरुचि अग टूटना शिर पीडा चक्कर आना, क्लम, ग्लानि, प्यास तथा दाह आदि भी ज्वर के साथ उत्पन्न हुए। उसी यज्ञ में शिव-क्रोध के भय से आक्रान्त हुए चारो ओर दौडते हुए लोगो को देह के विक्षोभ से रोगों ने ग्रसा।

सारा रोगसमूह ज्वर के विना नही होता। ज्वर रोगो मे प्रथम तथा रोग का पर्यायवाची है। काश्यपसहिता मे इसी वर्णन को और भी स्पष्ट कर दिया है—

दक्षयज्ञे वधत्रासादेवर्षीणां पलायताम्।
रोगाः सर्वे समुत्पन्नाः संतापादेहचेतसोः॥१४॥

कल्पस्थान, सहिताकल्प।

अर्थात् —दक्ष के यज्ञ मे रुद्र द्वारा मारे जाने के भय से देवर्षियो के भागने पर, शरीर और मन के सताप से सब रोग उत्पन्न हुए ।

वास्तव मे उस यज्ञ मे भाग लेने वाले शिव के क्रोध से भयभीत हुए। वे इतस्तत. भागे। उस महान् उद्वेग से अनेक लोगो को ज्वर हो गया। वे अन्य रोगो से भी आक्रान्त हुए। उससे पूर्व दीर्घायु तथा नीरोग पुरुष थे।

पूर्वपक्ष—अधर्मोत्पत्ति से रोगोत्पत्ति हुई यह असत्य है ।

उत्तरपक्ष—आयुर्वेद की सारी सहिताए असत्यप्रचार मे लग गई, तथा ऋषि, मुनि अनृतभाषी थे, ऐसी कल्पना केवल हमारे जातीय-गौरव को नष्ट करने तथा ऐतिहासिक तथ्यो को समाप्त करने के लिए ही की जाती है। योरुप का वर्तमान दृष्टिकोण केवल भौतिक है। उसमे आत्मतत्त्व और पुनर्जन्म आदि के सिद्धान्त का समावेश नही। वहा ईसाई-मत के कतिपय श्रेष्ठ उपदेशो का प्रभाव भी लुप्त हो रहा है। अधर्म का प्राबल्य अपने उग्ररूप मे दिखाई देने लग पडा है। युद्ध का भय स्थायी हो गया है। नए रोग उत्पन्न हो रहे है। फलत भौतिक दृष्टि वाले पाश्चात्य लोगो के वृथा-लेखो का सत्य-इतिहास मे कोई प्रमाण नही।

२. ग्रामवास—त्रेता के आरम्भ मे अधर्म प्रवृत्त हुआ। मात्स्यन्याय के कारण दण्डशासन को आवश्यकता पडी। वैवस्वत मनु ससार का प्रथम राजा वरण हुआ। लोगो के क्षीण-शक्ति हो जाने से घर बनाए विना रहना असभव हो गया। तब देश, जनपद, राष्ट्र, मण्डल, विषय, उपवर्तन, नगर, पुर, पत्तन, ग्राम तथा कर्वट आदि निर्मित हुए। इनमे से प्रत्येक की जन-सख्या का परिमाण नियत था। जनसख्या अधिक होने पर वमन-नियम से कुछ लोगो को एक स्थान से ले जाकर दूसरे स्थान पर बसा दिया जाता था। इससे बहुधा नए नगर बन जाते थे। राष्ट्र मे जनसख्या की अत्यधिक वृद्धि पर रोक रहती थी। आचार्य विष्णुगुप्त कौटल्य लिखता है—

भूतपूर्वम् अभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्द-वमनेन वा निवेशयेत्। अध्यक्ष-प्रचार, द्वितीयाधिकरण, अध्याय १।

अर्थात्—पूर्व बसे अथवा नए बसाए गए जनपद को, दूसरे देशो से श्रेष्ठ मनुष्यो को लाकर, अथवा स्वदेश से अभिष्यन्द-वमन द्वारा बाहर निकाल कर, स्थापित करे ।

कुमारसभव ६।३७ की टीका मे अरुणगिरिनाथ इस अभिष्यन्द अर्थात् वृद्धि-प्राप्त जनसख्या के वमन के कौटल्य-वचन का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखता है—

ग्रामादिनिवेशने यावत्संख्याको जनो व्यवस्थापितः, तावत् संख्याकाज्जनाद् आधिक्येन यो जनः समुत्पद्यते, सोऽभिष्यन्द शब्देनोच्यते। तस्य वमनमन्यत्रानयनम्।

कुमारसभव के पूर्वोक्त वचन की टीका मे नारायण अभिष्यन्द शब्द का भोज का अर्थ लिखता है—

व्यवस्थितादभ्यधिकोऽप्यभिष्यन्दो जनादिकः॥

अर्थात्—व्यवस्थित जनसख्या से अधिक जनो को अभिष्यन्द शब्द से पुकारते है।

हिटलर और पाकिस्तान ने अपने दुःख को न्यून करने के लिए अभिष्यन्द-वमन सिद्धान्त वर्ता।

आर्यवर्त्म मे पञ्चमहायज्ञादि का विधान नगरवास से उत्पन्न हुई अस्वच्छता को दूर करता है। इस पर भी ग्रामवास रोगोत्पादक माना गया है। महामुनि चरक अपनी आयुर्वेद सहिता में लिखते है—

ग्राम्यो हि वासो मूलमशस्तानाम्॥ चि० १।४।४॥

अर्थात्—ग्राम मे रहना अवाछित रोगादि का मूल है।

फलत. कह सकते है कि रोगो के आरम्भ होने का एक कारण ग्रामवास भी है।

योरुप आदि में अनेक वैज्ञानिकप्रकारो से नगर आदि की स्वच्छता का पर्याप्त प्रबन्ध है, तथापि वेदज्ञान-रहित उन लोगो को अग्निहोत्र से होने वाली परम स्वच्छता का ज्ञान नही।

३. ग्राम्याहार—ससार में रोग का तीसरा कारण ग्राम्याहार है। हम पूर्व लिख चुके है कि त्रेता मे सस्य तथा ओषधियों के गुणो का एक पाद न्यून हो गया। भूमि कृष्टपच्या हो गई। स्वच्छन्दजात वनस्पतियो की शक्ति अधिक होती है। साधारण खेतो के सस्य अल्पबल-वीर्य के हुए। पार्वत्य-सस्य सब को प्राप्त नही होते थे। अत इन ग्राम्य-सस्यो और उनके विविध-रूपो मे पका कर खाने से शारीरिक शक्तियाँ न्यून हुई। तब रोग शीघ्रता से आक्रमण करने लगे।

हिमालय पर इन्द्र और ऋषियों का समागम

ऐसी अवस्था होने पर भृगु, अगिरा, अत्रि आदि ऋषि इन्द्राधिकृत हिमालय पर एकत्र हुए। इन्द्र उनसे मिला। उनकी शारीरिक अवस्था की मन्दता देख वह बोला—

स्वागतं ब्रह्मविदां ज्ञानतपोधनानां ब्रह्मर्षीणाम् ।

कालश्चायम्-आयुर्वेदोपदेशस्य........भवन्तो मत्तः श्रोतुमर्हत-अथोपधारयितुं प्रकाशयितुं च ....। चरकसंहिता, चि०, अ० १।५।।

अर्थात्—हे ब्रह्मर्षियो आयुर्वेदोपदेश का काल आ गया। आप मुझसे यह उपदेश सुनने, धारण तथा प्रकाशित करने के योग्य है।

इन्द्र ने यह ज्ञान अनुष्ठान के लिए दिया। चरकसहिता के इस प्रकरण मे इन्द्र उपदिष्ट ऐन्द्रिय-रसायनो का उल्लेख है।

आगे इन्द्र से उपदेश ग्रहण-कर्ता दस ऋषियो का क्रमश वर्णन किया जाता है।

६. भृगु=प्रथम प्रजापति

प्रजापति—आर्य इतिहास मे २१ प्रजापति कहे गए है। वायुपुराण ६५।७३ के अनुसार भृगु प्रथम प्रजापति था। कुमारसभव ६।६ मे प्रजापतियो को **धातार.** तथा ८।५२ मे **पितरः** कहा है। महाभारत आदि मे भी प्रजापतियो के युग को पितर-युग तथा प्रजापतियो को पितर (शा०३४३।५४) कहा है।

वंश परम्परा—महर्षि भृगु ब्रह्मा के मानसपुत्र थे। इस पर भी वे वारुणि कहलाते थे। शतपथ ब्राह्मण ११।६।१।१ मे लिखा है—

भृगुर्ह वै वारुणिः। वरुणं पितरं विद्ययातिमेने। इति।

अर्थात्—निश्चय ही वरुण भृगु का पुत्र था। वह अपने आपको अपने पिता की अपेक्षा अधिक विद्वान् समझने लगा। भृगु वारुणि कैसे हो गया, इसे महिदासजी ने ऐतरेय ब्राह्मण मे स्पष्ट किया है—

तं वरुणो न्यगृह्णीत। तस्मात् स भृगुर्वारुणिः। १।१३।१०।।

अर्थात्—वरुणने उसे ग्रहण किया। इसी कारण भृगु वारुणि है।

महर्षि भृगु की दो पत्नियाँ थी। एक हिरण्यकशिपु-कन्या दिव्या तथा दूसरी पुलोम-दुहिता पौलोमी। नीचे महर्षि भृगु का सक्षिप्त वश-वृक्ष दिया जाता है—

दिव्या — कवि=भृगु वारुणि=अथर्वा — पौलोमी

शुक्र=कवि=काव्य=उशना तथा बारह याज्ञिक भृगुदेव[1]	च्यवन

परशुराम, वाल्मीकि, वृद्धजीवक, तथा शौनक इसी कुल से सम्बद्ध थे।[2]
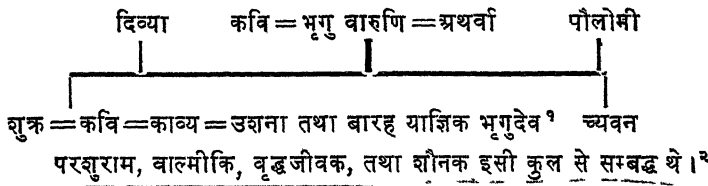
१. तुलना करो वायु पुराण ६५।८६-८७।

२. भृगुवंश के विस्तृत वृत्त के लिए देखो भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० २३७।

पार्जिटर और भृगु—पार्जिटर अपने ग्रन्थ एनशिएण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडिशन पृ० १८८ पर लिखता है—

Bhrigu and Kavi are purely mythical.

अर्थात्—भृगु और कवि सर्वथा कल्पित है।

आलोचना—भृगु का एक नाम कवि है, अत दोनो को सर्वत्र पृथक् नही समझना चाहिए। भृगु शुद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति है। जो व्यक्ति आशा रखता है कि भारतवर्षीय विद्वान् उसे कल्पित माने, वह वृथा आशा करता है। अग्रेजो के उच्छिष्टभोजी ऐतिहासिकब्रुव भले ही ऐसा माने। विद्वान् उनकी विद्या को जानते है—

नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यतीति। निरुक्त १।१६॥

देश—भृगु वरुण का उत्तराधिकारी था। वरुण का राज्य गन्धर्व जातियो पर था। अत अरब, पितरदेश = ईरान, काल्डिया आदि प्रदेशो मे भृगुवशियो का बडा विस्तार हुआ। भारत के पश्चिम मे जमदग्नि तथा परशुराम आदि रहते थे। भृगुकच्छ अथवा वर्तमान भरोच उन्ही का स्थान था।

भार्गव अथा आथर्वण श्रुति—वरुण तथा उसकी कुलपरम्परा मे आने वाले भृगुवंशियो का अथर्ववेद से घनिष्ट सम्बन्ध था। शतपथ ब्राह्मण १३।४। ३।७ मे वरुण की प्रजाओ के लिए अथर्ववेद के उपदेश का वर्णन है। अथर्ववेद का एक नाम भृगु-अगिरो-वेद है।

बृहत्सर्वानुक्रमणी के अनुसार भृगु अनेक अथर्ववेदीय सूक्तो का द्रष्टा था। कुछ आथर्वण सूक्तो के द्रष्टा भृग्वगिरा तथा अथर्वाङ्गिरा सम्मिलित रूप से है।

भृगुओं के मन्त्रों का कुरान पर प्रभाव—प० भगवद्दत्तजी ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, पथम भाग, पृ० २४३ पर लिखा है—

कुरान इस समय अरब जाति का मान्य-पुस्तक बन गया है। कुरान की अनेक आयात(वचन) पढ कर कुरानाभ्यासी रोगियो की चिकित्सा करते है। वे अनेक प्रकार के अन्य टोने आदि भी करते है। उन्होंने यह बात भृगुओ के वशजो मे प्रचलित अनेक आथर्वण मन्त्रो से ली है। अथर्ववेद का भृगु-ऋषियो से गहरा सम्बन्ध है। आथर्वण मन्त्रो द्वारा ऐसी क्रियाए बहुत देर से चल पडी थी। अत. आथर्वण-क्रियाओ की प्रतिध्वनि होने से निश्चय है कि कुरान पर भृगु-प्रभाव अधिक पडा है। इति।

स्मरण रहे कि कुरान का सन्देश देवदूत जिबरा-ईल लाता था। जिबरा भृगु का-रूपान्तर प्रतीत होता है।

भृगुप्रणीत-शास्त्र—भृगु ऋषि तथा अनूचान था। जैमिनीय ब्राह्मण १।४२ मे लिखा है—

भृगुर्ह वारुणिर् अनूचान आस।

अमरसिंह के नामलिङ्गानुशासन मे अनूचान के अर्थ मे लिखा है—

अनूचानः प्रवचने सांगेऽधीति गुरोस्तु यः।

अर्थात्—जिसने गुरु से साग वेद पढा है।

प्रतीत होता है भृगु ने अनेक शास्त्र साग पढे थे। उनका अति सक्षिप्त उल्लेख आगे किया जाता है—

१. धर्मशास्त्र—भृगु ने स्वायभुव मनु के विशाल धर्म-शास्त्र का सहिता-रूप मे सक्षेप किया।

स्वायभुव मनु ऋषियो से स्वय कहता है कि मेरे धर्मशास्त्र का कथन भृगु करेगा। उस भृगुप्रोक्त शास्त्र को भार्गव-प्रमति ने पुन सक्षिप्त किया। वर्तमान मनुस्मृति मे कतिपय प्रक्षेप तो है, पर मूल ग्रन्थ भार्गव-प्रमति का ही है। इसी कारण इसमे सुदा-पैजवन आदि उत्तर-कालीन राजाओ का उल्लेख है। भृगुप्रोक्त सम्पूर्ण सहिता वर्तमानकाल मे उपलब्ध नही। कारण, विश्वरूप आदि पुरातन टीकाकारो ने भृगु के नाम से जो अनेक श्लोक अपने-अपने ग्रन्थो मे उद्धृत किए है, उनमे से अनेक इस मनुस्मृति मे नहीं मिलते।

काणे जी का भ्रम—पाण्डुरग वामन काणेजी ने अग्रेजी भाषा मे धर्मशास्त्र का इतिहास लिखा है। उसमे वे लिखते है—

No one should take very seriously these varying accounts even in the Mahabharata and in the Narada-smriti, as they are intended to glorify some particular text or texts. (p 138)

The tradition of the Naradasmriti that the shastra of Manu was successively abridged by Narada, Markandeya and Sumati Bhargava is, as has been observed above, not worth much, since it is merely intended to glorify Naradas work (p. 149)

Then between 2nd century B. C. and 2nd century A. D. the Manusmriti was finally recast, probably by Bhrigu. (p 156)

अर्थात्—महाभारत तथा नारद स्मृति मे मूल मानव धर्मशास्त्र के सक्षेप का जो वृत्त लिखा है वह अविश्वसनीय है। वर्तमान मनुस्मृति ईसापूर्व दूसरी शती से ईसागत दूसरी शती मे सभवत. भृगु द्वारा रची गई।

आलोचना—महाभारत तथा नारद स्मृति मे लिखा इतिहास सत्य है। नारद ने अपने ग्रन्थ के गौरव की वृद्धि के लिए यह इतिहास नही लिखा, अपितु काणे जी ने सम्पूर्ण शास्त्रो का अवगाहन न होने मे तथा पाश्चात्य-प्रभाव के कारण, ऐसा अप्रशस्त लेख किया है। काणेजी नही जानते, कि भारतीय इतिहास में भृगु एक ही था। वह ईसा से २०० वर्ष पूर्व से २०० वर्ष उत्तर तक कभी न था। तब तो भार्गव गोत्रके लोग थे। भृगु तो ईसा से सहस्रो वर्ष पूर्व था। जिस भृगु का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थो मे है, वह उन ग्रन्थो से पूर्व-काल का व्यक्ति था। जैमिनीय ब्राह्मण मे उसके लिए—आस, क्रिया का प्रयोग हुआ है, अर्थात् वह दिवगत हो चुका था। काणे जी को मिथ्या जर्मन-भाषा-मत तग कर रहा है। अस्तु।

मनुस्मृति के टीकाकार भागुरि, भर्तृयज्ञ, देवस्वामी और असहाय ईसा पूर्व २०० से सैकडो वर्ष पूर्व हो चुके थे। काणेजी को इन विवरणकारों के काल का यथार्थ ज्ञान नही है।

२. **वास्तु शास्त्र**—मत्स्यपुराण २५२।२-४ मे अठारह विख्यात वास्तु शास्त्रोपदेशको के नाम लिखे है। भृगु उनमें से एक है।

३. **शिल्पशास्त्र**—विश्वकर्मशिल्पानुसार विश्वकर्मा का गुरु भृगु था। महाभारत शान्तिपर्व २१२।३४ मे लिखा है—

शिल्पशास्त्रं भृगुः पुनः।

यह शिल्पशास्त्र वास्तुशास्त्र से कितना अभिन्न था, यह अन्वेषणीय है।

४. **ज्योतिष**—आजकल ज्योतिष-सम्बन्धी भृगुसहिता प्रचलित है। इस विषय मे हम निश्चितरूप से कुछ नही कह सकते। ऐतिहासिक गवेषणा आवश्यक है।

५. **आयुर्वेद**—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय जी ने भृगु के किसी योग आदि का उल्लेख नही किया। परन्तु अष्टाङ्गहृदय, हेमाद्रि-टीका, चिकित्सास्थान ३।१६७,१६८ पर रसायन के वर्णन में लिखा है—

भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात्।

हेमाद्रि इस यक्ष्मनाशक योग को योगरत्न से उद्धृत करता है। यही योग वगसेन-संहिता कास-प्रकरण मे श्लोक १७० आदि है। जिस संहिता में यह योग था, वह भृगु-सहिता थी।

भृगु की आयुर्वेद-सहिता का अस्तित्व एक अन्य प्रमाण से भी सिद्ध होता है। महाभारत से पूर्वकालीन शालिहोत्र ऋषि के हयशास्त्र[1] के अनेक प्रमाण हेमाद्रि-विरचित लक्षणप्रकाश मे मिलते है। उनमे से कतिपय श्लोक राजगुरु हेमराजजी ने काश्यपसहिता, उपोद्घात, पृ० २३ पर टिप्पण १ मे उद्धृत किए है। यथा—

वसिष्ठो वामदेवश्च च्यवनो भारविस्तथा (भार्गवस्तथा)।
असितोदेवलश्चैव कौशिकश्च महाव्रताः।
अदालिकश्च भगवान् श्वेतकेतुर्भृगुस्तथा ॥
इन्द्रश्च देवराजश्च सर्वलोकचिकित्सकाः।
एते चान्ये च बहव ऋषयः संश्रितव्रताः॥
आयुर्वेदस्य कर्तारः सुस्नातं ते दिशन्तु ते ॥ (१।१५६)

यद्यपि पूर्व उद्धरण के कई पाठ अशुद्ध और टूटे हुए है। परन्तु उससे इतना ज्ञात होता है कि औद्दालकि श्वेतकेतु, भृगु तथा देवराज इन्द्रादि अनेक ऋषि सर्वलोकचिकित्सक तथा आयुर्वेद के कर्त्ता थे।

चिकित्सक भृगु—महर्षि भृगु चिकित्सा मे प्रवीण थे। इसका प्रमाण वाग्भट-सुत तीसट के ग्रन्थ चिकित्साकलिका मे है—

हारीत-सुश्रुत-पराशर-भोज-भेल-
भृग्वग्निवेश-चरकादिचिकित्सकोक्तैः॥ २॥

अर्थात्—हारीत, भृगु, चरक आदि चिकित्सकोक्त वचनो के अनुसार।

६ **सांख्य शास्त्र**—भृगु का साख्य-शास्त्र पर कोई ग्रन्थ था। महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय १७५ से भृगु-भरद्वाज सवाद मे सृष्टि उत्पत्ति का साख्य-सिद्धात पर आश्रित अपूर्वज्ञान उल्लिखित है।

योग—भृगु के अन्य योग अभी हमारी दृष्टि मे नही पडे।

७. अंगिरा

वंश—प्रजापति अगिरा भी ब्रह्मा के मानस-पुत्र थे। उनका आशिक वश-विस्तार आगे दिया गया है।

---

१ शालिहोत्र ऋषि का हयशास्त्र महाभारत युद्ध से बहुत पूर्व रचा गया। इस पर मासिक पत्र वेदवाणी, दिसम्बर, १६५१ के अंक में पण्डित भगवद्दत्त जी का लेख देखें।
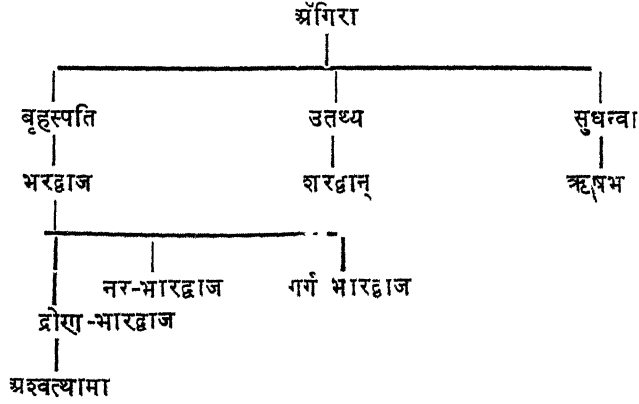
इस वंशक्रम को देख कर ज्ञात हो जाएगा कि अंगिरा-कुल में आयुर्वेद-ज्ञान आनुपूर्वी से चलता रहा। भृगुकुल के समान अंगिरा-कुल भी अत्यन्त विस्तृत था। महाभारत शान्ति-पर्व में लिखा है कि अंगिरा-देव ब्राह्मण थे।

स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः। २०१।२३॥

अंगिरा कुल के परमर्षि भरद्वाज का वर्णन यथा-स्थान किया जाएगा।

पार्जिटर तथा आदि ऋषि—इंगलैण्ड देशीय परिश्रमशील परन्तु भ्रान्त पार्जिटर लिखता है—

The brahman families claimed descent from mythical rishis, of whom there were eight, Bhrigu, Angiras, Marici, Atri, Vasishtha, Pulastya, Pulha and Kratu. (A. I. H. T. p. 185, A. D. 1922.)

अर्थात्—भृगु, अंगिरा, तथा मरीचि आदि आठ ऋषि मिथिकल (कल्पित) हैं।

ऐसे भाव अन्य पाश्चात्य लेखकों ने भी प्रकट किए हैं। विकासमत के मानने के कारण पार्जिटर जी की बुद्धि में यह फेर पड़ा है।

आथर्वण श्रुति तथा अंगिरा—बृहत्सर्वानुक्रमणी के अनुसार कुछ आथर्वण सूक्तों के द्रष्टा भृग्वंगिरा सम्मिलित रूप से हैं। वेदमन्त्रों में अंगिरा शब्द मनुष्यवाची नहीं।

शास्त्ररचन—अंगिरा ने अनेक शास्त्र रचे। उनमें से कतिपय ग्रन्थों का ज्ञान हमें अभी तक हो सका है।

१. आयुर्वेद—महर्षि अंगिरा के आयुर्वेद सम्बन्धी ग्रन्थ का पता अथवा उनके योग हमें अभी तक उपलब्ध नहीं हुए।

२. **राजनीति शास्त्र**—अगिरा के राजनीति विषयक दो श्लोक महाभारत, शान्तिपर्व ६८।८३,८४ है ।

३. **धर्मशास्त्र**—कभी अगिरा स्मृति भी थी । आज उसके कतिपय श्लोक ही उपलब्ध है ।

४. **ज्योतिष शास्त्र**—अगिरा ऋषि का ज्योतिष शास्त्र भी था ।

८. महर्षि अत्रि

वश—महर्षि अत्रि भी ब्रह्मा के मानस पुत्र थे । उनकी गणना सप्तर्षियों मे है । अत्रि-वश का बडा विस्तार हुआ । त्रेता के आरम्भ मे इस वश में सोम आदि उत्पन्न हुए । यथा—
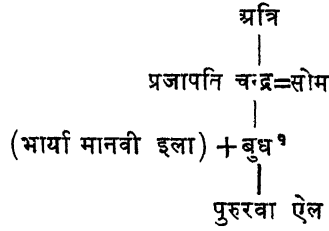
आगे इसी वश मे प्रभाकर नामक एक अति तेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ । प० भगवद्दत्तजी ने अपने भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय सस्करण, पृ० ६९ पर पुराणादि के अनुसार प्रभाकर-वश का वर्णन किया है। उसके अनुसार प्रभाकर का निम्नलिखित वशवृक्ष बनता है ।
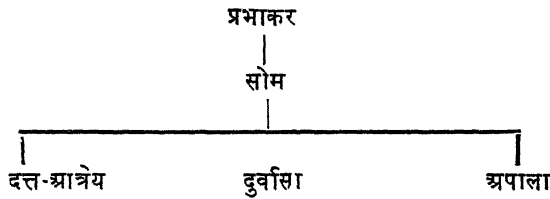
इस वश मे इतिहास-प्रसिद्ध अनेक व्यक्ति हुए । आयुर्वेद ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले प्रसिद्ध आत्रेय पुनर्वसु अत्रिकुल मे थे । सर्वभूतहितकारक महर्षि अत्रि की परम तपस्विनी धर्मपत्नी का नाम अनुसूया था ।

---

१ ताण्ड्य ब्राह्मण २४।१८।६ मे बुध का एक विशेषण-सौमायनो बुधः लिखा है ।

अत्रि तथा पार्जिटर—पार्जिटर लिखता है—

The mythical rishi Atri was made one with the mythical Atri, who is called a primaeval prajapati and father of Soma, the moon (p. 188)

अर्थात्—कल्पित ऋषि अत्रि और ब्रह्मा के मानस पुत्र प्रजापति अत्रि को, जो सोम अथवा चन्द्रमा (moon) का पिता है, एक बनाया गया है।

आलोचना—वस्तुत ये दो अत्रि नही थे। अत्रि की दीर्घायु देखकर पार्जिटर महोदय घबरा गए हैं। पुरातन आचार्यों ने दो को एक नही बनाया, प्रत्युत पार्जिटर ने एक को दो बना दिया है। अत्रि कल्पित (mythical) पुरुष न था, परन्तु सर्वथा ऐतिहासिक पुरुष था। यही अत्रि सम्राट् सोम का पिता था। यह सोम पुरुष-विशेष था, आकाशस्थ चन्द्र नही।

बौधायनकल्प के अनुसार अत्रि-गोत्र में—कृष्णात्रेय, गौरात्रेय, रक्तात्रेय, नीलात्रेय, श्वेतात्रेय, श्यामात्रेय आदि हुए है।

ऋग्वेद तथा अत्रि—परम तपस्वी अत्रि तथा उन के कुल के कुछ अन्य ऋषि ऋग्वेद के पाचवें मडल के द्रष्टा थे। महर्षि अत्रि होता था। यथा, शतपथ ब्राह्मण, ४।३।४।२१ मे लिखा है—

अत्रिर्वा ऋषीणां होतास।

अर्थात्—अत्रि ऋषियो का होता था।

ज्ञात होता है, अत्रि का ऋग्वेद से विशेष सम्बन्ध था।

अत्रि का मेरुविषयक मत—वायुपुराण ३४।६२ के अनुसार महर्षि अत्रि मेरुरूपी-कर्णिका का विस्तार शताश्रि मानते है। इस विषय में भिन्न-भिन्न ऋषियो के पृथक्-पृथक् मत थे। वास्तव मे पर्वत के जिस पार्श्व का ज्ञान जिस ऋषि को था, उसी के अनुसार वह उसका परिमाण बताता था।

अत्रि-आश्रम—मत्स्यपुराण ११८।६१-७६ के अनुसार पहले अत्रि का आश्रम हिमालय के पश्चिम मे था। दीर्घायु महर्षि अत्रि रामायण के काल में जीवित थे। उस समय चित्रकूट पर उनका निवास था।

अनुसूया का अनुलेपन—दृढव्रता सीता को तपोधना अनुसूया ने नित्य-सौन्दर्य-प्रद अनुलेपन दिया। रामायण अयोध्याकाड सर्ग ११८ में लिखा है—

इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्राभरणानि च।
अंगरागं च वैदेहि महार्हं चानुलेपनम् ॥१८॥
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्।
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति ॥१९॥

अर्थात्—हे सीते, यह दिव्य श्रेष्ठ माला, अगराग तथा बहुमूल्य अनुलेपन तुम्हे भेंट करती हूँ।

प्रतीत होता है, आयुर्वेद-परम्परा-वर्णित महर्षि अत्रि की भार्या अनुसूया पति के महान् आयुर्वेद ज्ञान के कारण अनेक अद्वितीय योग जानती थी।

अत्रि की कृतियाँ

१. **आयुर्वेद**—अत्रि की आयुर्वेद सम्बन्धी रचना का ज्ञान हमे अभी नही। इनका कोई योग भी हम अभी तक ढूँढ नही सके है।

३२०० श्लोकात्मक आत्रेय-संहिता का एक त्रुटित हस्तलेख बड़ोदा के सूचीपत्र पृ० १२६२ पर संख्या २६ पर सन्निविष्ट है।

२. **धर्म शास्त्र**—अत्रि-रचित धर्मशास्त्र गद्य, पद्यमय था। इसके उद्धरण अनेक टीका ग्रन्थो मे मिलते है।

३. **वास्तु शास्त्र**—मत्स्य पुराण अध्याय २५२।२ के अनुसार अत्रि वास्तु शास्त्र के अठारह उपदेशको मे से एक था।

४. **ज्योतिष शास्त्र**—कश्यप तथा पराशर की संहिताओ के अनुसार ज्योतिष शास्त्र प्रवर्तक अठारह ऋषियो मे से अत्रि एक था।

५. **राज शास्त्र**—अत्रि के राज शास्त्र-विषयक कतिपय वचन नीति वाक्यामृत की अज्ञात-नामा टीका मे उद्धृत है।

६. वसिष्ठ

वंश—प्रजापति वसिष्ठ ब्रह्मा के मानस पुत्र थे। इनकी गणना सप्तर्षियो में है। ये ही उत्तरकाल मे मैत्रावरुणी वसिष्ठ हुए। इनके पुत्र शक्ति तथा पौत्र पराशर थे। पराशर भी आयुर्वेद के महापण्डित थे। संस्कृत-साहित्य मे एक आपव वसिष्ठ भी पाए जाते है। देवव्रत भीष्म एक वसिष्ठ के शिष्य थे। उत्तरकाल मे यह नाम उपाधि हो गया था। दशरथ के मन्त्री-पुरोहित मैत्रावरुणी वसिष्ठ थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम अरुंधती था।

स्थान—वसिष्ठ का निवास कई स्थानो पर रहा। रामायण के काल मे ये अयोध्या मे निवास करते थे।

ब्राह्म रसायन द्वारा दीर्घ जीवन—चरक संहिता, चि० १।३ में लिखा है—

एतद्रसायनं पूर्वं वसिष्ठः कश्यपोऽङ्गिराः।
जमदग्निर्भरद्वाजो भृगुरन्ये च तद्विधाः ॥४॥
प्रयुज्य प्रयता मुक्ताः श्रमव्याधिजराभयात्।
यावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महाबलाः ॥५॥

इदं रसायनं चक्रे ब्रह्मा वार्षसहस्रिकम ।

अर्थात्—इस [बुद्धिबल तथा इन्द्रिय बल-प्रद] रसायन के सेवन से पुराने काल में वसिष्ठ, कश्यप, अङ्गिरा, जमदग्नि, भरद्वाज तथा तादृश अन्य ऋषि श्रम, व्याधि और जरा से मुक्त हुए। वे उसके प्रभाव से इष्ट-काल पर्यन्त तप तपते रहे।

ऋषि सहस्रों वर्ष जीवित रहे, इस विषय में किस विद्वान् को सन्देह हो सकता है।

वसिष्ठ की रचनाएं

१. **आयुर्वेद**—हेमाद्रि के लक्षण प्रकाश में उद्धृत शालिहोत्र के वचन से हम पूर्व पृ० ५९ पर लिख चुके है कि आयुर्वेद के कर्ता अनेक ऋषि हुए। वसिष्ठ का नाम भी उनमें है। गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है कि त्रिमल्ल भट्ट की योग-तरंगिणी में आयुर्वेद सम्बन्धी वसिष्ठ-संहिता उद्धृत है।

वसिष्ठ का वैद्यक-ज्ञान—महाभारत, शान्तिपर्व, अ० ३०८।८ से मैत्रावरुणि वसिष्ठ और करालजनक का सम्वाद उल्लिखित है। साङ्ख्य-ज्ञान-परिपूर्ण इस संवाद में वसिष्ठ—शीर्षरोग, अक्षिरोग, दन्तशूल, गलग्रह, जलोदर, तृषारोग, ज्वरगण्ड, विषूचक, श्वित्रकुष्ठ, अग्निदग्ध, सिध्म तथा अपस्मार का नाम स्मरण करता है।

२. **वास्तु शास्त्र**—मत्स्यपुराण के २५२।२ में वसिष्ठ को भी वास्तु-शास्त्रोपदेशक कहा है।

३. **ज्योतिष शास्त्र**—गणक तरंगिणी के आरम्भ में कश्यपादि के वचनानुसार अनेक ज्योतिष शास्त्र प्रवर्त्तको को स्मरण किया है। वसिष्ठ का नाम उनमें है। वसिष्ठ का सिद्धान्त-ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। पराशर लिखता है कि वसिष्ठ ने माण्डव्य तथा वामदेव के लिए ज्योतिष शास्त्र का उपदेश किया। यथा—

नारदाय यथा ब्रह्मा शौनकाय सुधाकरः।
माण्डव्यवामदेवाभ्यां वसिष्ठो यत्पुरातनम् ॥

४ **धर्मसूत्र**—वासिष्ठ धर्मसूत्र सम्प्रति उपलब्ध होता है। वह महाभारत-काल के आस-पास की रचना है। उसका सम्बन्ध किस वसिष्ठ से था, यह अभी अज्ञात है।

५ **योग वासिष्ठ**—यह ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। परन्तु इस ग्रन्थ का यह नाम कैसे हुआ, यह अभी अज्ञात है।

६. सांख्य शास्त्र--वसिष्ठ साख्यशास्त्र का ज्ञाता था। उसने यह ज्ञान हिरण्यगर्भ से प्राप्त किया। (शान्तिपर्व ३१३।४५।।)

योग—१. अष्टागहृदय कासचिकित्सा ३।१४० में वसिष्ठ की रसायन के विषय मे लिखा है—

रसायनं वसिष्ठोक्तमेतत् पूर्वगुणाधिकम्।

२. अष्टागसग्रह, चिकित्सास्थान, अ० १० में लिखा है—

वासिष्ठहरीतकिर्वा

३. गिरिन्द्रनाथ जी ने गदनिग्रह, भाग प्रथम, पृ० १४६ के अनुसार केवल वासिष्ठहरीतक्यवलेह का उल्लेख किया है।

१० कश्यप

वंश—ब्रह्मा के मानसपुत्रो मे एक मरीचि है। महाभारत शान्तिपर्व-२००।१८ के अनुसार प्रजापति कश्यप मरीचि के मानसपुत्र थे।

आयुर्वेदीय काश्यप सहिता मे कश्यप को मारीच तथा प्रजापति कहा है। यथा—

मारीचमृषिमासीनं सूर्यवैश्वानरद्युतिम्। पृ० १४८
प्रजापतिं समासीनमृषिभिःपुण्यकर्मभिः।
पप्रच्छ विनयाद्विद्वान् कश्यपं वृद्धजीवकः ।।३।। पृ० ६२।

नाम पर्याय—महाभारत शान्तिपर्व २०१।८ मे मारीच-कश्यप का एक नाम अरिष्टनेमि लिखा है—

मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तस्य द्वे नामनी श्रुते।
अरिष्टनेमिरित्येकं कश्यपेत्यपरं विदुः।।

अर्थात्—मरीचि का पुत्र कश्यप है। उसके दो नाम सुने जाते है। एक नाम अरिष्टनेमि, दूसरा कश्यप।

मत्स्यपुराण ६।१३ में कश्यप तथा अरिष्टनेमि को पृथक्-पृथक् स्मरण किया गया है। यथा—

प्रादात्स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये।।

अत कश्यप का अरिष्टनेमि नाम गौण समझना चाहिए।

कश्यप तथा दक्ष-कन्याएं—महाभारत और पुराणानुसार कश्यप का विवाह दक्ष की तेरह कन्याओ से हुआ। इनकी सन्तति दैत्य, दानव, तथा आदित्य आदि हुए। कश्यप का वश अति विस्तृत हुआ। शतपथ ब्राह्मण मे लिखा है—

सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति ।७।५।१।५॥

अर्थात्—[इसलिए पुरातन विद्वान् कहते है] सारी प्रजाए कश्यप की हैं।

आज भी कश्यप-गोत्र बहुत प्रसिद्ध है।

कश्यप तथा काश्यप का अन्तर—चरकसहिता, सूत्रस्थान, १।८, १२ मे कश्यप, मारीचि तथा काश्यप इन तीन ऋषियो के नाम स्मरण किये गये है। यथा—

अंगिरा जमदग्निश्च वसिष्ठः कश्यपो भृगुः ।
कांकायनः कैकशेयो धौम्यो मारीचिकाश्यपौ ।

वास्तव मे यह पाठ अशुद्ध है। कश्यप मारीच है। अत यहा दो शुद्ध पाठ हो सकते हैं —

मारीचिकाश्यपः अथवा मरीचिकाश्यपौ ।

मरीचि का पुत्र था कश्यप। अत कश्यप को मारीच कहते हैं। कश्यप का पुत्र काश्यप हुआ, तथा मारीच का पुत्र मारीचि कहलाया। अत. मारीचि और काश्यप एक हैं।

कात्यायन अपनी ऋक् सर्वानुक्रमणी (विक्रम से २७५० वर्ष पूर्व) ८।२९ में लिखता है—

बभ्रुर्दश मारीचः कश्यपो वा द्वैपदम् ।

इस पाठानुसार कश्यप मारीच है।

कात्यायन का गुरु शौनक बृहद्देवता ५।१४३ में मारीच-कश्यप का स्मरण करता है—

प्राजापत्यो मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनिः ।

अर्थात्—प्रजापति ब्रह्मा का पुत्र मरीचि है, तथा मरीचि पुत्र मारीच-कश्यप है।

पूर्वोक्त दोनो पाठ प्रामाणिक है। अनेक सम्पादको ने इस पाठ-शुद्धि का विचार किए विना ग्रन्थ मुद्रित किए है। यथा—वाल्मीकीय रामायण, दाक्षिणात्य पाठ, बालकाण्ड ४६।१ में लिखा है—

हतेषु तेषु पुत्रेषु दितिः परमदुःखिता ।
मारीचं काश्यपं राम भर्तारमिदमब्रवीत् ॥

यहां मारीच काश्यप पाठ अशुद्ध है।

प० भगवद्दत्त-सम्पादित, वाल्मीकीय-रामायण, पश्चिमोत्तर पाठ, बालकाण्ड ४२।१ में इस श्लोक का निम्नलिखित पाठ है—

हतपुत्रा ततो देवैर्दितिः परमदुःखिता।
मारीचं कश्यपं देवी भर्तारमिदमब्रवीत् ॥

यहा मारीच कश्यप शुद्ध पाठ है। पूर्वोक्त विवेचन से निम्नलिखित परम्परा सर्वथा स्पष्ट हो जाती है—

मरीचि
|
मारीच=कश्यप
|
मारीचि=काश्यप

अनेक सम्पादको ने यह भेद नही समझा, अत अन्य अनेक ग्रन्थों के अशुद्ध पाठ देने अनावश्यक है। उनके शुद्ध अशुद्ध पाठो का विवेचन विद्वान् स्वय करें।

स्थान—हम पूर्व पृ० ४३ पर लिख चुके है कि इन्द्र ने अपने पिता कश्यप के आश्रम में रह कर १०१ वर्ष का ब्रह्मचर्य पूर्ण किया। वह आश्रम सभवत हिमवान् के उत्तर-पार्श्वस्थ चम्पकवन मे था।

काल—कश्यप प्रजापति कृतयुग के आरम्भ से जामदग्न्य परशुराम द्वारा इक्कीस वार क्षात्र-नाश के अन्त तक अवश्य जीवित थे। परशु-राम ने उन्हे सारी भूमि दान कर दी।

कश्यप की विशेषता—आयुर्वेदीय काश्यप संहिता में कश्यप का व्यक्तित्व स्पष्ट करने वाले कुछ विशेषण मिलते है। यथा—

हुताग्निहोत्रम्, जिसने अग्निहोत्र कर लिया है (पृ०१६), **ज्वलनाकतुल्यम्**, जो दीप्त तेज वाले सूर्य-सदृश है (पृ०१६८), **तपोदम्**, तपोनिधि (पृ० १६८), **लोकपूजितम्**, ससारपूज्य (पृ० १७६), **सर्वशास्त्रज्ञम्**, सम्पूर्ण शास्त्र जानने वाला (पृ० १६२), **वेदवेदांगपारगम्**, वेद तथा वेदागो का पारग (पृ० १६६), **वदतांवर**, श्रेष्ठ वक्ता (पृ० १०३), **सर्वशास्त्रविदांवरम्**, सम्पूर्ण शास्त्रज्ञो मे श्रेष्ठ (पृ० २०६), **भिषजांश्रेष्टम्**, वैद्यश्रेष्ठ (पृ० २६४)।

टिप्पण—ज्ञात होता है कि कश्यप साधारण व्यक्ति नही था। वह केवल एक अथवा दो शास्त्रो का ज्ञाता नही आपितु सर्वशास्त्रवित् था। हमारे इतिहास मे अनेक ऐसे ऋषियो का उल्लेख है। अत हम पूर्ण निश्चय से कह सकते है कि आर्य वाङ्मय तपोनिधि आचार्यो की देन है। वेद-वेदाग सहित सर्वशास्त्रवेत्ता ऋषिप्रवर ससार की कल्याण-कामना से निश्चित तथ्यों का

उपदेश करते थे। वर्तमानकालीन, शतवर्ष से न्यून जीने वाले, केवल पाश्चात्य ग्रन्थ पठित व्यक्ति के लिए इसको स्वीकार करना कठिन है। इसमे हमारा दोष नही।

विशेष घटनाएं

१. **कश्यप का रसायन-सेवन**—हम पूर्व पृ० ६३ पर लिख चुके है कि ब्राह्म-रसायन के सेवन से अनेक ऋषि श्रम, व्याधि तथा जरा-भय मुक्त हुए। कश्यप का नाम भी उन ऋषियो मे है। फलत. कश्यप दीर्घजीवी था। वह इष्टकाल पर्यन्त तप करके ऋषि बना। यथा—

तपसा ऋषितां गताः। मत्स्यपुराण १४५।६२-६४॥

अर्थात्—(काव्य, बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, वामदेव, अगस्त्य आदि) तप से ऋषि बने।

२. **भूमि उज्जहार**—नीलमत पुराण मे एक पुरातन ऐतिहासिक घटना उल्लिखित है। तदनुसार कश्यप ने काश्मीर की भूमि को जल से बाहर किया। शाखायन श्रौतसूत्र, १६।१६।२-४ मे लिखा है—

विश्वकर्मा ह भौवनो अन्तत ईजे। तं ह भूमिरुवाच।
न मा मर्त्यः कश्चन दातुमर्हति विश्वकर्मन्भौवन मां दिदासिथ-
उप मंक्ष्ये ऽहं सलिलस्य मध्ये मृषैव ते संगरः कश्यपाय॥ इति।
तां कश्यप उज्जहार।

अर्थात्—भूमि ने कहा—मै जल में डूबी रहूँगी, कश्यप को तेरा [भूमि] दान व्यर्थ है। उस भूमि को कश्यप ने जल मे से बाहर निकाला।

शतपथ ब्राह्मण १३।७।१।१५ मे भी इसी घटना का सकेत है।

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेद**—प्रजापति कश्यप ने अपने पुत्र इन्द्र से आयुर्वेद-ज्ञान-उपलब्ध करके उसका उपदेश कौमारभृत्य-तन्त्र के रूप मे अपने प्रिय शिष्य वृद्धजीवक को किया। वह उपदेशामृत काश्यपसहिता अथवा वृद्धजीवकीयतन्त्र के नाम से उपलब्ध है। आयुर्वेद-ससार, वैद्य श्री यादवजि त्रिकमजि आचार्य तथा नेपाल के राजगुरु श्री प० हेमराज जी शर्मा का अत्यन्त आभारी है, जिनके अथक परिश्रम से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

काश्यपसंहिता की विशेषताएं

(क) ज्ञान चक्षु तथा तप द्वारा निर्मित—यह तन्त्र कश्यप के तप का फल है। काश्यपसहिता कल्पस्थान में लिखा है—

तती हितार्थं लोकानां कश्यपेन महर्षिणा ॥१८॥
पितामहनियोगाच्च दृष्ट्वा च ज्ञानचक्षुषा ।
तपसा निर्मितं तन्त्रं ऋषयः प्रतिपेदिरे ॥१९॥

अर्थात्—तब ससार के कल्याण के लिए महर्षि कश्यप ने ब्रह्मा की आज्ञा से, ज्ञान-नेत्रो से देखकर तप से यह शास्त्र [काश्यप तन्त्र] रचा। उसे ऋषियो ने प्राप्त किया।

(ख) सिद्धयोग—कश्यप ने इस ग्रन्थ मे सिद्ध प्रयोग बताए है। काश्यप-सहिता अष्टज्वरचिकित्साध्याय पृ० ३२१ पर लिखा है—

इति शूलचिकित्सा ते विस्तरेण प्रकीर्तिता ।
सिद्धैः प्रयोगैर्विविधैः प्राणिनां हितकाम्यया ॥६७॥

(ग) सूक्ष्म विवेचन—भोजनकल्प प्रकरण मे वृद्धजीवक ने कश्यप से पूछा है भूखे तथा प्यासे जन्तु का क्या लक्षण है। इसके उत्तर मे प्रजापति कहते है—

नासर्वविन्नो खलु मांसचक्षुः प्रश्नानिमान् वक्तुमिहोत्सहेत । पृ० १६८

अर्थात्—असर्ववित् तथा केवल मॉसचक्षु इन प्रश्नो के कथन का साहस नही कर सकते।

कश्यप सर्वशास्त्रनिष्णात थे, अत वे सूक्ष्म तत्वो की विवेचना कर सके।

(घ) दन्तोत्पत्ति का वैज्ञानिक विश्लेषण—कश्यप का ग्रन्थरत्न सूक्ष्म तत्वो से भरा पडा है। आयुर्वेद की वैज्ञानिकता के उदाहरणार्थ कश्यपसहिता दन्त-जन्मिकाध्याय का एक वचन उद्धृत किया जाता है। यथा—

यावत्स्वेव च मासेषु ज्ञातस्य सत उद्भिद्यन्ते तावत्स्वेव च वर्षेषु पतिताः पुनरुद्भिद्यन्ते । पृ० ६ ।

अर्थात्—[बालक के] उत्पन्न होने पर जिन जिन मासो मे उसके दात मास चीरकर बाहर निकलते है उन उन वर्षो मे गिरकर पुन उग पडते है।

आयुर्वेद ज्ञान को अवैज्ञानिक कहने वालो की तुष्टि के लिए ऐसे तथ्यो का परीक्षणो द्वारा पूर्ण प्रमाणित करना आवश्यक है।

(ङ) श्रेष्ठ दांत—कुमार तथा कुमारियो का दन्तजन्म भिन्न-भिन्न महीनो मे होता है। कश्यप दन्तोत्पत्ति के लिए आठवा महीना सर्वोत्तम मानते है। यथा—

तथाष्टमे मासि सर्वगुणसंपन्ना भवन्ति । काश्यपसंहिता दन्तजन्मि-काध्याय पृ. ६-१० ।

अर्थात् आठवे मास में [जन्मे दन्त] सर्वगुणसपन्न होते है।

प्रकरणवश हम यहाँ अष्टॉगसग्रह का वचन भी उद्धृत करते है—

स दीर्घायुषो ऽष्टमान्मासात् परतो वा प्रवर्तते । इतरेषां तु चतुर्थात्। ते ह्यतिबाल्ये दन्तोत्पादवेदनयातिपीडिता न सम्यक् सम्पूर्णधातुबला भवन्ति ।

अर्थात्—दीर्घायु होने वाले बालक का दन्तोद्भेद आठवें मास से अथवा उसके पश्चात् प्रारम्भ होता है। अल्प-आयु बालको का चौथे [मास] से आरम्भ होता है। अत्यन्त छोटी अवस्था मे दानो के उत्पन्न होने की पीडा से आक्रान्त बालक परिपक्व-धातुबल नही होते। [अत उनकी आयु अल्प होती है।]

इस वचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिन बालको के दन्त छोटी अवस्था में उत्पन्न होते है उन बालकों की आयु दीर्घ नही हो सकती ।

च. चाक्षुष्य-प्रयोग—वर्तमान युग मे छोटे से छोटे शारीरिक कष्ट को शान्त करने के लिए अनेक लोग डाक्टरो के पास भागते है। परन्तु आज से कुछ पूर्व तक अधिकाश भारतीय स्त्रिया भिन्न-भिन्न सस्ते तथा अचूक टोटके जानती थी। ये टोटके कुलपरम्परा से आ रहे थे। वास्तव मे ये शास्त्रीय योग थे। अक्षिरोगो मे चासकू का प्रयोग ऐसा ही शास्त्रीय योग है। चरक, सुश्रुत आदि में चाक्षुष्य का उल्लेख नही है। पर काश्यप सहिता में इसका प्रयोग लिखा है।

एकापि स्तन्यसंयुक्ता चक्षुष्या संप्रशस्यते ।
चक्षुष्याकल्प इत्येष, पुष्पकल्पं निबोध मे ॥२१॥

पद्मकल्पाध्याय, पृ० १४६ ।

हमने उदाहरणार्थ दो एक विषयो पर प्रकाश डाला है। वास्तव में सूक्ष्मदर्शी कश्यप का यह ग्रन्थ अद्वितीय है और अन्यत्र अनुल्लिखित अनेक बातो से भरा पडा है।

२. धर्मशास्त्र—बौधायन धर्मसूत्र १।२१।४ मे कश्यप का वचन उद्धृत है। कश्यप का शास्त्र काश्यप कहाता था। उसके अनेक वचन विश्वरूप आदि की पुरानी टीकाओ मे उद्धृत है। उस धर्मसूत्र का आशिक पाठ कुछ हस्तलेखो मे अब भी उपलब्ध है।

३. निघण्टु—प्रजापति कश्यप निघण्टु का कर्ता है। महाभारत, शान्ति-पर्व, कुम्भघोण सस्करण, ३५२ में लिखा है—

वृषो हि भगवान्धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत ।
नैघण्टुकपदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम् ॥२३॥
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते ।
तस्माद् वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः ॥२४॥

अर्थात्—हे भारत, ऐश्वर्य का दाता धर्म, जगत् मे वृष प्रसिद्ध है। निघण्टु के पद कथन मे मुझे उत्तम वृष जान। कपि नाम वराह और श्रेष्ठ का है। धर्म वृष कहलाता है। अत. प्रजापति कश्यप ने मुझे वृषाकपि कहा है।

इन श्लोको से ज्ञात होता है कि प्रजापति कश्यप निघण्टु का कर्ता था।

४. ज्योतिष—कश्यप तथा पराशरकृत ज्योति-सहिताओ मे कश्यप का नाम अष्टादश ज्योति-शास्त्र प्रवर्तको मे है। वराहमिहिर अपनी बृहत्सहिता मे कश्यप को स्मरण करता है। भट्ट उत्पल की टीका मे कश्यप के वचन उद्धृत है।

५. मन्त्रद्रष्टा—कश्यप एक सहस्र ऋक् सूक्तो का द्रष्टा था। ऋक्सर्वानुक्रमणी में ऋग्वेद १।९९ के विषय मे लिखा है—

जातवेदस एका जातवेदस्यमेतदादीन्येकभूयांसि
सूक्तसहस्रमेतत्कश्यपार्षम् ।

६. शिल्प—काश्यप-शिल्प सुप्रसिद्ध है।

११ अगस्त्य

वंश—महर्षि अगस्त्य को उत्पत्ति-विषयक घटना अन्वेषणीय है। राम सुतीक्ष्ण-ऋषि से अगस्त्य-आश्रम का मार्ग पूछता है। सुतीक्ष्ण उसका उत्तर देता है—

दक्षिणेन महाञ्छ्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः ।

वाल्मीकीय रामायण, दाक्षिणात्य पाठ अरण्य काड ११।३९॥

अर्थात्—दक्षिण की ओर अगस्त्य के भ्राता का बडा सुन्दर आश्रम है।

इससे ज्ञात होता है कि अगस्त्य का एक भाई भी था। इस प्रकरण के अगले श्लोको से ज्ञात होता है कि अगस्त्य उस भाई का अग्रज था।

बृहद्देवता ५।१४८-१५० के अनुसार अगस्त्य तथा वसिष्ठ मैत्रावरुणि भ्राता थे। बृहद्देवता २।८२ के अनुसार अदिति अगस्त्य-स्वसा थी। इन दोनो कथनों का तथ्य अभी अस्पष्ट है। अगस्त्य की धर्मपत्नी लोपामुद्रा थी।

काल—अगस्त्य ऋषि त्रेता के आरम्भ से राम के काल तक अवश्य जीवित था।

आयु—अगस्त्य की आयु बतानी कठिन है। परन्तु थे वे दीर्घजीवी। मृत्यु उनकी वशवर्त्तिनी थी। वाल्मीकीय रामायण, दाक्षिणात्यपाठ ११।८२ में राम कहता है—

निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया।

अर्थात्—ससार की हितकामना से अगस्त्य ने मृत्यु को बलपूर्वक पकड कर [परे किया]।

इस प्रकरण मे आगे कहा है—

अयं दीर्घायुषस्तस्य लोके विश्रुतकर्मणः ॥८७॥

अर्थात्—विश्रुतकर्मा दीर्घायु [अगस्त्य] का यह आश्रम है।

वाल्मीकीय रामायण, अरण्यकाण्ड ११।५५ मे अगस्त्य-भ्राता को मृत्युञ्जय कहा है। अगस्त्य पत्नी लोपामुद्रा भी दीर्घायु थी। प्रतीत होता है अगस्त्य के पास दीर्घायुप्रद रसायन थी। उसके परिवार मे उस रयायन का सेवन होता था। इसी कारण अगस्त्य तथा अगस्त्य- भ्राता मृत्युञ्जय थे।

लोपामुद्रा का एतद्विषयक चमत्कार—हरिवंशपुराण १।३२,३४ मे लिखा है— लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः।

अर्थात्—लोपामुद्रा की कृपा से उस [अलर्क] ने परम आयु प्राप्त की।

शेष कोशानुसार लोपामुद्रा का एक नाम **वरप्रदा** है।

अगस्त्य के आयुष्य रसायन का ज्ञान लोपामुद्रा को था। उसका प्रयोग लोपामुद्रा ने काशिराज अलर्क को करवाया। इस कारण महाराज अलर्क ने परम आयु प्राप्त की।

कश्यप ने रसायन, जप, तप तथा योग-सिद्धि को मृत्यु-विजय का उपाय माना है। प्रमाणार्थ इसी लेख में आगे पृ० ७५ पर ग्रन्थ-शीर्षकान्तर्गत आयुर्वेद के प्रकरण में अगस्त्य का वचन पढ़ें।

इस विवेचना से निश्चित हो गया कि अगस्त्य दीर्घायु था।

नामपर्याय तथा विशेषण—अगस्त्य के दो नाम-पर्याय अत्यन्त प्रसिद्ध है—

अगस्ति, कुम्भोद्भव। शेषानुसार एक नाम **काथि** है।

वाल्मीकीय रामायण अरण्यकाण्ड १।९१ में अगस्त्य का एक विशेषण लिखा है—

अगस्त्यं नियताहारम्।

अर्थात्—नियमित आहार करने वाले अगस्त्य को।

हम पूर्व पृ० २८ के टिप्पण मे लिख चुके है कि परम आयु भोगने के लिए दो काल खाना चाहिए। ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट हो गया कि दीर्घायु-अगस्त्य नियताहार थे। अगस्त्याश्रम के वर्णन में वाल्मीकि लिखता है कि अगस्त्याश्रमवासी भी नियताहार थे।

वस्तुतः वैद्यो की आयु दीर्घ होनी चाहिए तथा उन्हे समीपवर्ती लोगो को भी आयु-सम्बन्धी रहस्यो का ज्ञान कराना चाहिए।

स्थान—वाल्मीकीय रामायण ११।८३ के अनुसार अगस्त्य का आश्रम दक्षिण दिशा मे था। सुबन्धु अपनी वासवदत्ता के पृ० २० पर लिखता है—

अगस्त्य इव दक्षिणाशाप्रसाधकः।

अर्थात्—अगस्त्य के समान दक्षिण दिशा को सुन्दर और पवित्र करने वाला।

दक्षिण दिशा मे राक्षसो का प्राबल्य था। परन्तु अगस्त्य के वहाँ बस जाने के कारण राक्षस उस ओर मुख नही कर सकते थे। उस दक्षिण दिशा के ऋषियो मे अगस्त्य प्रमुख समझा जाता था। भवभूति के उत्तररामचरित मे आत्रेयी कहती है—

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे, भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां, · ॥

अर्थात्—इस प्रदेश मे अनेक सामवेद-ज्ञाता रहते है। अगस्त्य उनमे मुख्य है। उनसे वेदान्त विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वाल्मीकि के आश्रम से यहाँ आई हू।

अगस्त्याश्रम की विशेषता—अगस्त्याश्रम मे विनीत, धर्म की आराधना के इच्छुक, नियताहार, देव, यक्ष, नाग, सिद्ध महात्मा तथा परमर्षि निवास करते थे। वहाँ मृषावादी, क्रूर, शठ, नृशस तथा कामवृत्त जीवित नही रह सकते थे। इसी कारण अगस्त्याश्रम अत्यन्त प्रसिद्ध था। राम भी इस प्रसिद्धि को सुनकर अगस्त्य की आराधना के लिए उनके आश्रम मे आए।[1]

विशेष घटनाएं

१. इल्वल-वातापि वध—वाल्मीकीय रामायण आरण्यकाण्ड ११।५६-६८ के अनुसार अगस्त्य ने इल्वल-वातापि नामक असुर-भ्राताओ का वध किया। अगस्त्य न केवल रसायनज्ञ अपितु धनुर्वेदाचार्य भी था। अगस्त्य के अस्त्र-बल से त्रस्त क्रूरकर्मा राक्षस दक्षिण-दिशा की ओर मुख करने का भी नाम न लेते थे।

२. दिव्यास्त्र दान—शुश्रूषु राम से अगस्त्य प्रसन्न हुए। उन्होने अग्निहोत्रपूर्वक राम को अर्घ्य देकर उसे वानप्रस्थ-धर्मानुकूल भोजन कराया। पुन वे उस से बोले—

इदं दिव्यं महच्चापं हेमरत्नविभूषितम् ॥३२॥
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा।
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः ॥३३॥

---

१. वाल्मीकीय रामायण अरण्यकाण्ड ८७–९५।

दत्तौ मम महेन्द्रेण तूणी चाक्षयसायकौ।
.. ..
तद्धनुस्तौ च तूणीरौ शरं खड्गं च मानद ॥३६॥

अर्थात्—हे पुरुष श्रेष्ठ यह विश्वकर्म-निर्मित, सुवर्ण-रत्न-विभूषित दिव्य धनुष विष्णु का है। सूर्य-सदृश [उज्ज्वल], व्यर्थ न जाने वाला, उत्तम शर ब्रह्मा का दिया हुआ है। ये अक्षय तीरों वाले तूणीर मुझे महेन्द्र ने दिए।

हे मान देने वाले राम, वह धनुष, दोनो तूणीर, शर तथा खड्ग [तेरी भेट है]।

अगस्त्य धनुर्वेद मे परम-प्रवीण था। उसे देवो से दिव्यास्त्र प्राप्त थे। वही अस्त्र उसने राम को दिए।

अगस्त्य के गुरु

१. **इन्द्र**—यहाँ अगस्त्य का वर्णन इन्द्र की शिष्यपरम्परा मे कर रहे है। इन्द्र से उसने आयुर्वद के अनुष्ठेय योग सीखे।

इन्द्र ने अध्यात्म-ज्ञान भी अगस्त्य के लिए दिया। तलवकार उपनिषद् ब्राह्मण मे लिखा है—

एवं वा एतं गायत्रस्योद्गीथम उपनिषदम् अमृतम इन्द्रोऽगस्त्याय्योवाच ।४।६।१।।

२. **भास्कर**—अगस्त्य को आयुर्वेदीय चिकित्सा-पद्धति का ज्ञान भास्कर से प्राप्त हुआ। ब्रह्मवैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड, अ० १६ मे वर्णित भास्कर शिष्यों मे अगस्त्य का नाम उल्लिखित है।

अगस्त्य के शिष्य

१. **आयुर्वेद में**—अगस्त्य से आयुर्वेद सीखने वाले शिष्य का ज्ञान हमें अभी नही हो सका।

२. **धनुर्वेद में**—अग्निवेश ने अगस्त्य से धनुर्वेद सीखा था। महाभारत, आदिपर्व,[1] १५२।१० मे लिखा है—

अगस्त्यस्य धनुर्वेदे शिष्यो मम गुरुः पुरा।
अग्निवेश्य इति ख्यातस्तस्य शिष्योस्मि भारत॥

अर्थात्—(द्रोण कहता है) पूर्वकाल मे अग्निवेश नामा मेरा गुरु धनुर्वेद में अगस्त्य का शिष्य था। हे भारत मै उसका शिष्य हूँ।

---

१. कुम्भघोण संस्करण।

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेद**—भास्कर से चिकित्सा सीखते समय अगस्त्य ने भास्करतन्त्र पढा। ब्रह्मवैवर्तपुराण, के अनुसार भास्कर के सब शिष्यो ने स्वतत्र-सहिताए रची। तदनुसार अगस्त्य-तन्त्र का नाम द्वैधनिर्णयतन्त्र था। यथा—

द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसंभवः॥

अर्थात्—अगस्त्य ने (भिषक्क्रिया विषयक) द्वैधनिर्णयतन्त्र बनाया।

यह ग्रन्थ आजकल उपलब्ध नही। चरकसहिता, सूत्रस्थान, १।६२ की टीका मे चक्रपाणि ने अगस्त्य का एक श्लोक उद्धृत किया है—

रसायनतपोजप्ययोगसिद्धैर्महात्मभिः ।
कालमृत्युरपि प्राज्ञैर्जीयते नालसैर्नरैः ॥ इति।

अर्थात्—रसायन, तप, जप तथा योगसिद्धियुक्त महात्माओ द्वारा कालमृत्यु भी जीती जाती है। आलसी मनुष्य से नही।

पूर्वलिखित वचन अगस्त्य के किस ग्रन्थ का है यह अभी अज्ञात है। इससे इतना स्पष्ट है कि आयुवृद्धि के सिद्धान्त मे अगस्त्य पूर्ण विश्वास रखता था। वह और उसका भ्राता इसमे सफल हो चुके थे।

नावनीतक पृष्ठ ५८ तथा चिकित्सासारसग्रह मे अगस्त्य के योग उद्धृत है।

२. **कल्पसूत्र**—प्रपञ्च-हृदय पृ० ३३ पर सप्ताध्यायात्मक आथर्वण अगस्त्य-कल्प का उल्लेख है—

पैप्पलादिशाखाप्रयुक्तमाथर्वणिकं सप्तभिरध्यायैरगस्त्येन प्रदर्शितम्।

अर्थात्—पैप्पलाद शाखा प्रयुक्त सप्त-अध्याययुक्त आथर्वण कल्पसूत्र अगस्त्य-प्रदर्शित है।

इस कल्पसूत्र के गृह्य भाग का उल्लेख आपस्तम्बस्मृति पृ० ७ पर है।

३. **व्याकरण**—तामिल-साहित्य मे वैयाकरण-अगस्त्य प्रसिद्ध है। तञ्जोर भण्डार के सूचिपत्रान्तर्गत सख्या ४७१२ के हस्तलेख के अनुसार अगस्त्य का व्याकरण था। आगस्त्य का व्याकरण-विषयक मत ऋक्-प्रातिशाख्य १।२ मे मिलता है।

न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम की भूल—ऋक्प्रातिशाख्य वर्गद्वय पर विष्णु-मित्र की वृत्ति को देखे विना इस ग्रन्थ के सम्पादको ने आगस्त्य के स्थान मे अगस्त्य पाठ युक्त माना है।

४. **धर्मशास्त्र**—हेमाद्रि-रचित दानखण्ड, पृ० २६१ आदि पर अगस्त्य के दानविषयक श्लोक उद्धृत है।

५ **वास्तु शास्त्र**—अगस्त्य का वास्तुशास्त्रविषयक ग्रन्थ न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम में सन्निविष्ट है। शिल्परत्न, विश्वकर्मशिल्प तथा शिल्पसंग्रह आदि में यह ग्रन्थ बहुधा उद्धृत है।

६. **तक्षशास्त्र**—आपस्तम्बीय शुल्बसूत्र २।६ में लिखा है—

अथाप्युदाहरन्ति—
अष्टाशीतिशतमीषा तिर्यगक्षश्चतुश्शतम्।
षडशीतियुगं चास्य रथचारण उच्यते॥

इस प्रकरण की व्याख्या में करविन्दस्वामी लिखता है—

तक्षशास्त्रे गार्ग्यागस्त्यादिभिरङ्गुलिसंख्ययोक्तं
रथपरिमाणश्लोकमुदाहरन्ति।

इस से ज्ञात होता है कि अगस्त्य अथवा आगस्त्य का कोई तक्ष शास्त्र था।

७. **नाट्यशास्त्र**— शारदातनयकृत भावप्रकाशन के आरम्भ में नाट्यशास्त्र के आचार्यों में कुम्भोद्भव अर्थात् अगस्त्य का नाम उल्लिखित है।

८ **रत्नपरीक्षा**—अगस्त्य-रचित रत्नपरीक्षा हालास्य-माहात्म्य का एक भाग है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम मणिलक्षण है।

६. **ज्योतिष**—अगस्त्य का पञ्चपक्षिशास्त्र सम्प्रति उपलब्ध होता है। देखो तञ्जोर भण्डार सूचिपत्र, संख्या ११४८६-६२। इस ग्रन्थानुसार अनेक प्रश्नों के उत्तर अति सरलता से दिए जा सकते हैं।

१२. पुलस्त्य

वंश— ब्रह्मा के मानस-पुत्र पुलस्त्य की गणना सप्तर्षियों में है। पुलस्त्य का नाम सात चित्रशिखण्डि ऋषियों में है। वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, द्वितीय सर्ग २३-२८ की वंशपरम्परा के अनुसार तृणबिन्दु की कन्या पुलस्त्य-पत्नी थी। परन्तु पुराणादि के अनुसार प्रजापति कर्दम की कन्या हविर्भू पुलस्त्य-पत्नी थी। इनका पुत्र विश्रवा पौलस्त्य हुआ। नीचे इनका वंशवृक्ष दिया जाता है—

आश्रम—रामायण, उत्तरकाण्ड २।७ के अनुसार ब्रह्मर्षि पुलस्त्य नित्य

स्वाध्यायरत थे। धर्मप्रसग से देवप्रिय पुलस्त्य मेरु पर तृणबिन्दु के आश्रम मे रहते थे।

वर्ण—धर्मशील पुलस्त्य तथा उनका पुत्र विश्रवा ब्राह्मण थे।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पुलस्त्य का आयुर्वेद-सम्बन्धी कोई ग्रन्थ एतावत् ज्ञात नही। उनका कोई वचन तथा योग भी अभी ज्ञात नही।

२. चित्रशिखण्डी-शास्त्र—महाभारत शान्तिपर्व ३४३।३० मे लिखा है—

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतु ।
वसिष्ठश्च महातेजास्ते हि चित्रशिखण्डिनः॥

अर्थात्—मरीचि, अत्रि, अगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा वसिष्ठ (सात) चित्रशिखण्डी है।

इन एकाग्रमना, संयमी तथा दान्त ऋषियो ने सम्पूर्ण लोकधर्म का मन मे विचार करके यह शास्त्र रचा। महाभारत शान्तिपर्व ३४३ में लिखा है—

ये हि ते ऋषयः ख्याताः सप्त चित्रशिखण्डिनः।
तैरेकमतिभूत्वा यत्प्रोक्तं शास्त्रमुत्तमम् ॥२८॥
वेदैश्चतुर्भिः समितं कृतं मेरौ महागिरौ।
आस्यैः सप्तभिरुद्गीर्ण लोकधर्ममनुत्तमम् ॥२९॥

अर्थात्—इन सात चित्रशिखण्डियो ने एकमति होकर महागिरि मेरु पर उत्तम शास्त्र कहा। थे वे सात मुख, परन्तु एक ही लोकधर्म को उद्गीर्ण करते थे।

यह शास्त्र शतसहस्र-श्लोकात्मक था। महाभारत शान्तिपर्व ३४३ लिखा है—

कृतं शतसहस्रं हि श्लोकानां हितमुत्तमम्।
लोकतन्त्रस्य कृत्नस्य यस्माद्धर्मः प्रवर्तते ॥४०॥

अर्थात्—उन्होने एक लाख उत्तम श्लोक रचे, जिनसे सम्पूर्ण लोकतन्त्र का धर्म प्रवृत्त होता है।

प्रकीर्ण-उपदेश-ग्रहीता ऋषियो की परम्परा में वर्णित अत्रि, अगिरा तथा वसिष्ठ की गणना भी चित्रशिखण्डियो मे है।

३. ज्योतिष—गणकतरगिणी के आरम्भ मे पराशर-द्वारा स्मरण किए गए १९ ज्योतिः शास्त्र प्रवर्तको मे पुलस्त्य का नाम भी है। पुलस्त्य ने यह शास्त्र अपने शिष्य को दिया। पराशर कहता है—

पुलस्त्याचार्यगर्गोत्रिरोमकादिभिरीरितम् ।
विवस्वता महर्षीणां स्वयमेव युगे युगे॥

१३. वामदेव

वंश—वामदेव अंगिरा-कुल में उत्पन्न हुआ। मत्स्यपुराण अ० १४५ मे लिखा है—

अपस्यौपः सुचित्तिश्च वामदेवस्तथैव च॥ १०४॥
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत्स्मृता ह्याङ्गिरसां वराः॥ १०५॥

मत्स्यपुराण अ० १४५ के अनुसार वामदेव तप के प्रभाव से ऋषि बना। यथा—

उतथ्यो वामदेवश्च अगस्त्यः कौशिकस्तथा।
कर्दमो वालखिल्याश्च विश्रवाः शक्तिवर्धनः ॥९३॥
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा ऋषितां गताः।

वाल्मीकीय रामायण, ७।१ के अनुसार वामदेव दशरथ का ऋत्विक् तथा मन्त्री था। यथा—

मन्त्रिणावृत्विजौ चैव तस्यास्तामृषिसत्तमौ।
वसिष्ठो वामदेवश्च वेदवेदांगपारगौ॥

अर्थात्—ऋषिश्रेष्ठ, वेदवेदांगपारग, वसिष्ठ तथा वामदेव दशरथ के मन्त्री तथा ऋत्विज थे।

ऋक् सर्वानुक्रमणी के अनेक स्थलो से वामदेव का निम्नलिखित वंश-वृक्ष बनाया जा सकता है—

काल—दीर्घजीवी वामदेव ऋग्वेद ४।१९ का द्रष्टा है। ऐतरेय ब्राह्मण ६।१८ में वामदेव के मन्त्र-दर्शन का वर्णन है। वह दशरथ के काल में जीवित था।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—वामदेव आयुर्वेद का कर्ता था। पूर्व पृष्ठ ५६ पर शालिहोत्र-वचनानुसार इसका प्रमाण लिख चुके है।

गदनिग्रह, भाग प्रथम, पृष्ठ १७६ पर वामदेव का एक योग उद्धृत है—

प्रमेहे वामदेवेन कथिता गुटिका
कटुत्रिकं वचा मुस्ता विडङ्गं चित्रकं विषम्।
एतानि समभागानि पथ्या च द्विगुणा विषात्॥
पञ्चत्रिंशद्गुडाद्भागाः क्वाथयेन्मृदुनाग्निना।

वदरसमात्र गुटिका कार्या। एषा गुटिका प्रमेहं, आमवातं, गुल्मं, मन्दाग्निं हन्ति विशेषतश्च लालामेहम्॥

इस वचन से ज्ञात होता है कि वामदेव की आयुर्वेदीय सहिता अवश्य थी।

२. ज्योतिष—वामदेव के ज्योतिष-विषयक ग्रन्थ का ज्ञान अभी नही हो सका परन्तु पूर्व पृष्ठ ६४ के प्रमाणानुसार वामदेव ने ज्योतिष-विषयक ज्ञान वसिष्ठ से प्राप्त किया। वसिष्ठ और वामदेव एक साथ दशरथ के मन्त्री तो थे ही। उन्ही दिनो उसने यह विद्या सीखी।

१४. असित

वश—वायुपुराण ७०।२३, २४ से ज्ञात होता है कि असित का पिता कश्यप था। कश्यप ने गोत्रकामना से परम तप किया। परिणामस्वरूप वत्सर तथा असित उत्पन्न हुए। यथा—

तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः।
वत्सारश्चासितश्चैव नावुभौ ब्रह्मवादिनौ।
वत्सरान्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः॥२५॥

अर्थात्—तप करते हुए महात्मा कश्यप के वत्सर तथा असित नामक पुत्र हुए। वे दोनो ब्रह्मवादी थे। वत्सर से निध्रुव तथा रैभ्य उत्पन्न हुए।

असित की पत्नी एकपर्णा तथा पुत्र देवल था। वायुपुराण ७२।१७ में लिखा है—

असितस्यैकपर्णा तु पत्नी साध्वी दृढव्रता।
दत्ता हिमवता तस्मै योगाचार्याय धीमते।
देवलं सुषुवे सा तु ब्रह्मिष्ठं मानसं सुतम्॥

अर्थात्—साध्वी, दृढव्रता, एकपर्णा असित-पत्नी थी। बुद्धिमान्, योगाचार्य के लिए वह हिमवान् ने दी थी। उस [एकपर्णा] ने ब्रह्मिष्ठ, मानस-पुत्र देवल को जन्म दिया।
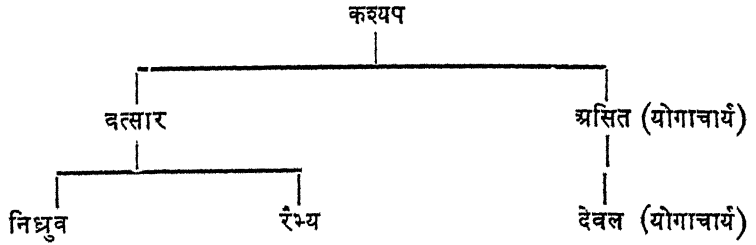
पुरातन इतिहास मे देवल को कही २ प्रत्यूष का पुत्र भी लिखा है।[1] यदि यह कोई अन्य देवल नही, तो असित काश्यप का एक नाम प्रत्यूष होना चाहिए। परन्तु वायुपुराण ६६।२० के अनुसार प्रत्यूष आठ वसुओ में एक था। अतः वह कश्यप से भिन्न था। उस के पुत्र का नाम भी देवल था। देवल को बहुधा असित-देवल भी कहा है, अर्थात् असित का पुत्र देवल। असित देवल (दैवल ?) ताण्डच ब्राह्मण १४।११।१६ मे स्मृत है।

आयुर्वेद कर्ता—शालिहोत्र के वचनानुसार असित और देवल दोनो ही आयुर्वेद-कर्ता प्रतीत होते है।[2]

१५. गौतम

वंश—गौतम अगिरा कुल में उत्पन्न हुआ। सस्कृत वाङ्मय मे गौतम अनेक आचार्यों का विशेषण है। कठ-उपनिषद् के वाजश्रवा तथा नचिकेता, जनक के पुरोहित शतानन्द का पिता, कुरु-आचार्य कृप तथा छान्दोग्य उपनिषद् का हारिद्रुमत सब गौतम कहलाते थे। गोतम की महिमा से उस के पूर्वज और कनिष्ठ सब गोतम कहे गए। इस का कारण ताण्डच ब्राह्मण १३।१२।८ में लिखा है।

आयुर्वेद कर्ता गौतम अतिप्राचीन ऋषि है। गौतम तथा उसकी धर्मपत्नी दिवोदास-भगिनी अहल्या का वश-क्रम प० भगवद्दत्तकृत भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय सस्करण पृ० ११३ पर देखें।

ग्रन्थ

१ **आयुर्वेद**—शालिहोत्र के अनुसार गौतम की गणना आयुर्वेद-कर्ताओं में है। गौतम के आयुर्वेदीय तन्त्र का ज्ञान हमें अभी नही हुआ, परन्तु गौतम के वचन कई स्थानो पर उद्धृत है।

---

१. विष्णुपुराण १।१५।११७॥ विष्णुधर्मोत्तर, प्रथम खण्ड ११६।१७॥ महाभारत, आदिपर्व ६७।२५॥

२. काश्यपसंहिता, उपो० पृ० २३। पूर्व पृष्ठ ५६।

आयुर्वेदीय चरकसहिता सिद्धिस्थान, अ० ११ मे लिखा है कि फलबस्ति की श्रेष्ठता के विषय पर मुनियो मे परस्पर विवाद हो गया। वे सब निर्णय करने के लिए आत्रेय के पास गए। इन ऋषियो मे गौतम भी था। वहा गौतम अपनी सम्मति प्रकट करता है—

कटुतुम्बममन्यतोत्तम वमने दोषसमीरणं च तत्।
तद्वृष्यमशैत्यतीक्ष्णताकटुरौक्ष्यादिति गौतमोऽब्रवीत् ॥६॥

अष्टांगसग्रह निदानस्थान अध्याय २ मे नक्षत्र तथा ज्वरविषयक विवेचना करते हुए गौतम का मत उद्धृत है—

चतूरात्रेऽष्टरात्रे वा क्षेममित्याह गौतमः।

अर्थात्—गौतम कहता है कि चार रात्रि अथवा आठ रात्रि मे कल्याण हो जाता है।

माधवनिदान का व्याख्याकार विजयरक्षित अर्शोनिदान के श्लोक ३३, ३४ की व्याख्या करते हुए गौतम को उद्धृत करता है—

यदाह गौतमः—
श्लेष्मा पञ्चविधोरस्थः श्लेष्मकादि स्वकर्मणा।
कफधाम्नां च सर्वेषां यत् करोत्यवलम्बनम्॥
अतोऽवलम्बकः श्लेष्मा यस्त्वामाशयसंश्रितः।
क्लेदकः सोऽन्नसंघातक्लेदनात्, रसबोधनात्॥
बोधको रसनास्थस्तु शिरःसंस्थोऽक्षतर्पणात्।
तर्पकः श्लेष्मकः सम्यक् श्लेषणात्सन्धिषु स्थितः॥

अर्थात्—उरस्थ श्लेष्मा अपने कर्म के अनुसार पाच प्रकार का है। अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक तथा श्लेष्मक।

२. न्याय-शास्त्र—गौतम का न्याय-शास्त्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। युगारम्भ में महर्षि पूर्व तपोबल से ब्रह्मा की आज्ञा पाकर शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त कर लेते है। महाभारत, शा० प० २१२।३४ मे लिखा है—

न्यायतन्त्रं हि कार्त्स्न्येन गौतमो वेद तत्त्वतः।

अर्थात्—गौतम सम्पूर्ण न्याय-शास्त्र को तत्त्वपूर्वक जानते थे।

३ धर्मसूत्र—गौतम धर्मसूत्र सम्प्रति उपलब्ध है। बौधायन, आपस्तम्ब आदि धर्मसूत्रो से यह अति प्राचीन है। यह ग्रन्थ सामशाखाकार गौतम का है।

४ शाखाकार—एक गौतम सामशाखाकार था।

५. शिक्षा—गोतमप्रोक्त गौतमी शिक्षा इस समय उपलब्ध है।

६. व्याकरण—प्रतीत होता है गौतम वैयाकरण भी था। इसके प्रमाण

प० युधिष्ठिर मीमासकजी के ग्रन्थ, व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ० ६१ पर देखें।

७ **पाशुपाल्य-शास्त्र**—अर्थशास्त्र की गणपति शास्त्रीकृत टीका, पृ० ३२ पर गौतममुनिकृत पाशुपाल्यशास्त्र का स्मरण किया गया है।

पूर्वलिखित सब ग्रन्थ एक ही गौतम के हैं, अथवा भिन्न २ गौतमो के, यह विचारणीय है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे षष्ठोऽध्यायः

सप्तम अध्याय

अन्य प्रकीर्णोपदेष्टा

चरकवर्णित, इन्द्र के भृगु आदि दस शिष्यो का अति सक्षिप्त वर्णन हो चुका । चरकसहिता के पाठ मे इन दस नामो के आगे आदि शब्द का प्रयोग हुआ है । आदि शब्द से अभिप्रेत अन्य आयुर्वेद-उपदेष्टाओ का कुछ आभास इस अध्याय मे मिलेगा । संभव है ये सब इन्द्र के साक्षात् शिष्य न हो, अथवा इनमें से कतिपय ने ब्रह्मा, दक्ष-प्रजापति तथा इन्द्रोपदिष्ट ऋषियो से आशिक विद्या ग्रहण की हो,तथापि आयुर्वेद का इतिहास समझने के लिए इनका वर्णन आवश्यक है । अत ऐसे महात्माओ का आगे उल्लेख किया जाता है । शिव उनमे प्रधान है—

१६. शिव

वंश—ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार माता सुरभि तथा प्रजापति कश्यप के ग्यारह पुत्र थे । इनको एकादश रुद्र कहते है । शिव इनमे से एक है । शिव सब भाइयो से अधिक तपस्वी, ज्ञानवान्, समर्थ और दीर्घजीवी हुआ । इसके तप के कारण ही पार्वती ने इसे वरा ।

काल—शिव का काल कृतयुग के अन्त मे है । वह योगबल और रसायन-सेवन से चिरजीवी हुआ ।

स्थान—रुद्र-माता सुरभि का देश अफगानिस्तान से परे और फारस से नीचे था । कभी वसिष्ठ ऋषि भी इस देश मे रहा करता था । शिव का जन्म इसी देश में हुआ । कैलाश पर्वत उसके तप का स्थान था । भारत के भी किसी-किसी स्थान मे कुछ-कुछ काल पर्यन्त वह रहा करता था । वाग्भट ने अपने रस-रत्न-समुच्चय मे लिखा है कि शिव हिमालय पर भी रहा करता था । यथा—

चकास्ति तत्र जगतामादिदेवो महेश्वरः ।
रसात्मना जगत्त्रातुं जातो यस्मान्महारसः ॥

अर्थात्—वहा [हिमालय] पर जगत् का आदिदेव शिव शोभा देता है।

आदिदेव—ब्रह्मा और धन्वन्तरि भी आदिदेव कहे गये है। पूर्वोद्धृत श्लोकानुसार शिव भी आदिदेव है। यह समस्या विचारणीय है।

नाम तथा विशेषण

शिव के बारह मुख्य नामो का उल्लेख नीचे किया जाता है।

शिव, शंकर, शम्भू, पिनाकी, शूलपाणि, महेश्वर, महेश, महादेव, स्थाणु, गिरीश, विशालाक्ष तथा त्र्यम्बक।

वेदो मे शिव, शर्व आदि शब्द ब्रह्मपरक है, पर इतिहास पुराण मे ये नाम ऐतिहासिक महापुरुष के है।

इनमे से विशालाक्ष और त्र्यम्बक नाम से शिव की राजनीति संबन्धिनी विशाल और गूढ दृष्टि अभिप्रेत है। साधारण पुरुष दो आँखें रखते है। शिव की तीसरी आँख थी। उससे वह राजनीति के गहरे तत्व देखता था।

हेमचन्द्र कृत अभिधानचिन्तामणि, देवकाण्ड की स्वोपज्ञ टीका, पृष्ठ ८३ पर उद्धृत शेषकोश के वचन में शिव के कुछ अतिप्राचीन नाम मिलते है। यथा—

बहुरूपः सुप्रसादो मिहिराणोऽपराजितः ॥
कङ्कटीको गुह्यगुरुर्भगनेत्रान्तकः खरुः ॥
परिणाहो दशबाहुः सुभगोऽनेकलोचनः ॥१॥ इत्यादि ।

ताण्ड्य महाब्राह्मण १४।६।१२ मे महादेव को मृगयु नाम से स्मरण किया गया है—

देवं वा एवं मृगयुरिति वदन्ति ।

शिव तथा नन्दी—शिव का परमप्रिय शिष्य नन्दी था। इस कारण शिव को नन्दिवर्धन भी कहते है। नन्दी मनुष्य था।[1] उसे अनेक विद्याओ का ज्ञान था। उसने रस-शास्त्र पर ग्रन्थ रचा। रसरत्नसमुच्चय, पूर्व खण्ड ६।२६ में लिखा है—

नाभियन्त्रमिदं प्रोक्तं नन्दिना सर्ववेदिना।

अर्थात्—सब कुछ जानने वाले नन्दी ने यह नाभियन्त्र कहा है।

वात्स्यायन १।८ के अनुसार नन्दी ने अपने गुरु के विस्तृत त्रिवर्ग-शास्त्र

---

१. दक्षिण में आज भी बैलों को महादिया और नादिया अर्थात् महादेव और नन्दी कहते हैं। नन्दी बैल भी था परन्तु शिव का शिष्य भी नन्दी था।

मे से कामशास्त्र का भाग पृथक् किया। यथा—

महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक्कामसूत्रं प्रोवाच।

अर्थात्—महादेव के अनुचर नन्दी ने एक सहस्र अध्यायो मे [त्रिवर्ग शास्त्र से] पृथक् करके कामसूत्र कहा।

शिव तथा गण—शिव के अनेक गण थे। इनमे से पूर्वोक्त नन्दी का भी एक गण था। शेष थे भृङ्गी, महाकाल, स्कन्द स्वामी, महागण आदि। शिव के पास भूत पिशाच आदि पुरातन जातियो के लोग भी रहते थे। उनकी भाषा पैशाची थी। शिव से इन सब गणो ने अनेक विद्याए ग्रहण की। उनसे ये विद्याए योरुप के प्रदेशो मे फैली।

पजाब की पश्चिमोत्तर जातियो मे स्थापित अनेक गणराज्य शिव के गणो का रूपान्तर थे। दैत्यदेशो मे भी इस प्रकार की राज्यव्यवस्था की प्रवृत्ति हो गई थी।

विशेष घटना

दक्षयज्ञ-विध्वंस—शिव ने अपने जीवन मे अनेक आश्चर्योत्पादक कार्य किए, परन्तु आयुर्वेद-परम्परा का शिवकृत दक्षयज्ञ विध्वस से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

महेश्वरकोप से ज्वर उत्पन्न हुआ। इस विषय का विश्लेषण पूर्व पृ० ५२ पर कर चुके है। महाभारत, शा० प० अध्याय २९० तथा वायुपुराण, अध्याय ३० मे लिखा है कि दक्ष ने अपने हयमेध (यज्ञ) मे न शिव का भाग रखा, न शिव-पार्वती को निमन्त्रित ही किया। इसपर पार्वती अत्यन्त खिन्न हुई। उसकी तुष्टि के लिए शिव ने दक्ष यज्ञ-ध्वस किया। निमन्त्रित अतिथि त्रस्त होकर इतस्तत. भागने लगे। उस समय उनमे भय उत्पन्न होने से ज्वर तथा उसके रूपान्तर नानाविध रोग उत्पन्न हुए।

शिव का शास्त्रज्ञान—शिव महापण्डित था। वह अनेक विद्याओ का ज्ञाता था। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय २९० मे लिखा है—

··· ····· साङ्ख्ययोगप्रवर्तिने ॥११४॥
गीतवादित्रतत्वज्ञो गीतवादनकप्रियः॥१४२॥
शिल्पिक. शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्तकः।

अर्थात्—शिव साख्ययोगप्रवर्तक, गीत वादित्र का तत्व जानने वाला, शिल्पियो मे श्रेष्ठ तथा सारे शिल्पो का प्रवर्तक था।

शिव का ताण्डव-नृत्य सुप्रसिद्ध है, आज भी भारत के मद्रास प्रान्त मे इस नृत्य को जानने वाले कही कही मिलते है।

शिव महायोगी था। वायुपुराण मे लिखा है कि उसे अणिमादि सिद्धि प्राप्त थी।

महाभारत अध्याय १२२ मे लिखा है कि शिव वेदपारग था। यथा—

वेदाश्चतस्रः संक्षिप्ता वेदवादाश्च ते स्मृताः।
एतासां पारगो यश्च स चोक्तो वेदपारगः ॥४४॥
वेदानां पारगो रुद्रो विष्णुरिन्द्रो बृहस्पतिः।
शुक्रः स्वायंभुवश्चैव मनुः परमधर्मवित् ॥४५॥ शान्तिपर्व।

अर्थात्—चारो वेद तथा संक्षिप्त वेदवादो के पार जाने वाला ही वेदपारग कहा जाता है। रुद्र, विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति, शुक्र तथा परमधर्मज्ञ स्वायंभुव मनु वेद-पारग कहलाते हैं।

अभिप्राय यह है कि शिव को अनेक शास्त्रो का ज्ञान था। आयुर्वेद मे रस-विद्या का परमज्ञाता शिव माना गया है। शिव के रसार्णव तन्त्र मे पारद का वर्णन मिलता है। पारद के प्रयोग से आयु दीर्घ होती है। तप, योग और रसायन-प्रयोग से शिव को दीर्घ-जीवन मिला।

शिव तथा आयुर्वेद

जिस प्रकार वेदमन्त्रो के पाठ से पूर्व उनके द्रष्टा ऋषियो का नाम स्मरण किया जाता है, उसी प्रकार आयुर्वेद-शास्त्र मे नीरोगता के लिए प्रमुख आयुर्वेद प्रवक्ताओं का नाम स्मरण करने की परिपाटी है। आयुर्वेद ग्रन्थो में स्मृत इन नामों में शिव का नाम भी है। सुश्रुत सूत्रस्थान, अ० ४३ मे लिखा है—

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः।
ऋषयः सौषधिग्रामाः भूतसंघाश्च पान्तु ते ॥१॥

अर्थात्—ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र तथा भूमि आदि तेरी रक्षा करें।

अष्टांगसंग्रह, सूत्रस्थान, अध्याय सत्ताईस, पृष्ठ २०३ पर भी ऐसा वचन मिलता है।

इससे ज्ञात होता है कि आयुर्वेद-परम्परा में शिव का बडा मान था। शिव ने आयुर्वेद के सिद्धान्त-ग्रन्थो के अतिरिक्त रस-शास्त्र पर अनेक ग्रन्थ रचे।

सिद्धान्तग्रन्थ

१. आयुर्ग्रन्थ—शिव की इस रचना में आयुर्वेद विद्या के मुख्य सिद्धान्तो का वर्णन है।

२. आयुर्वेद—मद्रास सरकार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि, भाग २३,

सख्या १३०८६ में शिव का यह ग्रन्थ सन्निविष्ट है।

३ वैद्यराज-तन्त्र—शिव के इस ग्रन्थ मे उच्चकोटि की चिकित्सा का वर्णन है। इस हस्तलेख के उपलब्ध भाग मे शिव-पार्वती संवाद रूप मे नाडी-ज्ञान का वर्णन है। यह ग्रन्थ भी मद्रास सरकार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि, भाग २३, सख्या १३२२६ के अन्तर्गत है।

४. शैवसिद्धान्त—इस ग्रन्थ का नाम चक्रदत्त के रसायनाधिकार पृ० ३६६ पर वर्णित शिवगुटिका मे है—

शैवसिद्धान्तोक्ता शिवागुडिकेयम् ।

अर्थात्—यह शैवसिद्धान्त में कही हुई शिवा गुडिका है।

रसतन्त्र

रसतन्त्र-प्रवक्ताओ मे शिव का विशेष स्थान है। उसकी रसतन्त्र सम्बन्धी अनेक रचनाए उपलब्ध है। यथा—

५. रुद्रयामलतन्त्र—शिव ने इस बृहद् ग्रन्थ मे पारद का चिकित्सोपयोगी रूप बताया है। कहा जाता है कि निम्नलिखित उपलब्ध ग्रन्थ इसी मूल-ग्रन्थ का भाग है।

(क) **पारदकल्प**—इस गन्थ मे पारदयोगो का तथा उनके औषध रूप मे प्रयोग का वर्णन है।

(ख) **धातुकल्प**—यह रुद्रयामलतन्त्र का एक अध्याय है। इसमे धातुओ के चिकित्सोपयोगी-योगो का वर्णन है।

(ग) **हरितालकल्प**—रुद्रयामलतन्त्र के इस भाग मे ताल के गुण तथा योगो का उल्लेख है।

(घ) **अभ्रककल्प**—इसमे अभ्रक के गुण तथा योग उपलब्ध होते है।

(ङ) **हरीतकीकल्प**—इसमे हरीतकी की प्रयोग-विधि बताई गई है।

(च) **धातुक्रिया**—यह ग्रन्थ धातुओ की क्रिया से सम्बन्ध रखता है तथा शिव-पार्वती सवाद-रूप में उल्लिखित है।

६. कैलाशकारक—यह ग्रन्थ भी शिव-पार्वती सवादात्मक है। इसमे पारद की शोधनविधि वर्णित है। यह मद्रास सरकार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि, भाग २३, सख्या १३११३ मे सन्निविष्ट है।

७. रसार्णवतन्त्र—अष्टादशपटलात्मक यह रसतन्त्र शिव-पार्वती सम्वाद रूप मे है। यह ग्रन्थ कब रचा गया, इस विषय मे वर्तमान कालीन लेखको की अनेक उपपत्तियाँ मिलती है। यथा—

आचार्य रे—श्री० प्रफुल्लचन्द्र रे ने अपनी पुस्तक History of Hindu

Chemistry, सन् १९०४, द्वितीय सस्करण की भूमिका, पृ० ७९ पर लिखा है—

From the fact that रसार्णव is quoted in it (सर्वदर्शनसंग्रह) as a standard work on this subject it would be safe to conclude that it must have been written at least a century or two earlier, say sometime about the 12th century.

अर्थात्—क्योकि १४वी शताब्दी में रचे गए सर्वदर्शनसग्रह मे रसार्णव उद्धृत है, अत. यह ग्रन्थ संग्रह से एक वा दो शती पूर्व अर्थात् १२वी शती मे लिखा गया होगा ।

कविराज महेन्द्रनाथ ने रे महाशय का शब्दश अनुकरण किया है ।

रसरत्नसमुच्चय का पूर्ववर्ती रसार्णव—रसार्णव के काल का निश्चय अभी कठिन है, तथापि इतना निश्चित है कि रसार्णव ग्रन्थ रसरत्नसमुच्चय का पूर्ववर्ती है । समुच्चय १।११।१० में रसार्णव स्मृत है—

रसार्णवादि-शास्त्राणि निरीक्ष्य कथितं मया ।

अर्थात्—मैने रसार्णवादि को देखकर यह पाठ कहा है ।

इसके अतिरिक्त रसरत्नसमुच्चय मे रसार्णव के अनेक श्लोक उद्धृत है । यथा—

रसार्णव	रसरत्नसमुच्चय
२।१७।।	१।६।३७।।
७।५७-६७।।	१।३।२-१२।।
१०।३२,३३।।	१।१०।१०३।।

रसार्णव मे शिव-पार्वती सम्वाद है । समुच्चय के पाठो मे देवि, सुव्रते आदि सम्बोधन पद है । ये पाठ रसार्णव से लिए गए है । फलत समुच्चय रसार्णव से सामग्री लेता है ।

अन्य ग्रन्थ

८ **त्रिवर्ग-शास्त्र**—शिव ने ब्रह्मा के धर्म-अर्थ-कामात्मक त्रिवर्ग-शास्त्र का सक्षेप किया । इस संक्षिप्त शास्त्र का नाम वैशालाक्ष हुआ । महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ५८ में लिखा है—

युगानामायुषो ह्रासं विज्ञाय भगवाञ्छिवः ।
संचिक्षेप ततः शास्त्रं महास्त्रं ब्रह्मणा कृतम् ॥८५॥
वैशालाक्षमिति प्रोक्तं तदिन्द्रः प्रत्यपद्यत ।

अर्थात्—भगवान् शिव ने युगो की आयु का ह्रास जानकर ब्रह्मा के महान् शास्त्र का संक्षेप किया। वह शास्त्र वैशालाक्ष कहलाता है।

कालान्तर मे इसी शास्त्र से प्रत्येक वर्ग को पृथक् करके अर्थशास्त्र, कामशास्त्र तथा धर्मशास्त्र की रचना हुई।

९. **धनुर्वेद**—वीरमित्रोदय-अन्तर्गत लक्षणप्रकाश मे त्रैयम्बक धनुर्वेद के अनेक वचन मिलते है। शिव का पाशुपत अस्त्र प्रसिद्ध है।

१०. **वास्तुशास्त्र**—मत्स्यपुराण अध्याय २५२ मे वर्णित अष्टादश वास्तुशास्त्रोपदेशको मे शिव की गणना भी की गई है।

११. **नाट्यशास्त्र**—शिव ने नाट्यशास्त्र पर योगमाला नामक ग्रन्थ रचा। भावप्रकाशन, द्वितीय अधिकार, पृ० ४५ पर लिखा है—

कथिता योगमालायां संहितायां विवस्वते।
शिवेन ताण्डवं लास्यं नाट्यं नृत्तं च नर्तनम्॥

अर्थात्—योगमाला सहिता में शिव ने विवस्वान् को [रसोत्पत्ति आदि तथा] ताण्डव, लास्य, नृत्त और नर्तन कहा है।

१२. **छन्दशास्त्र**—शिव छन्दशास्त्र का प्रवर्तक था। नाट्याचार्य के लिए छन्दशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। प० भगवद्दत्त कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मणभाग, पृ० २४६ पर लिखा है—

अपने भाष्य की समाप्ति पर यादवप्रकाश निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करता है—

छन्दोज्ञानमिदं भवाद्भगवतो लेभे सुराणां गुरुः।
तस्माद्दुश्च्यवनस्ततो सुरगुरुर्माण्डव्यनामा तत॥

अर्थात्—देवगुरु ने भगवान् शिव से यह छन्दोज्ञान प्राप्त किया। उससे इन्द्र ने तथा इन्द्र से माण्डव्यनामा सुरगुरु ने प्राप्त किया।

योग—शिवकृत ६२ योगो का वर्णन गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने अपने ग्रन्थ में किया है।

इनके अतिरिक्त 'अष्टागसग्रह, उत्तरस्थान, पृ० ३२० पर शिवकृत अगद का उल्लेख है। यथा—

गजपिप्पलिकासीसद्वारयष्टीमयूरकम्।
रक्तानतंवचादन्ती शिवः शिवकृतो गदः॥

सम्भवतः यह अगद वैशालाक्ष अर्थशास्त्र में उल्लिखित था। कौटल्य के अर्थशास्त्र मे भी अनेक विषहर-प्रयोग वर्णित है।

शिव के अनेक योग रसरत्नसमुच्चय मे भी उपलब्ध है।

१७. भास्कर

वंश—भास्कर का पिता कश्यप तथा माता अदिति थी। वह सुप्रसिद्ध बारह देवो में से एक था।

नाम—पूर्व पृष्ठ ३४ पर महाभारत के अनुसार द्वादश आदित्यो की नामावलि लिख चुके है। इन बारह नामो मे से दस नाम अधिकाश सूचियो मे समान है। शेष दो के विषय मे पर्याप्त विभ्रम है। इसका परिचय निम्न-लिखित उद्धरणो से मिलेगा। यथा—

१. विवस्वान्	भास्कर	आयुर्वेदीय काश्यपसहिता	पृ०	१५४।
२. ,,	सविता	महाभारत, शान्तिपर्व, पूना स०,		२०१।१५,१६।
३. जयन्त[1]	भास्कर	महाभारत, कुम्भघोण स०		२५५।१५,१६।
४ विवस्वान्	सविता	हरिवशपुराण		१।३।६०,६१।
५. ,,	पर्जन्य	हरिवशपुराण		१।६।४७,४८।
६ ,,	विधाता	बृहद्देवता		५।१४७,१४८।
७. ,,	सविता	विष्णुपुराण		१५।१३०,१३१।
८. ,,	पर्जन्य	वायुपुराण		६६।६६।

वायुपुराण ८४।३० मे विवस्वान् के लिए सविता तथा ८४।७८ में भास्कर का प्रयोग हुआ है। गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने विवस्वान् तथा भास्कर को एक मान कर हिस्टरी आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग प्रथम, पृ० ८३ पर अश्विद्वय को भास्कर-पुत्र माना है।

यह अभी गवेषणा का विषय है कि विवस्वान्, भास्कर तथा सविता नाम एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए है अथवा भिन्न-भिन्न के लिए। यदि पर्याय होने के कारण एक के लिए प्रयुक्त हुए है तो दूसरे भ्राता का क्या नाम है। यदि दो के लिए है तो पर्जन्य, विधाता तथा जयन्त को क्या समझा जाए। संभव है, आदित्य बारह से अधिक हों परन्तु इतिहास का वेदमन्त्रो से सामञ्जस्य बताने के लिए बारह की गणना स्थिर की गई हो, और इस प्रकार किसी सूची में एक नाम त्यागा गया है और अन्य सूची में दूसरा। अन्तिम निर्णय अधिक खोज चाहता है। इस भेदार्थ देखो, शा० पर्व ३५८।५०॥

काल—देवयुग के आरम्भ से देव जीते थे। भास्कर भी तभी से था। वह कब तक जीवित रहा, यह अभी अनिश्चित है।

गुरु—भास्कर ने प्रजापति ब्रह्मा से आयुर्वेद ज्ञान प्राप्त किया। ब्रह्म-

---

१. इस पाठ में विवस्वान् का नाम नहीं है।

वैवर्तपुराण, ब्रह्मखण्ड, अध्याय १६ मे लिखा है—

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः ।
विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवायुर्वेदं चकार सः ॥
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः ।
स्वतन्त्रसंहितां तस्मात् भास्करश्च चकार सः ॥

अर्थात्—प्रजापति ब्रह्मा ने ऋग्यजुसामाथर्वनामक वेदो का अर्थ-विचार कर के आयुर्वेद रचा । इस पञ्चम वेद की रचना करके उसे भास्कर को दिया । उस के आधार पर भास्कर ने स्वतन्त्र सहिता रची ।

शिष्य—ब्रह्मवैवर्तपुराण के उपरिलिखित प्रकरण मे भास्कर के १६ शिष्यो का वर्णन है । यथा—

भास्करश्च स्वशिष्येभ्यः आयुर्वेदं स्वसंहिताम् ।
प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः ॥
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च ।
व्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि मत्तो निशामय ॥
धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशिराजोऽश्विनीसुतौ ।
नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुध. ॥
जाबालो जाजलिः पैलः करथोऽगस्त्य एव च ।
एते वेदाङ्गवेदज्ञाः षोडष व्याधिनाशकाः ॥
चिकित्सातत्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोहरम् ।
धन्वन्तरिश्च भगवान् चकार प्रथमे सति ॥
चिकित्सादर्शनं नाम दिवोदासश्चकार सः ।
चिकित्साकौमुदीं दिव्यां काशिराजश्चकार सः ॥
चिकित्सासारतन्त्रञ्च भ्रमघ्नञ्चाश्विनीसुतौ ।
तन्त्रं वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः ॥
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम् ।
ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार ह ॥
च्यवनो जीवदानञ्च चकार भगवानृषिः ।
चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम् ॥
सर्वसारं चन्द्रसुतो जाबालस्तन्त्रसारकम् ।
वेदाङ्गसारं तन्त्रञ्च चकार जाजलिर्मुनिः ॥
पैलो निदानं करथस्तन्त्रं सर्वधरं परम् ।
द्वैधनिर्णयतन्त्रञ्च चकार कुम्भसम्भवः ॥

चिकित्साशास्त्रबीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश।
व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकराणि च॥

पूर्वोद्धृत श्लोको में जिन ऋषियो और उन के बनाए चिकित्सा-तन्त्रो का वर्णन है, उनका स्पष्ट उल्लेख निम्नलिखित है—

१. धन्वन्तरि		चिकित्सातत्वविज्ञान
२. दिवोदास		चिकित्सादर्शन
३. काशिराज		चिकित्साकौमुदी
४ नासत्य	अश्विद्वय	चिकित्सासारतन्त्र
५. दस्र		भ्रमघ्न
६. नकुल		वैद्यकसर्वस्व
७. सहदेव		व्याधिसिन्धुविमर्दन
८. अर्कि=यम		ज्ञानार्णव
९. च्यवन		जीवदानतन्त्र
१०. जनक		वैद्यसन्देह भञ्जन
११. चन्द्रसुत=बुध=राजपुत्र		सर्वसार
१२. जाबाल		तन्त्रसारक
१३. जाजलि		वेदागसारतन्त्र
१४ पैल		निदान
१५ करथ		सर्वधरतन्त्र
१६. अगस्त्य		द्वैधनिर्णयतन्त्र

भैषज्य-प्रधान-ग्रन्थ—पूर्वोक्त सूचि मे वर्णित अधिकाश ग्रन्थ भैषज्य अथवा चिकित्सा-प्रधान ग्रन्थ थे। इनमे चिकित्सा-पद्धति का गम्भीर ज्ञान था। आयुर्वेद का सिद्धान्त-पक्ष सामान्य रूप से था। वेदाङ्गसार तन्त्र में आयुर्वेद के आठो अङ्गो का सार प्रतीत होता है। निदान ग्रन्थ मे चिकित्सा से पूर्व निदान का पूर्ण विस्तृत उल्लेख था।

ब्रह्मवैवर्त के लेख की सत्यता—पूर्वलिखित सूचि मे इतने ग्रन्थो का नाम देखकर एक साधारण व्यक्ति सहसा कह उठता है कि यह सूचि कल्पित है। वस्तुत बात ऐसी नही। नकुल का अश्व-वैद्यक आज भी प्रसिद्ध और सुलभ

---

१. कविराज महेन्द्रनाथजी शास्त्री ने अपने इतिहास के पृ० २३ पर लिखा है—उक्त सूचि में प्राचीन आयुर्वेदीय तन्त्रों के नाम दिए हैं, किन्तु नामकरण विधि अर्वाचीन ज्ञात होती है। इति हम इससे सहमत नहीं।

है। उसका दूसरा नाम वैद्यकसर्वस्व था। सहदेव का ग्रन्थ सभवत. गो-चिकित्सा-परक था। बुध का अपर नाम राजपुत्र था।[1] राजपुत्र का हस्तिशास्त्र मत्स्य-पुराण के अनुसार गजवैद्यक भी कहाता था। इसका अपरनाम सर्व-गज-वैद्यक-सार अथवा सर्व-सार हो सकता है।]

नकुल-विषयक आपत्ति—प्रश्न होता है, नकुल और सहदेव भास्कर के साक्षात् शिष्य थे, अथवा परम्परागत शिष्य। यदि उन्हे साक्षात् शिष्य माना जाए तो भास्कर की आयु, इन्द्रवत् बहुत लम्बी माननी पड़ेगी। इसमें कोई हानि नही। यदि यह बात सिद्ध न हो सके, तो नकुल और सहदेव परम्परागत शिष्य मानने पडेगे।

एक बात सत्य है, इस भास्कर से याज्ञवल्क्य ने शुक्ल-यजु प्राप्त किए। अत: याज्ञवल्क्य के काल तक भास्कर अवश्य जीवित था। नकुल तथा सहदेव के ज्येष्ठ भ्राता पाण्डव युधिष्ठिर के यज्ञ मे याज्ञवल्क्य उपस्थित था। इनके काल का महदन्तर न था। फलत नकुल तथा सहदेव भास्कर के साक्षात् शिष्य भी हो सकते है।

विशेष घटना

हिरण्यपाणि-सविता—यदि सविता शब्द भास्करवाचक है तो भास्कर अथवा सविता का हिरण्यपाणि होना उसके जीवन की विशेष घटना है। प्रतीत होता है दक्षयज्ञ मे शिवक्रोध से सविता को हस्तरहित होना पडा।[2] तदनु उसके सौवर्ण-हस्त लगाए गए। कौषीतकि ब्राह्मण ६।१३ में इसका उल्लेख है। यथा—

यत्र तद्देवा यज्ञमतन्वत तत्सवित्रे प्राशित्रं परिजह्रुस्तस्य पाणी प्रचिच्छेद तस्मै हिरण्मयौ प्रतिदधुस्तस्माद्धिरण्यपाणिरिति।

अर्थात्—जहा उन देवो ने यज्ञ का विस्तार किया, तो सविता के लिए ब्रह्मा के निमित्त की हवि को परे किया। उसके हाथ काट दिए। उसके लिए सौवर्ण हाथ लगाए गए, अत वह हिरण्यपाणि है।

ज्ञात होता है हमारे देश मे अद्वितीय आयुर्वेदीय चमत्कार हुआ करते थे।

---

१. देखो, पं० भगवद्दत्त कृत, भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय संस्करण, पृ० ४६।

२. कौषतकि ब्राह्मण में इस घटना के साथ, अन्धो भगः तथा अदन्तक पूषा वाली घटना का वर्णन भी है, अतः इसका सम्बन्ध दक्षयज्ञ से प्रतीत होता है।

तपोनिधि आचार्यों की ज्ञानगरिमा के सामने ये सामान्य बातें थीं।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—हम पूर्व पृष्ठ ६१ पर लिख चुके हैं कि भास्कर चिकित्सा-पद्धति के आचार्यों में प्रमुख हैं। ब्रह्मा से प्रजापति दक्ष ने आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया, परन्तु भास्कर ने ब्रह्मा से आयुर्वेद-सम्मत चिकित्सा-पद्धति का ज्ञान प्राप्त किया। इसी कारण चिकित्सा के आचार्यों में भास्कर का नाम प्रथम है। गौतम धर्मसूत्र, पृ० ४६६।१३ में लिखा है—

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्। इति।

अर्थात्—भास्कर से आरोग्य की इच्छा करे।

इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि भास्कर आरोग्य का दाता अथवा महान चिकित्सक था।

भास्कर ने अपने शिष्यों को चिकित्सा-पद्धति का उपदेश किया,[१] तथा उन शिष्यों ने भी चिकित्सा-तन्त्रों की रचना की।

तीसट तथा सूर्य—आचार्य तीसट ने चिकित्साकलिका, पृ० १ पर अन्य आयुर्वेदीय आचार्यों को नमस्कार करते हुए सूर्य को भी स्मरण किया है—

सूर्याश्विधन्वन्तरिसुश्रुतादीन्।

सावित्र संहिता—सुश्रुत स०, कल्प ३।५ की व्याख्या में उल्हण सावित्र स० का वचन उद्धृत करता है।

२. रसशास्त्र—आचार्य भास्कर का रसविद्या पर भी कोई ग्रन्थ था। रसरत्नसमुच्चय १।१।२ में भास्कर की गणना २७ रससिद्धिप्रदायकों में है।

गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार S.K.D. (श्रीकण्ठदत्त) के संक्षिप्त-सार में भास्कर के उदर्क रस का वर्णन है।

३. ज्योतिष—आचार्य भास्कर ने मय को ज्योतिष का उपदेश दिया। वह आज भी सूर्य-सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है।

योग—भास्कर-कथित उदर्करस का वर्णन ऊपर कर चुके हैं। इस आचार्य का दूसरा योग सुप्रसिद्ध भास्कर-लवण-चूर्ण है।

---

१. हमारे यहाँ चिकित्साविषयक विशेष ग्रन्थ हुआ करते थे। इनमें चिकित्सोपयोगी गहनतत्त्वों का विशद वर्णन था। भेलसंहिता, पृ० १२८ तथा गदनिग्रह द्वितीय संस्करण, पृ० १९६ के वचन में इसका आभास मिलता है।

१८. विष्णु

वंश—पूर्व पृष्ठ ३४ पर वर्णित द्वादश आदित्य-भ्राताओ मे विष्णु अन्यतम था। वह सबसे कनिष्ठ था। गुणो मे सबसे अधिक होने के कारण वह देवो का राजा हुआ।[1] इसी कारण वह सुरकुलेश कहाया।

नाम—विष्णु के अनेक नाम भारतीय इतिहास मे प्रसिद्ध है। यहाँ उनका विस्तृत वर्णन नही किया जाता। महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम द्रष्टव्य है।

काल—विष्णु देवयुग का व्यक्ति है।

स्थान—देवस्थान मेरु विष्णु का प्रधान निवासस्थान था। क्षीरोद (कैसपिअन) सागर के समीप भी विष्णु रहता था।

ब्रह्मज्ञाता तथा वेदपारग—महाभारत शान्तिपर्व, २१२।३६ मे विष्णु को ब्रह्मवित् कहा गया है। पूर्व पृष्ठ ८६ पर महाभारत के प्रमाणानुसार कुछ वेद-पारग आचार्यों के नाम दिए गए है। उनके अनुसार विष्णु वेदपारग-तथा परम धर्मवित् था।

ग्रन्थ

आयुर्वेद—विष्णु के आयुर्वेद-सम्बन्धी किसी ग्रन्थ का ज्ञान हमे अभी तक नही परन्तु विष्णु की एतद्विषयक रचना थी अवश्य। उसी में से उद्धृत योग आज भी आयुर्वेदीय संहिताओ मे इतस्तत. पाए जाते है।

आयुर्वेदीय चरक-संहिता, अध्याय ३ के अनुसार विष्णु की स्तुति ज्वर-नाशिका है यथा—

> विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम्।
> स्तुवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति ॥३१२॥

प्रतीत होता है विष्णु ज्वर विशेषज्ञ था अत पुरातन काल से यह विश्वास चला आया है कि विष्णु के नाम-स्मरण से ज्वर दूर हो जाते है।

अष्टाङ्ग संग्रह, उत्तरस्थाना, पृष्ठ ३८७ पर विष्णुनिर्मित मन्त्र का उल्लेख है।

योग—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने विष्णु के १० योगो का उल्लेख किया है।

---

१ इस विषय के विस्तृत वर्णन के लिए देखो पं० भगवद्दत्त कृत, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, पृ० २२०।

इनके अतिरिक्त विष्णु-निर्मित दो और योग अष्टाङ्ग संग्रह उत्तरस्थान में वर्णित हैं—

सुवर्णशैलप्रभवो विष्णुना काञ्चनो रसः।
तापी किरातचीनेषु यवनेषु च निर्मित ॥प्र० ३८॥
दानवेन्द्रविजितान् पुरा सुरान्
भ्रष्टकान्तिधृति धैर्यतेजसः।
वीक्ष्य विष्णुरमृतं किलासृजत्
गुल्गुलुं बलवपुर्जयप्रदम ॥प्र० ४२१॥

अर्थात्—काञ्चनरस तथा गुल्गुलु योग विष्णु—प्रदत्त हैं।

१९. कवि उशना

वंश—वरुण का पुत्र भृगु कवि था। पूर्व पृष्ठ ५५ के लेखानुसार भृगु का पुत्र उशना काव्य अथवा उशना कवि हुआ।

नाम—उशना को कवि, काव्य, तथा शुक्र भी कहते हैं। जैमिनीय ब्राह्मण १।१६६ में लिखा है—

कविर्वै भार्गव

अर्थात्—भार्गव [उशना] कवि है।

भृगु-पुत्र होने से उशना भार्गव कहलाता था। मन्त्रद्रष्टा होने से वह कवि था। उसका पिता भी कवि था, अतः उशना काव्य भी कहाया। ब्रह्माण्ड पुराण ३।१।७६ में लिखा है—

देवासुराणामाचार्यं शुक्रं कविवरं ग्रहम्।
शुक एवोशना नित्यमत काव्योऽपि नामतः॥

अर्थात्—शुक्र का नाम उशना तथा काव्य है।

अथर्ववेद में प्रयुक्त कवि उशना शब्द के आधार पर शुक्र का नाम कवि उशना हुआ।

पारसी धर्मपुस्तक अवेस्ता में उसे कवि-उसा तथा शाहनामा में उसे कैक-ऊस अथवा कैकौस लिखा है।

असुर पुरोहित—कवि उशना असुरों का पुरोहित तथा दूत था। तैत्तिरीय संहिता २।५।८ में लिखा है—

अग्निर्देवानां दूत आसीत्। उशना काव्योऽसुराणाम्।

अर्थात्—अग्नि देवों का दूत था, तथा उशना काव्य असुरों का।

गन्धर्वों का राजा—जैमिनीय ब्राह्मण १।१२७, १६६ के अनुसार उशना काव्य गन्धर्व देश का राजा था। यथा—

उशना वै काव्यो देवेष्व् अमर्त्यं गन्धर्वलोकम् ऐच्छत्।......
ततो वै स देवेष्व् अमर्त्यं गन्धर्वलोकम् आश्नुत । १२७ ।
कविर्वै भार्गवो देवेषु.........। १६६ ।

अर्थात्—उशना काव्य देवो मे था। उसने अमर्त्य (दीर्घजीवन वाले) गन्धर्वलोक की कामना की। तब वह देवो के उसी अमर्त्य गन्धर्वलोक को प्राप्त हुआ।

पूर्व पृष्ठ ५६ पर लिखा गया है कि अरब, ईरान तथा काल्डिया आदि प्रदेशो में भृगुवशियो का बडा विस्तार था। वायु पुराण ७०।४ के अनुसार कवि उशना वास्तव मे भृगुओ का राजा अभिषिक्त किया गया। उसी का वर्णन अवेस्ता तथा शाहनामा मे भी है। फलत. पारसीक, मिश्री यवन तथा यहूदियो के चिकित्सा-शास्त्र पर भार्गव उशना तथा उसके पिता भृगु के आयुर्वेद-ज्ञान का प्रभाव पडा।

काल—उशना का काल देवयुग से आरम्भ होता है। उशना दीर्घ-जीवी था।

ऋषि उशना—महाभारत, शान्तिपर्व ५८।२ मे उशना को राजशास्त्र-प्रणेता, ब्रह्मवादी, ब्राह्मण कहा है। पूर्व पृष्ठ ६८ पर लिख चुके है कि उशना काव्य तपोबल से ऋषि हुआ।

अथर्ववेद तथा उशना—काव्य उशना तथा उसका पिता भृगु अनेक आथर्वण सूक्तो अथवा छन्दोवेद के सूक्तो के द्रष्टा है।

आयुर्वेदज्ञ—आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है। उशना अथर्ववेद का ज्ञाता था। फलत उशना अद्वितीय वैद्य हुआ। उसे अद्वितीय रसायनो का ज्ञान था।

संजीवनी-विद्या-ज्ञाता उशना-पिता-भृगु—असुर-गुरु उशना आयुर्वेद विशेषज्ञ था। प्रतीत होता है उसने यह ज्ञान अपने पिता भृगु से उपलब्ध किया। भृगु सजीवनी विद्या का ज्ञाता था। ब्रह्माण्ड पुराण ३।७२ मे इसका उल्लेख है—

विष्णु ने काव्य उशना की माता का शिर छेद किया। इस पर काव्य के पिता भृगु ने उसे शाप दिया, तथा अपनी पत्नी को सजीवनी विद्या के बल से जीवित कर लिया। यथा—

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरः स्वयम्।
समानीय ततः काये समायोज्येदमब्रवीत् ॥१४४॥

एतां त्वां विष्णुना सत्यं हतां संजीवयाम्यहम् ।

अर्थात्—विष्णु को शाप देकर, वह भृगु अपनी पत्नी का कटा शिर ले आया। काया पर उस शिर को जोड़ कर बोला, निश्चय ही विष्णु से मारी गई तुझे मैं जीवित करता हूँ।

इस घटना के सम्भव होने में सन्देह नहीं। आत्मा कितने काल तक शिर अथवा हृदय में रहता है, यह विचारणीय है। उसी विद्या के बल से उशना मृत-असुरों को जीवित कर देता था।

उशना का संजीवनी-ज्ञान—ब्रह्माण्ड-पुराण ३।३० के अनुसार काव्य उशना ने सजीवनी-विद्या के बल से जमदग्नि को पुनर्जीवित किया—

एतस्मिन्नन्तरे राजन्भृगुवंशधरो मुनिः ।
विधेर्बलेन मतिमांस्तत्रागच्छद्यदृच्छया ॥५१॥
अथर्वणां निधिः साक्षाद्वेदवेदांगपारगः ।
सर्वशास्त्रार्थवित्प्राज्ञः सकलासुरवंदितः ॥५२॥
मृतसंजीवनीं[1] विद्यां यो वेद मुनिदुर्लभाम् ।
यथाहतान्मृतान्देवैरुत्थापयति दानवान् ॥५३॥
शास्त्रमौशनसं येन राज्ञां राज्यफलप्रदम् ।
प्रणीतमनुजीवन्ति सर्वेऽद्यापीह पार्थिवाः ॥५४॥
तच्छ्रुत्वा स भृगुः शीघ्रं जलमादाय मंत्रवित् ।
सञ्जीविन्या विद्यया तं सिषेच प्रोच्चरन्निदम् ॥५८॥

अर्थात्—हे राजन, इसी अन्तर में [जब हैहय के भृत्यों की कशा द्वारा जमदग्नि के मारे जाने पर जमदग्नि पत्नी रेणुका और उसके पुत्र आदि मृत शरीर के समीप आश्रम में बैठे थे] भाग्यवश बुद्धिमान्, भृगुवशी मुनि [उशना] अकस्मात् वहाँ आ गया। वह साक्षात् अथर्ववेद का कोष, वेदवेदागपारग, सम्पूर्ण शास्त्रों का अर्थ जानने वाला, बुद्धिमान्, सारे असुरों से पूजित, [ऋषि] मुनियों को भी दुर्लभ मृतसजीवनी विद्या को जानता था। इसी के द्वारा वह देवों से आहत तथा मृत दानवों को पुनः जीवित कर देता था। उसने राजाओं को राज्य-फल देने वाला औशनस अर्थशास्त्र रचा। आज भी सारे राजा इस शास्त्र के अनुजीवी हैं। [जमदग्नि] की मृत्यु का वृत्त सुन कर मन्त्रवित्, भृगुवशी [उशना] ने शीघ्र उस [जमदग्नि] पर सजीवनी-विद्या से जल छिड़का। (मत्स्य २४९।६ के अनुसार उशना ने यह विद्या महेश्वर से ली।)

---

१. वर्तमान काल के डाक्टर अथवा वैद्यों को इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए असाधारण प्रयास करना पड़ेगा।

टिप्पण—सजीवनी-विद्या मनुष्यो, ब्रह्मा, इन्द्र तथा विष्णु आदि देवों और असुरो आदि म तो थी नही, पर मुनियो को भी दुर्लभ थी।

मृतक-शरीर पर सजीवनी विद्या का प्रभाव कुछ निश्चित समय के अन्दर ही होता है। जमदग्नि को मरे अधिक काल हो गया था। उशना समझता था कि अधिक काल व्यतीत होने पर वह मृतक-शरीर को पुनर्जीवित करने मे सफल न हो सकेगा, अत वह शीघ्रता से जल लाया। मृत्यु के उपरान्त कितने काल के अन्दर पुनर्जीवन हो सकता है, यह भावी अन्वेषण से निश्चित होगा।

पूर्व पृष्ठ २६ पर वायुपुराण से उद्धृत श्लोक मे मृतसजीवनी ओषधि का उल्लेख है। मृतसजीवनी विद्या का सजीवनी ओषधि से क्या सम्बन्ध है, यह विचारणीय है। आयुर्वेद मे मणि, मन्त्र तथा ओषधि का प्रयोग विहित है। मृतसजीवनी विद्या के लिए केवल मन्त्र प्रयुक्त होते है अथवा मन्त्र तथा ओषधि दोनो, यह गवेषणा का विषय है।

भार्गव-उशना तथा उसका पिता भृगु अथर्ववेद के मार्मिक तत्वो के ज्ञाता थे। अत पिता-पुत्र दोनो को मुनिदुर्लभ सजीवनी-विद्या का रहस्य ज्ञात था। आज के युग के अल्प आयु, आत्मा की सूक्ष्म गति से अपरिचित वैज्ञानिक-ब्रुव इसे असभव कह सकते है, परन्तु सूक्ष्मदर्शी, अमित-बुद्धि, वेदपारग ऋषियो के लिए ऐसे तत्वो का ज्ञान असभव न था।

त्र्यरुण-पुरोहित का संजीवनी-ज्ञान—महाराज त्र्यरुण का पुरोहित वृश भी सजीवनी विद्या का ज्ञाता था। बृहद्देवता ५।१४-१६ मे इसका वर्णन है—

> ऐक्ष्वाकुस्त्र्यरुणो राजा त्रैवृष्णो रथमास्थित ।
> संजग्राहाश्वरश्मींश्च वृशो जान. पुरोहितः ॥१४॥
> स ब्राह्मणकुमारस्य रथो गच्छञ्छिरोऽछिनत् ।
> एनस्वीत्यब्रवीच्चैव स राजैनं पुरोहितम् ॥१५॥
> सोऽथर्वाङ्गिरसान्मन्त्रान् दृष्ट्वा संजीव्य तं शिशुम् ।

अर्थात्—त्रिवृष्ण-पुत्र, इक्ष्वाकुवशी राजा त्र्यरुण रथ मे बैठा था। उसके पुरोहित जनपुत्र वृश ने घोडो की रश्मि पकडली। उस रथ के नीचे किसी ब्राह्मण पुत्र का सिर कट गया। राजा ने पुरोहित को कहा, यह पाप हो गया है। उस पुरोहित ने अथर्वाङ्गिरस मन्त्र देखकर ब्राह्मण-कुमार को जीवित कर दिया।

त्र्यरुण-पुरोहित वृश ने मन्त्र-बल मे ब्राह्मण-कुमार के कटे शिर को जोडा। भृगु ने भी अपनी पत्नी का कटा शिर जोडा था। अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थो के अनुसार यज्ञ=ब्रह्मा का कटा शिर अश्वियो ने जोड़ा था। सजीवनी का यह पक्ष ध्यानयोग्य है। च० चि०२३।५४-६० तथा सु०क० ५।७५ मे सजीवनी अगद है।

उशना द्वारा जरा-संक्रामण—असुर-गुरु उशना सिद्धहस्त वैद्य था। उसे आयुर्वेद के विशेष रहस्यो का ज्ञान था।

ययाति अकाल-वृद्ध हो गया। उसने पुत्र को अपनी जरा दे दी। यह जरा-सक्रामण उशना की कृपा से हुआ। महाभारत आदिपर्व ७७।६१ में लिखा है—

नाहं मृषां ब्रवीम्येतज्जरां प्राप्तोऽसि भूमिप।
जरां त्वेतां त्वमन्यस्मिन्संक्रामय यदीच्छसि॥

अर्थात्—[उशना ने कहा] हे राजन्, मै असत्य नही कहता, तू बुढापे को प्राप्त हो गया है, यदि तेरी इच्छा है तो इस जरा को किसी दूसरे मे सक्रामित कर दे।

वायुपुराण ९३।६२ मे लिखा है कि महाराज ने शुक्र-कृपा से अपनी जरा पुत्र पुरु में सक्रामित की। यथा—

पुरोरनुमतो राजा ययातिः स्वां जरां ततः।
संक्रामयामास तदा प्रसादाद्भार्गवस्य तु॥

अर्थात्—पुरु की अनुमति प्राप्त करने पर राजा ययाति ने भार्गव उशना की कृपा से अपनी जरा अपने पुत्र मे संक्रामित कर दी।

यदि एक व्यक्ति का रक्त दूसरे में सक्रामित किया जा सकता है तो आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित उशना द्वारा जरा-सक्रामण भी असभव नही। आयुर्वेद के इस अङ्ग का गम्भीर अन्वेषण अभीष्ट है। अश्विद्वय-द्वारा च्यवन के वार्धक्य नाश की घटना का भी तुलनात्मक अन्वेषण आवश्यक है।

गुरु—उशना ने आयुर्वेद-ज्ञान किस गुरु से प्राप्त किया, इसका स्पष्ट विवरण हमें अभी तक नही मिला। प्रतीत होता है आयुर्वेद के अनेक चमत्कारी योग उसने अपने पिता भृगु से प्राप्त किए थे।

शिष्य—महाभारत, आदिपर्व ७०।२१ के अनुसार बृहस्पति-पुत्र कच ने उशना से अन्यविद्याओ के साथ संजीवनी विद्या का ज्ञान भी प्राप्त किया।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—उशना का आयुर्वेद विषयक कोई ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नही हुआ।

२. लोकतन्त्र—उशना ने चित्रशिखण्डि-शास्त्र के आधार पर अपना शास्त्र रचा।

३. अर्थशास्त्र—विष्णुगुप्तकृत अर्थशास्त्र में इसका उल्लेख मिलता है। कौटिल्य से पूर्वकाल की चरकसंहिता, वि० ८।५४ में औशनस अर्थशास्त्र का

उल्लेख है। महाभारत शान्तिपर्व मे उशना के राजनीति-विषयक अनेक वचन उद्धृत है। उशना ने बृहस्पति के त्रिसहस्राध्यायात्मक अर्थशास्त्र का संक्षेप किया। इस समय यह ग्रन्थ उपलब्ध नही। शुक्रनीतिसार इस अर्थशास्त्र का संक्षेप प्रतीत होता है।

महाकवि कालिदास कुमारसभव ३।६ मे उशना की नीति का उल्लेख करता है।

४. **सांख्यदर्शन**—उशना का साख्य-विषयक कोई ग्रन्थ तो उपलब्ध नही, परन्तु महाभारत, शान्तिपर्व के अनुसार उशना साख्यज्ञाता अवश्य था।

५. **वास्तुशास्त्र**—उशना वास्तुशास्त्रोपदेशक था। शिल्परत्न में ऐसा उल्लेख है। मत्स्यपुराण २५२।३ का भी यही अभिप्राय है।

६. **औशनस धनुर्वेद**—वीरमित्रोदय, लक्षणप्रकाश तथा योगयात्रा १२-१३ मे औशनस धनुर्वेद के वचन उद्धृत है। एक छोटा-सा औशनस धनुर्वेद प्रकाशित भी हो चुका है।

७. **धर्मशास्त्र**—गौतम-धर्मसूत्र, मस्करि-भाष्य मे उशना के धर्मशास्त्र के वचन स्थान स्थान पर उद्धृत है।

महामहोपाध्याप श्री पाण्डुरंग वामन काणे जी अपनी हिस्टरी आफ धर्म-शास्त्र, पृ० ११५ पर औशनस धर्मशास्त्र (अथवा सूत्र) का काल गौतम तथा वसिष्ठ धर्मसूत्रो और मनुस्मृति के पश्चात् का मानते है। उनके अनुसार गौतम धर्मसूत्र का काल ईसासे लगभग ५०० वर्ष पूर्व और मनुस्मृति का काल ईसापूर्व २०० से ईसा के २०० वर्ष तक का है। इस प्रकार वे औशनस धर्मसूत्र को ईसा के २०० वर्ष का उत्तरवर्ती मानते है।

काणे जी ने गौतम, वसिष्ठ और मनु का काल ही नही जाना, पुनः वे उशना के धर्मसूत्र के काल-विषय में क्या जान सकते है। उनकी मिथ्या कल्पना के कारण आर्य-विद्वान् अपने इतिहास को त्याग नही सकते। अनेक आर्य शास्त्रो मे लिखा इतिहास असत्य है और काणे जी लिखित कल्पित इतिहास सत्य है, ऐसा विश्वास अल्प-पठित लोग ही कर सकते हैं।

८ **ज्योतिष शास्त्र**—अद्भुतसागर पृ० २२० पर उद्धृत ऋषिपुत्र के वचन मे उशना का ज्योतिष-शास्त्र विषयक मत वर्णित है।

९. **मन्त्रद्रष्टा**—भार्गव उशना अनेक आथर्वण मन्त्रो तथा ऋ० ९।८७-८९ का द्रष्टा था।

योग—अष्टाङ्गसग्रह, उ०, पृष्ठ ३२० पर औशनस अगद का वर्णन है—

सुरालापावकी सोमा भोगवत्यमृतानतम् ।
आढकी किणिटी सोमराजी चौशनसो गदः ।।

प० भगवद्दत्तकृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, पृष्ठ ११५ पर वाग्भट के पूर्वलिखित वचन के साथ डल्हण द्वारा उद्धृत उशना के अढाई श्लोक लिखे गए है—

अजरुहालक्षणं उशनसा प्रोक्तम्—

कन्दः श्वेत. सपिडको भेदे चाञ्जनसन्निभः ।
गन्धलेपनपानैस्तु विषं जरयते नृणाम् ।।
दुष्टानां विपपीतानां ये चान्ये विपमोहिताः ।
विपं जरयते तेपां तस्मादजरुहा स्मृताः ।।
मूपिका लोमशा कृष्णा भवेत्साऽपि च तद्गुणा । इति।।७८।।

प० जी के अनुसार वाग्भट तथा डल्हण के पूर्वोद्धृत वचन औशनस अर्थशास्त्र के है। महान आचार्य उशना ने अर्थशास्त्र मे आयुर्वेद की सहायता ली।

२०. बृहस्पति

वंश— पर्व पृष्ठ ६० पर दी गई वशावलि से स्पष्ट है कि बृहस्पति अगिरा-पुत्र था। इस कारण उसे आङ्गिरस बृहस्पति कहते है। जैमिनीय ब्राह्मण १।२१३ के अनुसार प्रजापति-दुहिता उषा बृहस्पति की स्त्री थी। यथा—

प्रजापतिरुपसं स्वां दुहितरं बृहस्पतये प्रायच्छत् ।

अर्थात्—प्रजापति ने अपनी दुहिता उषा बृहस्पति के लिए दी।

ब्राह्मणग्रन्थो मे प्रजापति और उषा की आलङ्कारिक कथा भी वर्णित है। उसका इस ऐतिहासिक उषा से कोई सम्बन्ध नही।

आयुर्वेद-परम्परा का सुप्रसिद्ध भरद्वाज बृहस्पति का पुत्र था।

काल—देवासुर सग्रामो का काल अर्थात् त्रेता का आदि बृहस्पति का काल था। वह कौरव भीष्म के काल तक जीवित था।

स्थान—बृहस्पति हिमालय की उत्तरपूर्ववर्तिनी देवभूमि मे रहता था।

सुरगुरु—ताण्ड्य ब्राह्मण १६।१७।८ तथा बौधायन श्रौतसूत्र के अनुसा बृहस्पति देवो का पुरोहित था। जैमिनीय ब्राह्मण १।१२५ में लिखा है—

बृहस्पतिर्देवानां पुरोहित आसीद् उशना काव्योऽसुराणाम् ।

अर्थात्—बृहस्पति देवो का पुरोहित था तथा उशना काव्य असुरो का।

वेदवेदाङ्गवित्—ऋषियों को सम्पूर्ज-ज्ञान परम्पराक्रम से प्राप्त हुआ। इस

परम्परा मे बृहस्पति को वेदवेदाङ्गज्ञान प्राप्त हुआ। महाभारत, शान्तिपर्व २१२।३२ मे लिखा है—

वेदाङ्गानि बृहस्पतिः।

अर्थात्—बृहस्पति को वेदाङ्ग-ज्ञान प्राप्त हुआ।

महाभारत, शान्तिपर्व १९९।८ मे प्रजापति मनु तथा बृहस्पति का सवाद वर्णित है। उस सवाद मे बृहस्पति मनु से स्वय कहता है—

ऋक्सामसंघांश्च यजूंषि चाहम्
छन्दांसि नक्षत्रगतिं निरुक्तम्।
अधीत्य च व्याकरणं सकल्पम्
शिक्षां च भूतप्रकृतिं न वेद्मि॥

अर्थात्—सम्पूर्ण वेद तथा वेदाङ्गज्ञान होने पर भी मुझे भूतप्रकृति का ज्ञान नही।

वेदवेदाङ्गज्ञाता बृहस्पति का आयुर्वेद-ज्ञान भी अथाह था।

सिद्धहस्त-चिकित्सक—वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड ५०।९८ मे बृहस्पति के चिकित्सा-कौशल का सुन्दर वर्णन है—

तानार्तान्नष्टसंज्ञांश्च परासूंश्च बृहस्पतिः।
विद्याभिर्मन्त्रयुक्ताभिरोषधीभिश्चिकित्सति॥

अर्थात्—[देवासुर सग्रामो मे] उन आर्त, सज्ञाहीन मृत-देवो की चिकित्सा देवगुरु बृहस्पति मन्त्रयुक्त विद्याओ तथा ओषधियो से करता है।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि तब बृहस्पति मृतसजीवनी विद्या भी जान चुका था। बृहस्पति मन्त्र तथा ओषधि, दोनो प्रकार से चिकित्सा करता था। उसे चिकित्सा-विषयक मन्त्रयुक्त अनेक विद्याए ज्ञात थी।

टिप्पण—वर्तमान-युगीण वैज्ञानिक-ब्रुव आश्चर्य करेंगे कि एक ही व्यक्ति पौरोहित्य, मन्त्रित्व तथा भैषज्य-कर्म करता था। आज यदि किसी नेत्र-रोग विशेषज्ञ से उदररोग की चिकित्सा करवानी चाहे तो असम्भव है। दीर्घजीवी महर्षि ही विद्या के भिन्न-भिन्न अगो का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने का सामर्थ्य रखते थे।

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेद**—बृहस्पति आयुर्वेद-कर्त्ता था। काश्यपसहिता के उपोद्घात पृष्ठ २३, टिप्पणी सख्या १ मे हेमाद्रि-कृत लक्षणप्रकाश से उद्धृत शालिहोत्र-वचन का कुछ अश हमने पूर्व पृष्ठ ५९ पर उद्धृत किया है। इन श्लोको मे

आयुर्वेद-कर्त्ताओ के नाम उल्लिखित है। यथा—

वसिष्ठो वामदेवश्च च्यवनो भार्गवस्तथा [भार्गवस्तथा ?]।
विश्वामित्रो जमदग्निर्भारद्वाजश्च वीर्यवान्॥
असितो देवलश्चैव कौशिकश्च महाव्रत ।
सावर्णिर्गालवश्चैव मार्कण्डेयस्तु वीर्यवान्।
गौतमश्च ·· · भागश्च आगरूप (?) काश्यपस्तथा।
आत्रेयः शाण्डिलश्चैव तथा नारदपर्वतौ॥
काण्वगो नहुषश्चैव शालिहोत्रश्च वीर्यवान्।
अग्निवेशो मातलिश्च जतुकर्णः पराशरः॥
हारीत. क्षारपाणिश्च निमिश्च वदतां वरः।
औद्दालकिश्च भगवान् श्वेतकेतुर्भृगुस्तथा॥
जनकश्चैव राजर्षिस्तथैव हि वि नग्नजित्।
विश्वेदेवाः समरुतो भगवांश्च बृहस्पतिः॥
इन्द्रश्च देवराजश्च सर्वलोकचिकित्सकाः।
एते चान्ये च बहव ऋषय. संशितव्रताः॥
आयुर्वेदस्य कर्तारः सुस्नातं तु दिशन्तु ते॥ (प० १५६)

अर्थात्—यहा पर लगभग ३७ आयुर्वेद-कर्ताओ के नाम लिखे गए है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक ऋषि भी आयुर्वेद के कर्त्ता है। ये सर्वलोक-चिकित्सक थे। वे देवलोक, गन्धर्वलोक, नागलोक, तथा मर्त्यलोक आदि किसी एक लोक के निवासियो की चिकित्सा नही करते थे, प्रत्युत सर्वलोक-निवासियो के चिकित्सक थे।

उपरिलिखित उद्धरण के अनुसार निम्नलिखित ऋषि आयुर्वेद—कर्ता है—

१. वसिष्ठ	२. वामदेव	३. च्यवन
४. विश्वामित्र	५. जमदग्नि	६. भारद्वाज [भरद्वाज]
७. असित देवल	८. कौशिक	९. सावर्णि
१० गालव	११ मार्कण्डेय	१२. गौतम
१३. भाग ?	१४. आगरूप ?	१५. काश्यप
१६ आत्रेय	१७. शाण्डिल	१८ नारद
१९. पर्वत	२०. काण्वग ?	२१ नहुष
~ . शालिहोत्र	२३ अग्निवेश	२४ मातलि
२५. जतुकर्ण	२६ पराशर	२७. हारीत

२८. क्षारपाणि　　　　२९. निमि　　　　३० औद्दालकि श्वेतकेतु
३१. भृगु　　　　३२. जनक　　　　३३. नग्नजित्
३४. विश्वेदेव　　३५. मरुद्गण　　३६. बृहस्पति　　३७. देवराज इन्द्र

इनमें से अनेक ऋषियो के आयुर्वेद-विषयक वचन अथवा योग उपलब्ध है। हम यथाक्रम उनका वर्णन करते आ रहे है। फलत. यह नामावलि कल्पित नही। इसमें ३४ तथा ३५ सख्या के अन्तर्गत अनेक आचार्य है।

२. व्याकरण—बृहस्पति व्याकरण का द्वितीय-प्रवक्ता था। उसका व्याकरण-विषयक ग्रन्थ था, परन्तु आजकल वह उपलब्ध नही।[1]

३. लोकतन्त्र—महाभारत, शान्तिपर्व ३४४।४६ के अनुसार बृहस्पति ने सप्तर्षि-कृत चित्रशिखण्डि-शास्त्र के आधार पर लोकतन्त्र-विषयक शास्त्र रचा। राजा उपरिचरवसु ने बृहस्पति से चित्रशिखण्डि शास्त्र का अध्ययन किया। महाभारत शान्तिपर्व ३४४।१।३ मे लिखा है—

ततोऽतीते महाकल्पे उत्पन्नेऽङ्गिरस. सुते।
बभूवुर्निर्वृता देवा जाते देवपुरोहिते ॥
बृहद्ब्रह्म महच्चेति शब्दाः पर्यायवाचकाः।
एभिः समन्वितो राजन्गुणैर्विद्वान्बृहस्पतिः ॥
तस्य शिष्यो बभूवाग्र्यो राजोपरिचरो वसुः।
अधीतवांस्तदा शास्त्रं सम्यक्चित्रशिखण्डिजम् ॥

अर्थात्—महाकल्प व्यतीत होने पर आंगिरस, देवपुरोहित, महागुणी, विद्वान् बृहस्पति हुआ। उसका शिष्य राजा उपरिचर वसु था। उसने बृहस्पति से चित्र-शिखण्डि शास्त्र पढा।

४. बार्हस्पत्य-अर्थशास्त्र—देवगुरु बृहस्पति अर्थशास्त्र का परम पण्डित था। युगो की आयु का ह्रास जान, उसने इन्द्रकृत बाहुदन्तक अर्थशास्त्र का तीन सहस्र अध्यायो मे सक्षेप किया। महाभारत, कामन्दकीय नीतिसार, याज्ञवल्क्य स्मृति की बालक्रीडा टीका तथा कौटल्य अर्थशास्त्र में बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र के अनेक वचन तथा मत उद्धृत है।

अध्यापक अल्तेकर जी ने लिखा है कि विष्णुगुप्त से लगभग ३०० वर्ष पूर्व किसी ने बृहस्पति के नाम से यह अर्थशास्त्र रच दिया। यह कथन अज्ञान-मात्र है। आर्य वाङ्मय के अनुसार यह ग्रन्थ देवगुरु बृहस्पति का था।

---

१. इस विषय के विस्तृत विवरण के लिए देखो पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक कृत संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, पृ० ४६।

विषहर योग—बृहस्पति के ये योग अष्टाङ्ग सग्रह, सूत्र अ० ८ मे उद्धृत है—अथ योगाः प्रवक्ष्यन्ते बृहस्पतिकृताः शिवा ।

५. वास्तुशास्त्र —अष्टादश-वास्तुशास्त्रोपदेशको मे बृहस्पति की गणना भी की गई है। काश्मीरक भट्टोत्पल ने बृहस्पति के वास्तुशास्त्र के वचन उद्धृत किए है।

६. इतिहास-पुराण-प्रवक्ता—वायुपुराण १०३।५९ में बृहस्पति को इतिहास-पुराण-प्रवक्ता कहा गया है।

७. धर्मशास्त्र—धर्मशास्त्र के प्रबन्धो म बृहस्पतिकृत धर्मशास्त्र के अनेक वचन अब भी उपलब्ध होते है। ऐसे लगभग २३०० श्लोकों का एक संग्रह बडोदा से प्रकाशित हो चुका है।

काणे जी का विचार है कि धर्मशास्त्रकार बृहस्पति तथा अर्थशास्त्रकार बृहस्पति सभवत दो भिन्न व्यक्ति थे। (देखो, हिस्टरी आफ धर्मशास्त्र पृ० १२५, सन् १९३०) यह विचार कल्पनामात्र है। पुरातन वाङ्मय मे इस विषय का एक भी प्रमाण उपलब्ध नही होता।

काणे-निर्दिष्ट बृहस्पति-स्मृति काल--पुन पृ० २१० पर काणे जी लिखते है--बृहस्पति अवश्य ही ईसा सन् २००-४०० के मध्य में हुआ था।

रङ्गास्वामी-निर्दिष्ट काल—बृहस्पति स्मृति के वचनों के सकलन कर्ता[1] श्री रङ्गास्वामी जी का मत है—

All the evidence . tends to place most of the extant fragments ot Brihaspati . . in the second century B. C. (Introduction p. 185, article 186)

अर्थात्—बृहस्पति स्मृति के अधिकांश उपलब्ध वचन ईसा पूर्व दूसरी शती के है।

ये दोनों लेखक भारतीय इतिहास के यथार्थ ज्ञान से शून्य है। बृहस्पति का धर्मशास्त्र विक्रम से ३००० वर्ष से पूर्व का है। विक्रम से २८०० वर्ष पूर्व का विद्वान् मुनि कात्यायन बृहस्पति स्मृति से परिचित था।

८. गजशास्त्र—बार्हस्पत्य गजशास्त्र का विस्तृत वर्णन प० भगवद्दत्तकृत वैज्ञानिक वाङ्मय का इतिहास में देखे।

९. मन्त्रद्रष्टा—ऋग्वेद १०।७१ का ऋषि बृहस्पति है।

---

1. बृहस्पति का एक वचन मल्लिनाथकृत रघुवंश टीका ११।२१ में उद्धृत है। रङ्गास्वामी जी ने यह वचन संग्रह मे नहीं रखा।

२१. सनत्कुमार

वंश—महाभारत, शान्तिपर्व ३४९।७०,७१, हरिवंश १।१७।१२ तथा वायुपुराण १०।१०६ मे सनत्कुमार को ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा है। इसे अग्नि-पुत्र भी कहते हैं। वाल्मीकीय रामायण,पश्चिमोत्तर पाठ,बालकाण्ड, अध्याय ३४ मे कुमार की उत्पत्ति का विशद वर्णन है। तदनुसार शैलेन्द्र की ज्येष्ठ दुहिता गङ्गा थी। गङ्गा तथा अग्नि से कुमार की उत्पत्ति हुई। प्रतीत होता है सनत्कुमार ब्रह्मा का वरा हुआ अर्थात मानसपुत्र था। पार्वती को कुमार अतिप्रिय था।

नाम-व्युत्पत्ति—सनत्कुमार नाम से विशेष अभिप्राय है। हरिवंशपुराण १।१७।१७ में सनत्कुमार अपने नाम का अभिप्राय स्वयं स्पष्ट करता है—

यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम् ।
तस्मात्सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम् ॥

अर्थात्—जैसा उत्पन्न हुआ वैसा ही मै हूं। मुझे कुमार जानो। इस कारण मेरा सनत्=सदा कुमार इति सनत्कुमार नाम रखा गया है।

भृगु आदि ब्रह्मा के मानसपुत्र प्रजाधर्मा कहे गए हैं। उनका वंशविस्तार हम यथास्थान लिख चुके हैं। सनत्कुमार योगधर्मा था। वह प्रजोत्पादन से उपरत रहा। वायुपुराण १०।१०७,१०८ मे उसे ऊर्ध्वरेता कहा है।

अपरनाम—हेमचन्द्रकृत अभिधानचिन्तामणि २।१२२,१२३ मे निम्नलिखित नाम उल्लिखित है—

स्कन्द, स्वामी, महासेन, सेनानी, षाण्मातुर, कार्तिकेय, कुमार, गुह, विशाख इत्यादि।

इस ग्रन्थ की स्वोपज्ञ टीका मे उद्धृत शेषकोष के अनुसार स्कन्द का अपर-नाम करवीरक है। सुश्रुत का एक सहपाठी करवीरक था। उस करवीरक का सनत्कुमार से ऐक्य अभी चिन्त्य है।

गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय की भूल—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग प्रथम, पृष्ठ १११ पर कार्तिकेय, तथा भाग द्वितीय, पृ० २९१ पर सनत्कुमार नामक दो भिन्न आचार्यो का वर्णन किया है। यह युक्त नही।

आर्य वाङ्मय मे सनत्कुमार ही स्कन्द तथा कार्तिकेय आदि नामो से स्मृत है। छान्दोग्य उपनिषद् ७।२६ मे सनत्कुमार का अपरनाम स्कन्द है—

मृदितकषायं तमसस्पारं दर्शयति भगवान् सनत्कुमारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते।

अर्थात्—भगवान् सनत्कुमार, विधूतकल्मष व्यक्ति को अन्धकार से पार अर्थात् प्रकाश का दर्शन करा देते है। इन्ही भगवान् सनत्कुमार को [पुरातन आचार्य] स्कन्द[1] कहते है।

हरिवंश १।३।८३ मे सनत्कुमार को स्कन्द तथा कार्त्तिकेय, दोनो नामोसे स्मरण किया है। यथा—

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्ट पादेन तेजसा॥

अर्थात्—सनत्कुमार कृत्तिकाओ का दूध पीने मे कार्त्तिकेय कहाता है।[2] वह स्कन्द अथवा सनत्कुमार अग्नि के तेज के चतुर्थांश से उत्पन्न हुआ।

साराश यह कि देव-सेनापति, कार्तिकेय सनत्कुमार है।

विशेषण—महाभारत, शान्तिपर्व ३८६।७० मे सनत्कुमार को स्वयमागतविज्ञान, योगविद्, सांख्यशास्त्रप्रवर्तक, तथा मोक्षधर्मा कहा है। पूर्व-पृष्ठ पर लिख चुके है कि सनत्कुमार ऊर्ध्वरेता था।

वास्तव मे सनत्कुमार को सम्पूर्ण ज्ञान उद्भासित हो गया था। उसने निवृत्तिमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षमार्ग का उपदेश किया।

देवसेना—इन्द्र-कन्या देवसेना कुमार की भार्या थी।

काल—सनत्कुमार दीर्घजीवी था। वह दवयुग के आरम्भ से चिरकाल तक जीवित रहा।

स्थान—वायुपुराण ७७।६३ के अनुसार सनत्कुमार का तीर्थ कुरुक्षेत्र था। यथा—

सर्वतश्च कुरुक्षेत्रं सुतीर्थं च विशेषतः।
पुण्यं सनत्कुमारस्य योगेशस्य महात्मनः॥

पाञ्चरात्रोपनिषदान्तर्गत, सनत्कुमारसहिता के अनुसार सनत्कुमार के आश्रम का नाम सिद्धाश्रम था।

---

१. स्कन्द नाम विशेष कारण से हुआ। वाल्मीकीय रामायण, पश्चिमोत्तर, पाठ, बालकाण्ड ३४।२८ में लिखा है—

कृत्तिकाः स्कन्दयामासुस्तमादित्यसमप्रभम्।
स्कन्द इत्येव तं देवाः प्रोचुरमितौजसम्॥

२. वाल्मीकीय रामायण, पश्चिमोत्तर पाठ, बालकाण्ड ३४।२५,२६ में यह घटना अत्यन्त स्पष्ट रूप से लिखी गई है—

तदा क्षीरप्रदानार्थं कृत्तिकाः सन्नयोजयन्।
ततस्ता देवता ऊचुः कार्त्तिकेय इति प्रभुः॥

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—सनत्कुमार के आयुर्वेद-विषयक तीन हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

(क) सनत्कुमारसंहिता—मद्रास सरकार के पुस्तकभण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि, भाग २३, सख्या १३१०२ के अन्तर्गत पाञ्चरात्रोपनिषद् पर सनत्कुमारसहिता के ६४वे अध्याय का उल्लेख है—

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं ··विष्वक्सेनं तमाश्रये।
सनत्कुमारं योगीन्द्रं सिद्धाश्रमनिवासिनम्।
नारदः प्रणिपत्याथ वचनं चेदमब्रवीत्॥
भगवन् योगिनां श्रेष्ठ सर्वतन्त्रविशारद।
सर्वरोगहरास्त्वत्तः कल्पाश्च विविधाः श्रुताः॥
इदानीमक्षिरोगस्य शान्तिं ब्रूहि तपोधन।
इत्युक्तस्स मुनिश्रेष्ठस्सिद्धार्थस्सर्वमन्त्रवित्॥

सनत्कुमारः—

शृणु नारद धर्मज्ञ कल्पं नारायणाख्यकम्।
अक्षिरोगहरं पुण्यमायुष्यं पापनाशनम्॥
. . . .

काशिपुर्यां पुरा ब्रह्मन् आसीद्राजा सुधार्मिकः।
पारिभद्र इति ख्यातः तस्य पुत्रो बृहद्रथः॥
भगवन् मम पुत्रस्य अक्षिरोगो भयावहः।
तस्य शान्तिर्भवेत्केन तत्त्वं ब्रूहि महामुने॥
मध्वक्तैः तिन्त्रिणीपुष्पैः चक्रगायत्रिया हुनेत्।
खर्जूरं[1] नारिकेलं च द्राक्षां धात्रीं हरीतकीम्॥

अर्थात्—सिद्धाश्रमवासी, योगीन्द्र सनत्कुमार को नारद प्रणाम करके बोला—हे सर्वशास्त्रनिष्णात, भगवन्, आप से सब रोगो को दूर करने वाले अनेक कल्प सुने हैं। हे तपोधन, अब अक्षिरोगो की शान्ति का उपाय बताओ।

स० कु० बोला, हे धर्मज्ञ नारद, अक्षिरोगहर, पुण्य, दीर्घायु देने वाला, नारायण नामक कल्प सुनो—

पारिभद्र नामक काशिराज का पुत्र बृहद्रथ भयकर अक्षिरोग से पीडित था। उसे मैंने अक्षिरोगहर-योग बताया था।

१, मातुलङ्गम् इति पाठान्तरम्।

अष्टाग सग्रह, उत्तरस्थान, अध्याय १६, पृ० १२३ पर किसी प्राचीन सहिता के आधार पर उद्धृत श्लोक मे ऐसे छः आचार्यो[1] के नाम है जिनके नित्यस्मरण मे नेत्र-रोग भय दूर हो जाता है। इनमे स्कद को भी स्मरण किया गया है। प्रतीत होता है सनत्कुमार अक्षिरोग विशेषज्ञ था।

सनत्कुमार-सहिता के हस्तलेख में भी अक्षिरोगो का विस्तृत वर्णन है। सनत्कुमार नारद को उपदेश-रूप मे यह विषय समझा रहे है। इस प्रकरण से विदित होता है कि सनत्कुमार अक्षिरोगो के सिद्धहस्त चिकित्सक थे, तथा अन्य अनेक रोगो का भी पूर्ण ज्ञान रखते थे। सनत्कुमारप्रोक्त, अन्य-रोगविषयक अनेक कल्प भी थे, परन्तु अब वे अनुपलब्ध है।

(ख) वाहट ग्रन्थ—मद्रास-पुस्तकभण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि, सख्या १३१७६-७ अन्तर्गत कार्तिकेय रचित वाहट ग्रन्थ का उल्लेख है। यथा—

> अस्य श्रीपार्वतीयस्य प्रियसूनुर्गुणोन्नतः।
> षन्मुखे रचिते चैव वाहटग्रन्थमुत्तमम् ॥
> वैद्यानां यशसेऽर्थाय व्याधितानां हिताय च।
> धत्ते धन्वन्तरिप्रोक्तं तमस्सूर्योदये यथा ॥

इति—श्रीगौरीपुत्रकार्त्तिकेयविरचिते वाहटग्रन्थे निदानयोगो नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥

१३१७७ सख्या वाले हस्तलेख में निम्नलिखित अध्याय है—

१. निदानयोगः	२. कषाययोग	३. पथ्यापथ्य योगः
४. तैलयोगः	५. घृतयोगः	६. लेह्यवर्ग समाप्तिः
७. चूर्णवटकयोगः	८. औषधयोगः	९. रसयोगः

(ग) अनुभोगकल्पक—तञ्जोर-भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि, पृ० ७३७०, सख्या ११००५ के अन्तर्गत सनत्कुमार रचित अनुभोगकल्पक नामक आयुर्वेदीय ग्रन्थ का उल्लेख है। यह ग्रन्थ जडी, बूटी विषयक है।

२. वास्तुशास्त्र—मत्स्यपुराण मे उल्लिखित अष्टादश वास्तुशास्त्रोपदेशको मे सनत्कुमार अन्यतम है। शिल्परत्न मे कुमार को षडानन नाम से स्मरण किया है।

३. छन्दः शास्त्र—यादवप्रकाशकृत, पिङ्गलनागच्छन्दभाष्य के अन्त में

---

१. सुषव्यं सुकन्यां च स्कन्दं च्यवनमश्विनौ।
षडेतान् यः स्मरेन्नित्यं तस्य चक्षुर्न हीयते।

लिखा है कि सनत्कुमार छन्द शास्त्रज्ञ था—

छन्दः शास्त्रमिदं पुरा त्रिनयनाल्लेभे गुहेनादित—
स्तस्मात्प्राप्य सनत्कुमारकमुनिस्तस्मात्सुराणां पतिः।

४. **सांख्यशास्त्र**—सनत्कुमार का सांख्याविषयक ग्रन्थ तो अभी ज्ञात नहीं हो सका, परन्तु छान्दोग्योपनिषद् अध्याय सात में सनत्कुमार नारद के लिए सांख्यानुसारी आत्मज्ञान का उपदेश करते हैं।

५ **सिद्धान्त ग्रन्थ**—योगि-याज्ञवल्क्य नामक प्राचीन ग्रन्थ में लिखा है—

हैरण्यगर्भैः कपिलैरपान्तरतमैस्तथा ।
सानत्कुमारैर्ब्रह्मिष्ठैस्तथा पाशुपतैरपि ॥
पाञ्चरात्रैरपीत्येतैः सिद्धान्तैश्चैव सप्तभिः।

अर्थात्—सात सिद्धान्तों में एक सिद्धान्त सनत्कुमार का था।

पूर्वलिखित संहिता उसी का अङ्ग प्रतीत होती है।

२२. नारद

वंश—ब्रह्मा के मानसपुत्रों में नारद अन्यतम है। मत्स्यपुराण ३।६-८ के अनुसार वह दश मानसपुत्रों में कनिष्ठतम था।

काल—कृतयुग के अन्त से पाण्डव युधिष्ठिर के काल तक वह जीवित था। वस्तुत वह अतिदीर्घजीवी था।

स्थान—नारद का निवास स्थान यद्यपि देवलोक था, तथापि वह सब लोकों में भ्रमण किया करता था।

अपरनाम—हेमचन्द्रकृत अभिधानचिन्तामणि ३।५१३ में नारद के तीन सुप्रसिद्ध नामों का उल्लेख है—

नारदस्तु देवब्रह्मा पिशुनः कलिकारकः।

अर्थात्—नारद को **देवब्रह्मा**, **पिशुन** तथा **कलिकारक** कहते हैं।

विशेषण—वाल्मीकीय रामायण १।६ में नारद को **त्रिलोकज्ञ** कहा है। प्रतीत होता है तीनों लोकों में भ्रमण करने के कारण वह उनका पूर्ण ज्ञान रखता था। पुराणों में उसे **देवर्षि** कहा है।

गुरु

१. **सनत्कुमार**—नारद ने सनत्कुमार से रोग-विषयक अनेक कल्प सुने।

छान्दोग्य उपनिषद्, अ० सात के अनुसार नारद ने सनत्कुमार से अध्यात्म ज्ञान प्राप्त किया।

२. **शिव**—भावप्रकाश २।२ के अनुसार नारद ने शिव से अर्शोहर योग सीखा—

प्रणम्य शङ्करं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरम् ।
जीवितारोग्यमन्विच्छन्नारदोऽपृच्छदीश्वरम् ॥
सुखोपायेन हे नाथ शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना ।
चिकित्सामर्शसां नृणां कारुण्याद्वक्तुमर्हसि ॥

अर्थात्– हे शिव कृपा करके शस्त्र, क्षार तथा अग्नि-चिकित्सा के अतिरिक्त अर्श की कोई अन्य चिकित्सा बताओ ।

३ वसिष्ठ—महाभारत, शान्तिपर्व ३१४।४५ के अनुसार नारद ने वसिष्ठ से आत्मज्ञान प्राप्त किया ।

४. ब्रह्मा—गणक तरंगिणी पृष्ठ १ पर लिखा है कि ब्रह्मा ने नारद को ज्योतिर्विद्या सिखाई ।

अनेक विद्याज्ञाता –नारद

अटनशील नारद यत्र-तत्र विद्या सचय करता था, अत उसने अनेक विद्याए सीखी थी । छान्दोग्य उपनिषद्, अध्याय सात में नारद सनत्कुमार से कहता है, हे भगवन् अध्ययनार्थ आया हूँ । सनत्कुमार उत्तर देता है—जो कुछ जानते हो वह बता दो। उससे आगे की बात कहूगा । इस पर नारद कहता है—

स होवाच, ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि ।

अर्थात् –हे भगवन् मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहासपुराण, पित्र्य, राशि, दैव, निधि, वाकोवाक्य, एकायन, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्प देव जनविद्या पढी हुई है ।

आयुर्वेद के प्रसग में पूर्व विद्याओ मे से भूतविद्या तथा सर्पविद्या विशेष ध्यान देने योग्य है । अष्टाङ्ग आयुर्वेद मे भूतविद्या एक अङ्ग है ।

सभापर्व में नारद प्रशंसा—महाभारत, सभापर्व अध्याय ५ में नारद के अनुपम गुण स्मृत हैं । महाभारत के पूना सस्करण के सभापर्व के सम्पादक अमरीका देशवासी पक्षपाती फ्रैङ्कलिन ईजर्टन ने सम्पूर्ण सम्पादन-नियमो का उल्लघन करके इन श्लोको को प्रक्षिप्त माना है । पूना-सस्करण पर यह महान् लाञ्छन है । अध्याय १५।१ मे कथं प्रहिणुयां भीमं प्रसग सम्पादक ने अङ्गीकार किया है । परन्तु गत अध्यायो मे भीम के प्रेषण का प्रसग नही

रखा। अतः ऐसा निश्चय है कि सस्करण भ्रष्ट है, तथा प्रकरण खण्डित होता है। ऐसा ही खण्डित प्रकरण ३८।४ मे भी है।

ग्रन्थ

१ **आयुर्वेद**—पूर्व पृष्ठ १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र-वचन मे नारद को सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता माना है।

इण्डिया आफिस के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूची, संख्या २७१५ के अन्तर्गत नारद के आयुर्वेदीय धातुलक्षण ग्रन्थ का उल्लेख है। यह ग्रन्थ त्रिदोष तथा नाडीज्ञान विषयक है।

२. **नारदस्मृति**—नारद का यह ग्रन्थ आज भी दो पाठो मे उपलब्ध है। कुछ पाश्चात्यो के विचारानुसार नारद का स्मृति ग्रन्थ ईसा की तीसरी चौथी शती का है। उनके उच्छिष्टभोजी कतिपय एतद्देशीय लेखक भी ऐसा ही मानते है। यह सर्वथा पक्षपातयुक्त भ्रान्त मत है। नारद का ग्रन्थ भारतयुद्ध से पूर्वकाल का है। नारद स्मृति पर असहाय अपरनाम विष्णुगुप्त चाणक्य के भाष्य का भाग अब भी उपलब्ध है। Meyer के अनुसार ना० स्मृ० ईसा से अनेक शती पूर्व की है।

३. **वास्तुशास्त्र**—मत्स्यपुराण के अनुसार अठारह वास्तुशास्त्रोपदेशको मे नारद एक था। मानसार नामक शिल्प-शास्त्र के ग्रन्थ में लिखा है—

> गङ्गाशिरः-कमलभू-कमलेक्षणेन्द्र-
> गीर्वाण-नारद-मुखैरखिलैर्मुनीन्द्रैः।
> प्रोक्तं समस्ततरवस्त्वपि वास्तुशास्त्रं
> तन्मानसार-ऋषिणापि हि लक्ष्यते स्म ॥ अ० १।२॥

हरिदास मित्र का मत—अभी अभी सन् १९५० में श्री हरिदास मित्रजी का ग्रन्थ—Contribution to a Bibliography of Indian art and aesthetics प्रकाशित हुआ है। उसम प्राचीन आचार्यों के विषय में लिखा है—

As in the cases of all other branches of Indian learning, the first acaryas who promulgated the Vastu-shastras.........were all figures of hoary antiquity;... ......; some of them are mythical, some others are even suspected, to be imaginary or fictitious names, some bear no proper names, a few are probably historical characters. (पृ० ३, ४)

अर्थात्—प्राचीन विद्याओ के अनेक आचार्य कल्पित है। उनका अस्तित्व नही था।

वचन नही देखा। अन्यथा वे ऐसा न लिखते। वस्तुतः बहुधा पाश्चात्य मतानुगामी काणे-सदृश लेखको को भय रहता है कि नारद आदि के ग्रन्थ अधिक पुराने सिद्ध न हो जाए।

९. नारदकृत पाचरात्र की अनेक सहिताए इस समय मुद्रित हो चुकी है।

१०. नारद शिक्षा—यह ग्रन्थ मुद्रित हो चुका है।

११. हस्तिशास्त्र—मातङ्गलीला मे नारद का हस्तिशास्त्र वर्णित है।

१२ मन्त्रद्रष्टा—ऋग्वेद ९।१०४, १०५ नारददृष्ट सूक्त है।

योग—अष्टागसग्रह, उत्तरस्थान, पृष्ठ ४२३ पर नारद के लशुनासव का उल्लेख है। यथा—

सुखाद्यानां विशेषेण प्रयोज्यो लशुनासव.।
नारदेनोद्धवस्यैष वातभग्नस्य कल्पितः॥

अर्थात्—नारद ने वातरोग पीडित उद्धव को लशुनासव सेवन करवाया।

कौटल्यकृत अर्थशास्त्र मे वातव्याधि नाम से जिस अर्थशास्त्र के कर्ता के मत उद्धृत है, टीकाकारो के अनुसार वह वातव्याधि आचार्य वृष्णि-मन्त्रि उद्धव था। सुप्रसिद्ध है कि नारद की श्रीकृष्ण से गहरी मैत्री थी। इस कारण वह उद्धव का भी मित्र था। अष्टाङ्ग सग्रह के इस प्रमाण से उद्धव के वात-व्याधि नाम की पुष्टि होती है। योरुप और अमरीका के कथित-सस्कृतज्ञ पिशुन तथा वातव्याधि आदि के अस्तित्व मे ही सन्देह करते है। उनके अज्ञान पर उन को वधाई है।

गिरिन्द्रनाथ ने लक्ष्मीविलासरस, तथा महालक्ष्मीविलास रस नामक दो नारदीय योग लिखे है।

२३. धन्वन्तरि प्रथम (देव युग)

वंश—महाभारत, पुराण तथा आयुर्वेदीय सहिताओ मे धन्वन्तरि की उत्पत्ति समानरूप से वर्णित है। वाल्मीकीय रामायण पश्चिमोत्तर पाठ, बाल-काण्ड अध्याय ४१ मे लिखा है—

क्षीरोदसागरं सर्वे मथ्नीमः सहिता वयम्।
नानौषधीः समाहृत्य प्रक्षिप्य च ततस्ततः॥१८॥
यत्तत्रोत्पस्यते सारं तत् पास्यामस्ततो वयम्॥१९॥
तस्मादेतत् समुद्भूतममृतं चाप्यनन्तरम्।
अमृतानन्तरं चापि धन्वन्तरिरजायत॥२९॥
वैद्यराडमृतस्यैव बिभ्रत् पूर्णं कमण्डलुम्।

अर्थात्—हम [देवासुर] सब इकट्ठे क्षीरसागर का मन्थन करेगे। नाना

ओषधिया इकट्ठी करके उसमे डालेगे। तदनु उसका जो सार उत्पन्न होगा वह हम पियेगे। तत्पश्चात् यह अमृत उत्पन्न हुआ। अमृत के पश्चात् धन्वन्तरि उत्पन्न हुआ। वैद्यराज [धन्वन्तरि] अमृत का भरा हुआ कमण्डलु धारण किए हुए था।

वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड, ४।१८-२० में भी धन्वन्तरि की उत्पत्ति का वर्णन है—

ततो निश्चित्य मथनं योक्त्रं कृत्वा च वासुकिम्।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुरमितौजस ॥
अथ वर्षसहस्रेण आयुर्वेदमयः पुमान्।
उदतिष्ठत्सुधर्मात्मा सदण्ड' सकमण्डलु ॥

अर्थात्—तब मन्थन का निश्चय करके वासुकि को नेति तथा मन्दर[1] को मथानी बनाकर, अमित तेज वाले (देव-असुरो ने) मन्थन किया। तदनु वर्ष सहस्र मे सुधर्मात्मा, आयुर्वेदमय पुरुष (धन्वन्तरि) दण्ड तथा कमण्डलु सहित उठा।

महाभारत आदिपर्व अध्याय १८ का वर्णन भी उपरिलिखित वर्णन से साम्य रखता है—

ततो नानाविधास्तत्र सुस्रुवु. सागराम्भसि।
महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधिरसाः ॥३८॥
तेपाममृतवीर्याणां रसानां पयसैव च।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनस्य च निःस्रवात् ॥३९॥
धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत्।
श्वेतं कमण्डलु' बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ॥५३॥

अर्थात्—तब [उस आग से] नानाविध, महावृक्षो के स्राव तथा विविध ओषधि-रस समुद्र के जल में बह चले। उन अमृतवीर्य रसो के, तथा सुवर्ण के स्राव से देवता अमर हो गए। तब अमृत-युक्त श्वेन कमण्डलु को धारण किए शरीरधारी देव धन्वन्तरि उठे।

वायुपुराण ९२।९ मे लिखा है कि धन्वन्तरि समुद्र के प्रान्त भाग में उत्पन्न हुआ। यथा—

---

१. वायुपुराण ३०।३३ मे लिखा है कि मेरु की पत्नी धरणी ने मन्दर नामक पुत्र को जन्म दिया। संभव है मेरु तथा मंदर दोनो पिता-पुत्रों ने अमृतमंथन मे भाग लिया हो। परन्तु इस श्लोक मे इतिहास है अथवा अलंकार, यह चिन्त्य है।

धन्वन्तरे' संभवोऽयं श्रूयतामिह वै द्विजाः ।
स संभूत' समुद्रान्ते मथ्यमानेऽमृते पुरा ।

अर्थात्—हे ब्राह्मणो धन्वन्तरि का यह जन्म [दिवोदास नाम से] सुनो। पूर्वकाल मे अमृत-मन्थन के समय वह समुद्र-निकटवर्तिनी भूमि में उत्पन्न हुआ।

हरिवंश पुराण का वर्णन भी इसी पूर्वलिखित वर्णन से सादृश्य रखता है—

जातः स हि समुद्रात् मथ्यमाने पुरामृते ।
उत्पन्नः कलशात्पूर्वं[1] सर्वतश्च श्रिया वृतः ॥

अर्थात्—पूर्वकाल मे अमृत मन्थन के समय, कलश-नामक समुद्र-भाग से धन्वन्तरि जन्मा।

इन प्रमाणो से प्रतीत होता है कि क्षीरोदसागर की निकटवर्तिनी अमृतालयनाम्नी भूमि मे अमृत-मन्थन के समय धन्वन्तरि वैद्यराज के रूप में प्रकट हुआ। इस विषय की अधिक खोज अपेक्षित है।

काल—धन्वन्तरि प्रथम का जन्म अमृतोत्पत्ति के समय हुआ। अमृतमन्थन के काल से त्रेता के मध्य तक वह अवश्य जीवित रहा।

धन्वन्तरि शब्द की व्युत्पत्ति—सुश्रुत टीकाकार डल्हण धन्वन्तरि शब्द की निम्नलिखित व्युत्पत्ति करता है—

धनुः शल्यशास्त्रं, तस्य अन्तं पारं, इयर्ति गच्छतीति धन्वन्तरिः । सूत्र० १।३॥

अर्थात्—शल्यशास्त्र पारगत को धन्वन्तरि कहते है।

इस व्युत्पत्ति के कारण उत्तरकाल मे शल्यतन्त्रज्ञो के लिए धन्वन्तरि शब्द का प्रयोग होने लगा।

गुरु

१. **भास्कर**—धन्वन्तरि ने चिकित्सा विषयक ज्ञान भास्कर से प्राप्त किया। मत्स्य २५१।४ के अनुसार अमृतमन्थन मे उपलब्ध प्राणियो मे से धन्वन्तरि को भास्कर ने ग्रहण किया। यथा—

गजेन्द्रं च सहस्राक्षो हयरत्नं च भास्करः ॥३॥
धन्वन्तरिं च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम् ।४।

२. **इन्द्र**—धन्वन्तरि ने पूर्वजन्म मे इन्द्र से भी आयुर्वेद सीखा। भावप्रकाश १।७२ मे लिखा है—

---

१. महाभारत, आदिपर्व १७।१२ में कलशोदधि का वर्णन है।

अधीत्य चायुषो वेदमिन्द्राद्धन्वन्तरिः पुरा ।
आगत्य पृथिवीं काश्यां जातो बाहुजवेश्मनि ॥

आयुर्वेद वेत्ता तथा व्याधिघातक—पृ० ९१, ९२ पर उद्धृत ब्रह्मवैवर्त-पुराण के श्लोको से स्पष्ट है कि भास्कर-शिष्य चिकित्सा मे प्रवीण थे। धन्वन्तरि भी चिकित्सा-विशेषज्ञ था। चिकित्सा-विषयक गूढ-रहस्यो का ज्ञान होने से उसकी गणना व्याधिघातको मे की गई है। डाक्टर गङ्गानाथ झा एम० ए० ने अपने लेख[१] मे किसी प्राचीन पुस्तक का वचन उद्धृत किया है। उसमें छ आचार्यो को व्याधि-नाशक कहा है—

धन्वन्तरिर्दिवोदासः काशिराजस्तथाऽश्विनौ।
नकुलः सहदेवश्च पडेते व्याधिघातकाः ॥

अर्थात —१. धन्वन्तरि २. दिवोदास ३. काशिराज
४. अश्विद्वय ५. नकुल . ६. सहदेव

ये ६ व्याधि के घातक अर्थात् रोग दूर करने वाले आचार्य हैं।

यह निश्चय है कि चिकित्सा-विपयक ग्रन्थ पृथक् लिखे गए, अत धन्वन्तरि की गणना रोग दूर करने वाले आचार्यों मे की गई है।

नामपर्याय तथा विशेषण

१. आदिदेव—धन्वन्तरि द्वितीय सुश्रुत, सूत्रस्थान १।१९ म धन्वन्तरि प्रथम को आदिदेव कहता है—

अयं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम् ।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम् ॥

अर्थात—आदि काल मे देव, देवताओ की जरा, रोग तथा मृत्यु को दूर करने वाला मैं ही धन्वन्तरि हू। अन्य अङ्गो से युक्त शल्याङ्ग का पुनः उपदेश करने के लिए पृथ्वी पर आया हू।

इससे स्पष्ट है कि धन्वन्तरि का देवो से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

२. अमरवर—सुश्रुत, सूत्रस्थान १।३ मे धन्वन्तरि के लिए अमरवर पद का प्रयोग हुआ है।

३. अमृतयोनि—सुश्रुत सहिता, पृ० ३६ पर डल्हण ने अपनी टीका मे धन्वन्तरि के लिए अमृतयोनि विशेपण दिया है।

४. अब्ज—पुराणों मे धन्वन्तरि का एक विशेषण अब्ज भी है।

---

१. Dr. S. Krishnaswami Aiyangar Commemoration Volume, पृ० २८४ पर डा० गंगानाथ झा का "Some Rare Works on Vaidyaka" नामक लेख है।

विशेष घटना

अमृतोत्पत्ति तथा धन्वन्तरि प्रथम—अमृत-मन्थन का वर्णन चतुर्थ अध्याय मे हो चुका। अमृत-मन्थन के लिए ओषधि-सस्थापन का कार्य अश्विद्वय ने किया। मथित रस मे से अमृत निकालने का श्रेय धन्वन्तरि को है। उसी की अलौकिक प्रतिभा से देवो को अमृत प्राप्ति हो सकी। सुश्रुत, उत्तरस्थान ३९।५ मे लिखा है—

येनामृतमपां मध्यादुद्धृतं पूर्वजन्मनि ॥

अर्थात्—जिस [धन्वन्तरि] ने पूर्वजन्म मे [काशिराज-गृह मे जन्म से पूर्व] जल के मध्य में से [ओषधिरस में से] अमृत निकाला।

इस अमृत के सेवन से देव दीर्घजीवी अर्थात् जरा मृत्यु रहित हुए।

ग्रन्थ

चिकित्सा तत्वविज्ञानतन्त्र—पूर्व जन्म मे धन्वन्तरि ने चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान भास्कर से प्राप्त किया। पूर्व पृ० ९१, ९२ पर लिख चुके है कि भास्कर-संहिता पढ कर भास्कर-शिष्यो ने अपनी सहिताए रची। धन्वन्तरि ने भी भास्कर की आयुर्वेद सहिता के आधार पर चिकित्सा तत्वविज्ञानतन्त्र की रचना की। इस ग्रन्थ मे चिकित्सा-विषयक गूढ रहस्य बताए है।

२४. सोमपुत्र बुध अपरनाम राजपुत्र

वंश—चन्द्रवश का मूलप्रवर्तक महाराज सोम अत्रि ऋषि का पुत्र था। सोमपुत्र बुध था। बुध की माता तारा थी। प्रसिद्ध चन्द्रवंशी सम्राट् तथा मन्त्रद्रष्टा पुरूरवा बुध का पुत्र था।

अपरनाम—चन्द्रपुत्र बुध का अपरनाम राजपुत्र है। मत्स्यपुराण २४।३ मे लिखा है—

राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रो बुधः स्मृतः।

अर्थात—राजा सोम का पुत्र होने के कारण बुध का अपरनाम राजपुत्र है।

काल—भारतयुद्ध से ६००० वर्ष पूर्व अथवा विक्रम से लगभग ९००० वर्ष पूर्व बुध जीवित था। निम्नलिखित प्रमाण इस ऐतिहासिक तिथि के मानने मे सहायक है।

(क) **भट्ट कुमारिल**—असाधारण विद्वान् भट्ट कुमारिल (विक्रम ६५० से पूर्व) अपने तन्त्रवार्तिक मे पालकाप्य तथा राजपुत्र को स्मरण करता है।

(ख) भट्ट कुमारिल से बहुत पूर्वकाल के मत्स्यपुराण (विक्रम संवत् से २७०० वर्ष पूर्व) मे राजपुत्र बुध तथा उसके गजवैद्यक अपरनाम राजपुत्रीय का उल्लेख है।

(ग) रोमपाद का समकालिक, पालकाप्य मुनि (द्वापर का आरम्भ) अपने हस्तिशास्त्र के गजहृदय प्रकरण मे लिखता है—

विद्यात् तान्यफलान्येवं गीयते सोमसूनुना ।

अर्थात्—सोमपुत्र बुध अथवा राजपुत्र ने ऐसा श्लोक गाया है ।

इन सब प्रमाणो से निश्चय हो जाता है कि राजपुत्र का पूर्व-निर्दिष्ट काल, जो इतिहास सम्मत है, सर्वथा ठीक है ।

स्थान—ईरान से सिन्धु नद पर्यन्त का देश सोम तथा बुध के राज्यान्तर्गत था ।

गुरु—बुध का आचार्य भास्कर था । बुध ने भास्कर से चिकित्साविषयक गहन तत्व सीखे ।

ग्रन्थ

१. चिकित्साविषयक—पूर्व पृष्ठ ९२ पर चिकित्साविशेषज्ञ भास्कर-शिष्यो की सूचि लिख चुके है । तदनुसार चन्द्रसुन बुध ने सर्वसार नामक चिकित्साविषयक ग्रन्थ रचा ।

२. गजायुर्वेद—राजपुत्र अर्थात् बुध को हस्तिशास्त्र प्रवर्तक माना है । मत्स्यपुराण मे लिखा है—

सर्वार्थशास्त्रविद् धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः ।
नाम यद् राजपुत्रीयं विश्रुतं गजवैद्यकम् ॥
राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रो बुधः स्मृतः ।

अर्थात्—(श्री ब्रह्मा जी, विशालाक्ष तथा इन्द्र आदि के) सब अर्थशास्त्रों का वेत्ता और हस्तिशास्त्रप्रवर्तक बुध था । राजपुत्र बुध की प्रसिद्ध रचना गजवैद्यक अपरनाम राजपुत्रीय कही जाती है ।

३. अर्थशास्त्र—मत्स्यपुराण के पूर्वोद्धृत श्लोक से स्पष्ट है कि राजपुत्र बुध अपने से पूर्ववर्ती सम्पूर्ण अर्थशास्त्रों का पूर्ण ज्ञाता था । नीतिवाक्यामृत की टीका में राजपुत्र के राजशास्त्र विषयक अनेक श्लोक उपलब्ध होते है । अतः स्पष्ट है कि बुध की अर्थशास्त्र विषयक रचना अवश्य थी । यह रचना विभिन्न छन्दो मे थी ।

४. कामतन्त्र—काश्मीरक दामोदरगुप्तकृत कुट्टनीमत मे राजपुत्र के कामसूत्र का उल्लेख है ।

आर्य इतिहास मे प्रसिद्ध ग्रन्थकार राजपुत्र एक ही है । यह भी निश्चय है कि बुध का ही अपरनाम राजपुत्र है । अत ये ग्रन्थ उसी शास्त्रकार के है । मद्रास विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री रामचन्द्र दीक्षित ने ऐसे महापुरुष

को कल्पित माना है ।[1] यह उनकी भारी भूल है । ऐसी भूल आर्य वाड्मय का पूर्ण अवगाहन न होने से होती है

५. मन्त्रद्रष्टा—बुध सौम्य ऋग्वेद १०। १०१ का ऋषि है ।

२५ गर्ग

भारतीय इतिहास के सूक्ष्मदर्शी विद्वान् प० भगवद्दत्त जी का "अश्व-शास्त्र" नामक एक गवेषणापूर्ण लेख अभी-अभी प्रकाशित हुआ है ।[2] उसके आधार पर ऋषि गर्ग का निम्नलिखित इतिवृत्त दिया जाता है—

वंश—चन्द्रवश मे चक्रवर्ती भरत का पुत्र महाराज भुमन्यु था । उसका वश-वृक्ष यहा दिया जाता है—
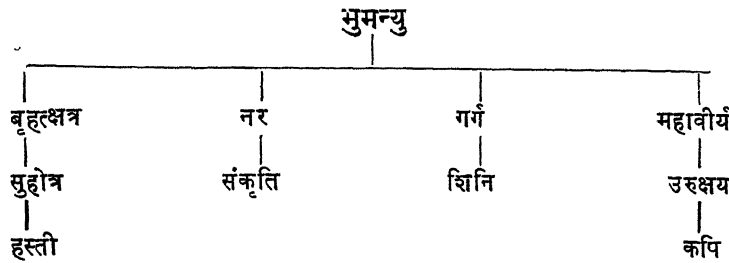
इस वशवृक्ष से ज्ञात होता है कि महाराज भुमन्यु का पुत्र गर्ग था, तथा नर आदि गर्ग ऋषि के भ्राता थे । उनके पृथक् पृथक् गोत्र चले । गर्ग के वंश मे गर्ग अथवा गार्ग्य हुए ।

काल—भरत चक्रवर्ती त्रेता के पूर्वार्ध के अन्त मे हुआ । उससे लगभग १०० वर्ष पश्चात् गर्ग जन्मा । वह दीर्घजीवी था । उस गर्ग ने अनेक शास्त्र रचे । उसके काल के विषय मे अध्यापक श्री तारापद भट्टाचार्य, अपने ग्रन्थ "ए स्टडि आन वास्तुविद्या", पृ० १०२ पर लिखते है—

The date of the famous writer Garga was between the second century B. C. and first century A. D. ··· This Garga was followed by his disciples—पराशर, बृहद्रथ, विश्वकर्मा तथा वासुदेव ।

---

१. The Matsya Purana by V. V. Ramchandra Dikshitar, Madras. 1935, p. 39.

२ वेदवाणी, मासिकपत्र, वर्ष ४, अङ्क ४, माघ २००८, पृ० ७, बनारस ।

अर्थात्—वास्तुशास्त्रकार प्रसिद्ध गर्ग का काल ईसा-पूर्व २०० से ईसागत पहली शती तक था। ...गर्ग के शिष्य पराशर आदि थे।

आलोचना--कहा भारत युद्ध से सहस्रो वर्ष पूर्व होने वाला गर्ग और कहा ईसापूर्व २०० वर्ष का समय। उस समय अत्रि, पराशर, बृहद्रथ, विश्वकर्मा तथा वासुदेव आदि मे से एक व्यक्ति भी जीवित नही था। तारापद जी ने पाश्चात्यो का सस्कार अधिक नही लिया पर यहा पर वे स्खलित हुए है। वस्तुत' गर्ग आदि का शास्त्र-रचन काल वही है, जो सामशाखाकार तथा अश्वशास्त्र-उपदेशक शालिहोत्र का काल था, अर्थात् त्रेता के मध्य से द्वापर के प्रारम्भ तक का काल।

गर्ग एक ही हुआ है। उसके विषय म पाणिनी (विक्रमपूर्व २८००) ने सूत्र रचा—गर्गादिभ्योयञ्। ४। ३। अत गर्ग को अथवा उसके ग्रन्थ को ईसापूर्व प्रथम शती में रखना भारी भूल है।

गुरु—राजगुरु हेमराजजी के अनुसार गर्ग ने शालिहोत्र से अश्ववैद्यक का ज्ञान प्राप्त किया।[1] इस विषय मे शालिहोत्र ग्रन्थ का निम्नलिखित स्थान द्रष्टव्य है।[2]

सुश्रुतो रुद्राजश्च गर्गो मित्रजिदेव च।
पृच्छन्ति वाहनागारं शालिहोत्रं तपोनिधिम्॥

अर्थात्—सुश्रुत, रुदराज, गर्ग तथा मित्रजित् वाहनागार के विषय में तपोनिधि शालिहोत्र से पूछते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गर्ग शालिहोत्र का शिष्य था।

शिष्य—बृहत्सहिता अध्याय ४६ तथा मत्स्य पुराण अध्याय २२६ के अनुसार अत्रि ऋषि ने गर्ग से वास्तुशास्त्र ग्रहण किया।

ग्रन्थ

१ अश्व-आयुर्वेद—महर्षि गर्ग का अश्व-आयुर्वेद विषयक कोई ग्रन्थ था।

नेपाल के राजगुरु पण्डित हेमराज जी शास्त्री लिखते है—

१. हेमाद्रिकृत, लक्षणप्रकाश से काश्यप संहिता, उपोद्घात, पृ० ६६, टिप्पणि २ में उद्धृत।

२. हेमाद्रि रचित चतुर्वर्ग चिन्तामणि, व्रतखण्ड, अध्याय ३२ में उद्धृत।

दुर्लभगणकृते सिद्धोपदेशसंग्रहनामकेऽश्ववैद्यके ग्रन्थे—
शालिहोत्रेण गर्गेण सुश्रुतेन च भाषितम्।
तत्त्वं यद् वाजिशास्त्रस्य तत्सर्वमिह संस्थितम् ॥[1]

अर्थात्—शालिहोत्र, गर्ग और सुश्रुत ने अश्वशास्त्र के विषय मे जो कहा है, वह सब दुर्लभगण के ग्रन्थ मे स्थित है। गणकृत अश्वायुर्वेद के अन्त मे लिखा है—

ये शालिहोत्र-सुश्रुत-गर्गैर्महर्षिभिः पुरा कथितः।
स्वे स्वे तुरङ्गशास्त्रे योगाश्शान्त्यै विकाराणाम् ॥[2]

अर्थात्—शालिहोत्र, सुश्रुत तथा गर्ग नामक महर्षियो ने पूर्वकाल म अपने-अपने अश्वशास्त्रो मे विकारो की शान्ति के लिए जो योग कहे है।

इन दोनो लेखो से गर्ग का अश्वशास्त्रकार होना सिद्ध होता है।

२. **हस्ति आयुर्वेद**—युक्ति-कल्पतरु मे गर्ग का हस्तिशास्त्र विषयक मत उद्धृत है।[3]

३. **वास्तुविद्या**—मत्स्यपुराण अध्याय २५२ मे वर्णित अष्टादश वास्तुशास्त्रोपदेशको मे गर्ग की गणना की गई है। अग्निपुराण ६५।७ मे गर्ग-विद्या का उल्लेख है। गर्गविद्या से निवासयोग्य गृहनिर्माण कला अभिप्रेत है। तारापद भट्टाचार्य ने लिखा है कि बृहत्संहिता, विश्वकर्मप्रकाश तथा सनत्कुमार-वास्तुशास्त्र मे गर्ग के वास्तुशास्त्र का उल्लेख है।

४. **ज्योतिर्विद्या**—गणकतरङ्गिणी मे वर्णित ज्योतिर्विद्याप्रवर्तको मे गर्ग का उल्लेख भी है।

वायसशास्त्र—यह शास्त्र ज्योतिष विद्या के ६४ अगो मे से एक विषय पर है। गर्गकृत वायसरुत का एक हस्तलेख बडोदा के हस्तलि० ग्रन्थो के सूचिपत्र मे निर्दिष्ट है। देखो, भाग द्वितीय, पृ० १२४८, प्रवेश सख्या १२०३४, ग्रन्थ सख्या १२०।

वारिशास्त्र—यह शास्त्र भी ज्योतिष विद्यान्तर्गत है। इस विषय का अष्ट पत्रात्मक एक लघु ग्रन्थ नेपाल राज्य के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूची, सख्या ३६३३, पृ० ७६ पर उल्लिखित है। उसके अन्त मे लिखा है—

गर्गभाषित वारिसार शतक समाप्तः। संवत् १९०।

---

१. काश्यपसंहिता, उपोद्घात, पृ० ७० ।

२. G.O.M L. XXIII, १३३१९, पृ० ८९७२ ।

३. पं० भगवद्दत्तकृत, वैज्ञानिक वाङ्मय का इतिहास मुद्र्यमाण ।

नेपाली सवत् १९० विक्रम सवत ११२७ है।

५. देवर्षिचरित—महाभारत शान्तिपर्व २१२।३३ मे लिखा है कि गर्ग को देवर्षिचरित का ज्ञान परम्परा से उपलब्ध हुआ।

६. मन्त्रद्रष्टा—ऋग्वेद ६।४७ का ऋषि गर्ग है।

२६. च्यवन

वंश—पूर्व पृ० ५५ पर लिख चुके है कि ऋषि भृगु का पुत्र च्यवन था। मानव कुलोत्पन्न महाराज शर्याति की पुत्री सुकन्या ऋषि च्यवन की पत्नी थी। पूर्व पृ० ५५ के अनुसार कवि उशना च्यवन का भ्राता था। च्यवन नाम वेदमन्त्रो के आधार पर रखा गया है। अथर्ववेद ६।११६ (१२०) में च्यवन शब्द का अर्थ ज्वर है।

काल—च्यवन त्रेता के आरम्भ से अति दीर्घकाल तक जीवित रहा। वह रसायन बल से दीर्घजीवी हुआ। चरकसंहिता चि० स्थान १।२।२० मे लिखा है—

> प्राणकामाः पुरा जीर्णाश्च्यवनाद्याः महर्षयः ।
> रसायनैः शिवैरेतैर्बभूवुरमितायुषः ॥

अर्थात्—पूर्वकाल मे वृद्ध च्यवन आदि अनेक महर्षियो ने दीर्घ-जीवन की इच्छा से कल्याणकारी रसायनों का सेवन किया। उनसे वे अमितायु अर्थात् परिमाण से अधिक आयु वाले हुए।

च्यवन की कितनी आयु थी, यह हम अभी तक पूर्ण निश्चय नही कर पाए। द्वापर के आरम्भ मे हिमालय पर के ऋषि-सम्मेलन मे वह उपस्थित था। (देखो चरक स०, सूत्र १।१।१०॥)

स्थान—सुकन्या के पाणिग्रहण के समय च्यवन सुराष्ट्र देश मे रहता था। उस समय वह वृद्ध था। उससे पूर्व भी वह वही अथवा भारत के पश्चिम के किसी अन्य स्थान मे निवास रखता होगा। वरुणदेव अरब देश मे रहता था। उशना ईरान और काल्डिया आदि देशो में रहता था। भृगु ऋषियो के ये ही प्रदेश थे। भार्गव जमदग्नि भी भरुकच्छ के समीप अर्थात् भारत के पश्चिम में रहता था।

गुरु—चरक की परम्परानुसार च्यवन ने भरद्वाज से आयुर्वेदोपदेश ग्रहण किया। पूर्व पृ० ९१ पर दी गई सूचि के अनुसार उसने भास्कर से व्याधि दूर करने की विशेष विधि सीखी।

क्या च्यवन अनेक थे—श्री रघुवीरशरण जी अपने ग्रन्थ धन्वन्तरि परिचय पृ० ८८ पर लिखते है—इसी प्रकार च्यवन भी अनेक है। इति। यह मत

सत्य नही । आर्य वाड्मय मे समान-नाम के विभिन्न व्यक्तियो के नामो के साथ पार्थक्य-दर्शक कोई स्पष्ट विशेषण प्राय पाए जाते है । ऐसा कोई विशेषण च्यवन नाम के साथ नही मिलता ।

विशेष घटना

१. वार्धक्य नाश—च्यवन के युवा होने की घटना एक ऐतिहासिक तथ्य है । आयुर्वेदीय चरक सहिता, चि० १।४ मे लिखा है—

> भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन् विकृतिं गतः ।
> वीतवर्णस्वरोपेतः कृतस्ताभ्यां पुनर्युवा ।।४४।।

अर्थात्—भृगु-पुत्र, कामी च्यवन वृद्ध होने पर वर्ण तथा स्वरहीन हो गया । अश्विद्वय ने उसे युवा किया ।

ताण्डय ब्राह्मण १४।६।१०, शतपथ ब्राह्मण, महाभारत, शान्तिपर्व ३५१।२४ तथा रसरत्नसमुच्चय, उत्तरखण्ड अध्याय १७ मे भी इस घटना का वर्णन है । अश्विद्वय ने च्यवन को सरोवर मे स्नान कराया, तत्पश्चात् वह युवा हो गया । नावनीतक पृ० १०६ पर लिखा है कि महर्षि च्यवन अश्वि-निर्दिष्ट अमृत तैल के प्रयोग से जरारोगमुक्त हो गया—

> अस्य प्रयोगात् तैलस्य महर्षिः च्यवनः किल ।
> पुनर्युवत्वमापन्नो जरारोगविवर्जितः ।।

अर्थात्—इस [अमृत] तैल के प्रयोग से महर्षि च्यवन जरारोग रहित हो पुन यौवन को प्राप्त हो गया ।

च्यवनप्राश नामक औषध के योग म लिखा है कि इस रसायन के सेवन से च्यवन युवा हुआ । यथा—

> अस्य प्रयोगाच्च्यवनः सुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा ।।

अर्थात्—इस च्यवनप्राश के सेवन से अत्यन्त वृद्ध च्यवन पुनः युवा हुआ ।

इन उद्धरणो से स्पष्ट है, च्यवन ने युवा होने के लिए रसायन सेवन किया । एतद्विषयक गम्भीर तत्त्व अन्वेषणीय है ।

२. इन्द्रभुज स्तम्भ—महाभारत, शान्तिपर्व ३५१।२४ मे च्यवन द्वारा इन्द्र की भुजा के हिलने-जुलने मे असमर्थ होने का वर्णन है ।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार च्यवन आयुर्वेद का कर्ता था । पूर्व पृ० ९१ पर दी गई भास्कर-शिष्यो की नामावलि मे च्यवन का नाम भी है । **जीवदान** नामक चिकित्सा-ग्रन्थ उसकी कृति थी ।

अक्षिरोग चिकित्सक—पूर्व पृ० ११० पर कुछ ऐसे आचार्यो के नाम लिख

चुके हैं जिनके प्रतिदिन नाम-स्मरण से नेत्ररोग भय दूर हो जाता है। इनमें च्यवन का नाम भी है। प्रतीत होता है च्यवन अक्षिरोग विशेषज्ञ था।

सुकन्या—पूर्व लिखित आचार्यों में सुकन्या का नाम भी है। प्रतीत होता है सुकन्या को भी अक्षिरोग-विषयक चिकित्सा का ज्ञान हो गया था। अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा तथा अत्रि-पत्नी अनुसूया के समान च्यवन-पत्नी सुकन्या ने भी पति से आयुर्वेद विषयक ज्ञान प्राप्त किया।

२. **ज्योतिर्विद्या**—अष्टादश ज्योति शास्त्र-प्रवर्तकों में च्यवन का नामोल्लेख है।

३. **मन्त्रद्रष्टा**—च्यवन ऋग्वेद १०।१९ का ऋषि था।

सुश्रुत संहिता, चि० १५।५ में **च्यावन मन्त्र** उल्लिखित हैं। ये वेदमन्त्र नहीं हैं।

योग—चरक संहिता, चि० १।६१–७३, अष्टाङ्ग हृदय, उत्तरस्थान, ३९।३३-४१, गदनिग्रह, भाग प्रथम ५।२४९-२६१ में च्यवनप्राशावलेह तथा गदनिग्रह, भाग प्रथम ५।२८६-२९१ में लघुच्यवनप्राशावलेह नामक योग पाए जाते हैं। यह स्पष्ट नहीं कि इन योगों का उपदेश च्यवन ने किया अथवा च्यवन के निमित्त किसी अन्य ऋषि ने। हारीत संहिता के अनुसार कृष्णात्रेय ने इसे भाषित किया—

च्यवनप्राशनं नाम कृष्णात्रेयेण भाषितम् ३।९॥

२७. विश्वामित्र

वंश—महाभारत, आदिपर्व १९१।३,४ के अनुसार कुशिक का पुत्र गाधि तथा गाधि का पुत्र विश्वामित्र था।

वाल्मीकीय रामायण, बालकाण्ड ५१।१८, १९ में वंशपरम्परा कुछ परिवर्तित है। इसके अनुसार कुशिक का पुत्र कुशनाभ, कुशनाभ का गाधि तथा गाधि का पुत्र विश्वामित्र है। यह भेद विचारणीय है। परन्तु इतना निश्चय है कि विश्वामित्र महाराज गाधि का पुत्र था। सुश्रुतसंहिता का कर्ता सुश्रुत इसी विश्वामित्र का सुत था। ऋषि विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय था। वसिष्ठ के ब्रह्मतेज से लज्जित हो उसने तप किया। पूर्व पृष्ठ १० पर लिख चुके हैं कि तपोबल से विश्वामित्र ब्रह्मर्षि बना।

मधुच्छन्दा आदि ऋषि विश्वामित्र के पुत्र थे। भारतीय इतिहास की प्रसिद्ध शकुन्तला, जो भरत चक्रवर्ती की माता थी, इसी विश्वामित्र की कन्या थी।

स्थान—विश्वामित्र का पिता गाधि कान्यकुब्ज का नृपति था। महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय १६१ मे लिखा है—

कान्यकुब्जे महानासीत्पार्थिवो भरतर्षभ।

अर्थात्—हे भरतश्रेष्ठ कान्यकुब्ज मे [गाधि नामक] महान् राजा था।

गाधि के अनन्तर उसका पुत्र विश्वामित्र कान्यकुब्ज का अधिष्ठाता हुआ।

वायुपुराण ८८।८६ के अनुसार विश्वामित्र ने "सागरानूप" मे तप तपा।

काल—विश्वामित्र का काल त्रेता के मध्य से द्वापर के प्रथम चरण तक अवश्य है। ऋषि विश्वामित्र द्वापर के आरम्भ मे होने वाले ऋषि-सम्मेलन मे उपस्थित था।

गुरु

आयुर्वेदज्ञान—चरकसहिता की परम्परानुसार विश्वामित्र ने भरद्वाज से आयुर्वेदाध्ययन किया।

हारीतसहिता ३।२६ के अनुसार महामुनि विश्वामित्र को अश्वियो ने अश्विरसायन का उपदेश दिया।

यज्ञज्ञान—शाखायन आरण्यक मे लिखा है कि विश्वामित्र ने यज्ञ-ज्ञान इन्द्र से प्राप्त किया।

ग्रन्थ

१. **आयुर्वेद**—पूर्व पृष्ठ १०४ पर उद्धृत शालिहोत्रवचनानुसार विश्वामित्र आयुर्वेद का कर्ता तथा सर्वलोक चिकित्सक था। विश्वामित्र के आयुर्वेदीय ग्रन्थ के वचन आज भी उपलब्ध होते है। अष्टाङ्गहृदय पृ० ६४ पर हेमाद्रि अपनी टीका में लिखता है—

उक्तं हि विश्वामित्रेण—

तडागज दरीजं च तडागाद्यत्सरिज्जलम्।
बलारोग्यकरं तत्स्याद्दरीजं दोषलं मतम् ॥इति॥

सुश्रुतसहिता, निदानस्थान ५।१६ की टीका मे डल्हण विश्वामित्र का वचन उद्धृत करता है—

तथा च विश्वामित्रः—

"त्वग्गतं तु यदस्रावि किलासं तत् प्रकीर्तितम्।
यदा त्वचमतिक्रम्य तद्धातूनावगाहते।
हित्वा किलाससंज्ञां च श्वित्रसंज्ञां लभेत तत्"। इति।

ये दोनो वचन गिरिन्द्रनाथ ने नही लिखे। इन के अतिरिक्त उन्होने अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थो में से विश्वामित्र के १२ वचन उद्धृत किए हैं

२. धनुर्वेद—प्रपञ्च हृदय नामक ग्रन्थ में लिखा है—

धनुर्वेदो ब्रह्म-प्रजापति-इन्द्र-मनु-जमदग्नि-सुतादिभिरध्ययनाध्यापनपरम्परानुगतो विश्वामित्रादिभिरनन्तरं शास्त्रत्वमापन्नः । इति । उपवेद प्रकरण ।

अर्थात्—ब्रह्मा आदि का धनुर्वेद परम्परा में आकर विश्वामित्र आदि द्वारा शास्त्र रूप में [सक्षिप्त] हुआ ।

मधुसूदन सरस्वती अपने प्रस्थानभेद में विश्वामित्र कृत धनुर्वेद का उल्लेख करता है ।

३. स्मृति—याज्ञवल्क्य स्मृति का पुरातन टीकाकार विश्वरूप वृद्ध याज्ञवल्क्य के प्रमाण से विश्वामित्र को स्मृतिकार मानता है । मद्रास सरकार तथा दयानन्द कालेज, लाहौर (?) के सग्रह में विश्वामित्र धर्मशास्त्र के हस्तलेख है ।

४. मन्त्रद्रष्टा—विश्वामित्र अनेक वेद मन्त्रो का द्रष्टा था । ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के अधिकाश सूक्तो का वह ऋषि है ।

२८. जमदग्नि

वंश—जमदग्नि का जन्म भृगुवंश मे हुआ । भृगु का सक्षिप्त वशवृक्ष पृष्ठ ५५ पर लिख चुके है । उससे आगे का वशक्रम निम्नलिखित है—
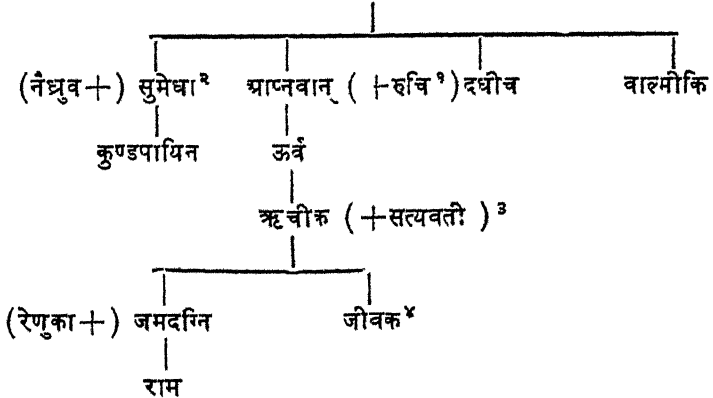
१. आप्नवान्-पत्नी नहुष-कन्या रुचि थी ।

२. सुमेधा निध्रुव (पूर्व पृ० ८०) की पत्नी बनी । उसके पुत्र कुण्डपायी थे ।

३. गाधी की कन्या तथा पुरुकुत्स की दौहित्री थी ।

४. काश्यपसंहिता, कल्पस्थान, पृ० १६१ ।

अर्थात्—च्यवन-प्रपौत्र तथा ऋचीक का पुत्र जमदग्नि था। जमदग्नि और उसका भ्राता जीवक दोनो आयुर्वेद के पण्डित थे।

काल—त्रेता के आरम्भ में जमदग्नि हुआ। वह द्वापर के आरम्भ में हिमालय पर होने वाले ऋषि-सम्मेलन में उपस्थित था।[1]

स्थान—मही और नर्मदा नदियो के मध्य में माहेय देश था।[2] वहां के राजा माहेय कहाए। उन माहेयो का पुरोहित जमदग्नि था। जैमिनीय ब्राह्मण १।१५२ में लिखा है—

जमदग्निर्ह वै माहेयानां पुरोहित आस।

अत जमदग्नि ने जीवन का पर्याप्त भाग नर्मदा के समीप भारत के पश्चिम में अतिवाहित किया।

गुरु—चरकसहिता, सूत्रस्थान १।१।२७ के अनुसार जमदग्नि ने भरद्वाज से आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया।

विशेष घटना

१. जमदग्नि का उशना द्वारा पुनर्जीवन—ब्रह्माण्ड पुराण में जमदग्नि के हैहय-राज द्वारा मारे जाने का उल्लेख है। पूर्व पृष्ठ ९८ पर लिख चुके है कि उशनाकाव्य ने सजीवनी-विद्या द्वारा उसे पुनर्जीवित किया। जै० ब्रा० १।१५२ मे उद्धृत एक पुरातन गाथा मे माहेयो द्वारा भृगु=भार्गव जमदग्नि के मारे जाने का सकेत है।

२. रसायन-सेवन—चरकसहिता, चि० १।४ मे लिखा है कि अन्य ऋषियों के साथ जमदग्नि ने भी ब्रह्मा की वार्षसाहस्रिक रसायन का सेवन किया। उसके प्रभाव से उसने चिरकालपर्यन्त तप तपा।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पूर्व पृ०१०९ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार जमदग्नि आयुर्वेद का कर्ता तथा सर्वलोक-चिकित्सक था।

२. धनुर्वेद—जमदग्नि कृत धनुर्वेद का एक श्लोक डल्हणकृत सुश्रुत-संहिता, चि० १२।११ की टीका मे लिखा है—

रथचर्यां पदातिचर्यां च जमदग्निराह।

३. मन्त्रद्रष्टा—ऋग्वेद १०।१६७ के मन्त्रद्रष्टा विश्वामित्र तथा जमदग्नि दोनो है। ऋग्वेद १०।११० के ऋषि जमदग्नि तथा परशुराम दोनों पिता-पुत्र

---

१. चरकसं० सूत्रस्थान १।१।८॥

२. महाभारत, भीष्मपर्व ६।४६॥

हैं। अथर्ववेद ६।१०२ का ऋषि जमदग्नि है।

१७½. वरुण[1]

वंश—इन्द्र, विष्णु आदि बारह देवो मे वरुण एक था।

योग—वरुण का निम्बारिष्ट योग अष्टाङ्ग सग्रह, चि० अध्याय २१ में उद्धृत है—

निम्बारिष्ट इति ख्यातो वरुणेनैष निर्मितः॥

२६. काश्यप तथा वृद्धकाश्यप

वंश—पूर्व पृष्ठ ६५–७१ पर ऋषि कश्यप का वर्णन हो चुका है। चरकसंहिता १।८ में कश्यप तथा १।१२ में काश्यप नामक दो ऋषियो को स्मरण किया है। निश्चय है कि काश्यप शब्द गोत्रप्रत्ययान्त है। महाभारत, आदिपर्व ६१।५२ में काश्यप आश्रम का वर्णन है। यह आश्रम था महर्षि कण्व का। काश्यप उसका गोत्रनाम है। इस परम्परा के अनुसार मूलपुरुष का नाम कश्यप है।

काश्यप तथा वृद्ध काश्यप—आयुर्वेदीय सहिताओं में अनेक स्थानों पर काश्यप तथा वृद्धकाश्यप के वचन और योग उद्धृत हैं। बहुत सम्भव है काश्यप तथा वृद्धकाश्यप एक ही हों। सस्कृत वाङ्मय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि मनु तथा वृद्धमनु, गर्ग तथा वृद्धगर्ग, याज्ञवल्क्य तथा वृद्धयाज्ञवल्क्य, भोज तथा वृद्धभोज, सुश्रुत तथा वृद्धसुश्रुत नामक शास्त्र विद्यमान थे। इसी प्रकार काश्यप सहिता का परिवर्द्धित सस्करण वृद्धकाश्यप हो सकता है।

काल—चरकसहिता, सूत्रस्थान, अ० १ में वर्णित ऋषिसम्मेलन में काश्यप उपस्थित था। अतः द्वितीय द्वापर में ऋषि काश्यप विद्यमान था। काश्यप तथा वृद्धकाश्यप के अगदतन्त्रविषयक अनेक योग तथा वचन मिलते है। महाभारत आस्तीकपर्व अ० ५१ में ब्रह्मर्षि काश्यप तथा तक्षक के सवाद का उल्लेख है। उस प्रकरण में ऋषि के मन्त्रबल से तक्षक-प्रयुक्त विष के नाश का वर्णन है। प्रतीत होता है महाभारत में वर्णित काश्यप तथा आयुर्वेदीय सहिता वाला काश्यप, एक ही हैं। यदि यह ठीक हो तो काश्यप भारतयुद्ध के पश्चात् भी जीवित था।

आयुर्वेदकर्ता—पूर्व पृ० १०३ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार काश्यप आयुर्वेद का कर्ता था। निबन्धसग्रह ६।२७ में काश्यपतन्त्र का वर्णन है—

काश्यपादितन्त्रान्तरोक्ताधिकसंख्यानिराकरणार्थम्।

काश्यप के वचन—काश्यप के निम्नलिखित वचन भिन्न-भिन्न आयर्वेदीय

---

१. इसे संख्या १७ के आगे पढ़ें।

सहिताओ मे उद्धृत है—

(क) ननु काश्यपेन मुनिना शिरादिष्वग्निकर्म प्रतिषिद्धम् । तथा च तद्वचनम्—

न सिरास्नायुसन्ध्यस्थिमर्मस्वपि कथञ्चन ।
दंशस्योत्कर्तनं कार्यं दाहो वा भिषजाग्निना ॥[1]

(ख) काश्यपोक्तं श्लोकमाह गयदासः—

अरजस्कां यदा नारीं श्लेष्मरेता व्रजेदृतौ ।
अन्यसक्ता भवेत् प्रीतिर्जायते कुम्भिलस्तदेति ॥[2]

योरुप के किसी सन्ततिशास्त्र-विषयक ग्रन्थ मे ऐसा सूक्ष्म वर्गीकरण नही।

(ग) "मूत्रेण चतुर्गुणेन" इत्यादि काश्यपीयसंवादात् ॥[3]

निम्नलिखित वचन गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने "हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन" भाग प्रथम, पृ० १८२ पर चरकसहिता १।१२ के प्रमाण से काश्यप के नाम से उद्धृत किया है—

तच्छ्रुत्वा मारीचिवचः काश्यप उवाच। सोम एव शरीरे श्लेष्मान्तर्गतः कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति । इत्यादि । चरकसंहिता, सू० १२।१२ ॥

चरकसहिता लाहौर सस्करण तथा यादवजिकृत संस्करण म यह वचन काश्यप नही अपितु काप्यऋषि के नाम से उद्धृत है ।

वृद्धकाश्यप के वचन—आयुर्वेदीय सहिताओ मे निम्नलिखित वचन वृद्धकाश्यप के नाम से उद्धृत हैं—

(क) पृथग्दोषसन्निपातरक्तागन्तुजत्वभेदेन षड्विधत्वमाह वृद्धकाश्यपः ।[4]

आयुर्वेदीय चरकसंहिता चि० २३।१४ की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—

वृद्धकाश्यपेऽप्युक्तम्—

(ख) संयोगजञ्च द्विविधं तृतीयं विषमुच्यते ।
गरः स्यादविषस्तत्र सविषं कृत्रिमं मतम् ॥[5]

---

१. निबन्धसंग्रह, सू० १२।४॥ २. सुश्रुत सं० शा० २।३६॥

३. निबन्धसंग्रह, उत्तरतन्त्र ४७।११ ॥

४. अष्टाङ्गसंग्रह, उ० स्थान इन्दुटीका, अ० ३६, पृ० २७० ।

५. व्याख्या मधुकोश ।

इस वचन से स्पष्ट है कि वृद्धकाश्यप नामक आयुर्वेदीय रचना अवश्य थी।

(ग) वृद्धकाश्यपेन शुष्कलक्षणमभिहितं यथा—

गर्भनाड्यास्त्ववहनादल्पत्वाद्वा रसस्य च।
चिरेणाप्यायते गर्भस्तथैवाकालभोजनात् ॥
अकुक्षिपूरणं गर्भस्पन्दनं मन्दमेव च[1] ॥ इति।[2]

अगदतन्त्रज्ञ काश्यप—पूर्व पृष्ठ १०० पर महाभारत के प्रमाण से लिख चुके है कि ऋषि-काश्यप विषहर-विद्याविचक्षण था। निबन्धसग्रह में उद्धृत काश्यप के वचन से ज्ञात होता है कि काश्यप विष-विशेषज्ञ था। काश्यप का विष-विषयक एक योग भी आगे लिखेंगे। प्रतीत होता है कि काश्यप को अगदतन्त्र का ज्ञान था। इस विषय मे अधिक अन्वेषण अपेक्षित है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थ

१. काश्यप ऋषि-प्रोक्त स्त्रीचिकित्सा सूत्र—इसका उल्लेख इण्डियन कलचर, भाग ६ पृ० ५३—६४ पर है।

२. काश्यपीय रोगनिदानम्—मद्रास पुस्तकभण्डार के सूचीपत्र भाग २३, संख्या १३११२ के अन्तर्गत यह ग्रन्थ सन्निविष्ट है।

३. काश्यपसंहिता—अगदतन्त्रपरक काश्यपसहिता नामक एक ग्रन्थ मद्रास-प्रान्त में मुद्रित हो चुका है।[3]

४. काश्यपसहिता—तञ्जोर पुस्तक भण्डार में संख्या ११०४९ के अन्तर्गत ३५०० ग्रन्थ-परिमाण वाला यह अपूर्ण ग्रन्थ विद्यमान है।

अन्य ग्रन्थ

१. व्याकरण—अष्टाध्यायी १।२।२५ तथा ८।४।६७ में पाणिनि मुनि वैयाकरण काश्यप का मत उद्धृत करता है। काश्यप व्याकरण का कोई सूत्र अभी उपलब्ध नही।[4]

२. कल्प—वार्तिककार कात्यायन के मतानुसार अष्टाध्यायी ४।३।१०३ में किसी काश्यपकल्प का उल्लेख है।

---

१. अकुक्षिपूरणं गर्भः शुष्कश्च मन्द एव च। इति पाठान्तरम्।

२. निबन्धसंग्रह, शा० १० ५७॥

३. इसका विशेष विवरण वृद्धजीवकीयतन्त्र, उपोद्घात पृ० ३० पर देखें।

४. देखो पं० युधिष्ठिर जी मीमांसककृत सस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास प० १०४।

३. छन्दःशास्त्र—आचार्य पिङ्गल ने अपने छन्द शास्त्र ७।९ में काश्यप का एक मत उद्धृत किया है। इससे विदित होता है कि काश्यप ने किसी छन्दःशास्त्र का प्रवचन किया था।

४. पुराण—वायुपुराण ६१।५६ के अनुसार वायुपुराण के प्रवक्ता का नाम अकृतव्रण काश्यप था। यहा काश्यप शब्द गोत्रवाचक है।

५. काश्यपीय सूत्र—उद्योतकर अपने न्यायवार्तिक १।२।२३, पृ० ९९ मे कणादमूत्रो को काश्यपीय सूत्र के नाम से उद्धृत करता है। कणाद काश्यप-गोत्रीय था।

उपरिलिखित ग्रन्थो का रचयिता एक ही काश्यप था अथवा भिन्न-भिन्न काश्यप, यह अभी अज्ञात है।

योग—काश्यप तथा वृद्धकाश्यप के निम्नलिखित योग उपलब्ध होते है—

(क) वचा हिंगु विडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ॥२७॥
पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम्।
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥२८॥[1] (काश्यप)

(ख) देवदारु विषं सर्पिर्गोमूत्रं कण्टकारिका।
वाचः स्खलनता हन्ति पीतमित्याह काश्यपः।[2] (काश्यप)

(ग) काश्यपीय गुडिका नामक योग नावनीतक मे उल्लिखित है।

(घ) चक्रदत्त पृ० ३१० पर काश्यपादि ऋषियो का "फलघृत" नामक योग वर्णित है।

गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने काश्यप के केवल तीन योगो का वर्णन किया है। मुखोपाध्याय के इतिहास मे वृद्धकाश्यप का कोई योग वर्णित नही, परन्तु उन्होने निम्नलिखित योग कश्यप के नाम से उद्धृत किया है। अष्टाङ्गहृदय, उ० २।४१-४३ तथा अष्टाङ्गसग्रह, उ०, अ० २, पृ० २५ पर यह योग वृद्ध-कश्यप का है।

(क) समङ्गाधातकीलोध्रकुटन्नटबलाद्वयैः।
महासहाक्षुद्रसहामुल्गबिल्वशलाटुभिः॥
सकार्पासीफलैस्तोये साधितैः साधितं घृतम्।
क्षारमस्तुयुतं हन्ति शीघ्रं दन्तोद्भवोद्भवान्॥
विविधानामयानेतद् वृद्धकाश्यपनिर्मितम्। (वृ०काश्यप)

---

१. अष्टाङ्गसग्रह, उत्तरस्थान, अ० ४३, पृ० ३४७ तथा अष्टाङ्गहृदय पृ० ९१६।

२. अष्टांगसंग्रह, उ, अ० ४१, पृ० ३१६।

अष्टम अध्याय

आयुर्वेदावतरण

पूर्व पृष्ठ ५०–५४ पर संसार मे रोगोत्पत्ति के कारणो का विशद विवेचन हो चुका है। सर्वप्रथम ब्रह्मोपदिष्ट आयुर्वेद-ज्ञान देवलोक में विस्तृत हुआ। देवभिषक् अश्विद्वय आदि भ्रमण करते हुए मर्त्यलोकवासियो की चिकित्सा भी कर देते थे। शनैः-शनैः अनेक ऋषियो ने इन्द्र आदि से सामयिक आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया। इन ऋषियो की कृपा से मर्त्यलोक में आयुर्वेद का आंशिक विस्तार हुआ। परन्तु मर्त्यलोकवासी गुरु-परम्परागत सर्वाङ्गीण ज्ञान से वञ्चित थे।

ऋषि-सम्मेलन—आयुर्वेद के सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान के अभाव में मर्त्यलोकवासी पूर्णतया शरीर रक्षा नही कर सकते थे। उनकी शारीरिक शक्तिया क्षीण हो गई। शारीरिक शक्तियों के दुर्बल होने मे धर्मार्थकाममोक्ष की सिद्धि में बाधा पडने लगी। फलतः परमज्ञानी ऋषियो के मन मे करुणा उत्पन्न हुई। वे ब्रह्मज्ञानी विचारार्थ परमपवित्र हिमवत्पार्श्व पर एकत्रित हुए। तेजस्वी ऋषियो ने रोगशमन के उपायो पर विमर्श किया। परन्तु यह समाधिगम्य ज्ञान था। अतः परमकारुणिक ऋषिगण ध्यानावस्थित हुए। योगीश्वराधिष्ठित पर्वतराज-हिमालय पर समाधिस्थ ऋषियों को युगपद् ज्ञान हुआ कि परम आयुर्वेदज्ञ, अमरप्रभु इन्द्र ही रोगशमन का सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान दे सकता है। चरकसंहिता, सूत्रस्थान, अ० १ में लिखा है—

> अङ्गिरा जमदग्निश्च वसिष्ठः कश्यपो भृगुः।
> आत्रेयो गोतमः साङ्ख्यः पुलस्त्यो नारदोऽसितः ॥८॥
> अगस्त्यो वामदेवश्च मार्कण्डेयाश्वलायनौ।
> पारीक्षिर्भिक्षुरात्रेयो भरद्वाजः कपिष्ठलः ॥९॥
> विश्वामित्राश्मरथ्यौ च भार्गवश्च्यवनोऽभिजित्।
> गार्ग्यः शाण्डिल्यकौण्डिन्यौ वार्क्षिर्देवलगालवौ ॥१०॥

सांकृत्यो बैजवापिश्च कुशिको बादरायणः ।
बडिशः शरलोमा च काप्यकात्यायनावुभौ ॥११॥
काङ्कायनः कैकशेयो धौम्यो मारीचिकाश्यपौ ।
शर्कराक्षो हिरण्याक्षो लोकाक्षः पैङ्गिरेव च ॥१२॥
शौनकः शाकुनेयश्च मैत्रेयो मैमतायनिः ।
वैखानसा वालखिल्यास्तथा चान्ये महर्षयः ॥१३॥
ब्रह्मज्ञानस्य निधयो यमस्य नियमस्य च ।
तपसस्तेजसा दीप्ता हूयमाना इवाग्नयः ॥१४॥

अर्थात्—

१. अङ्गिरा	१८. भरद्वाज	३५ शरलोमा
२. जमदग्नि	१९ कपिष्ठल	३६. काप्य
३. वसिष्ठ	२०. विश्वामित्र	३७. कात्यायन
४. कश्यप	२१. आश्मरथ्य	३८. काङ्कायन
५. भृगु	२२. भार्गव च्यवन	३९ कैकशेय
६. आत्रेय	२३. अभिजित्	४०. धौम्य
७. गोतम	२४. गार्ग्य	४१. मारीचि
८. साङ्ख्य	२५. शाण्डिल्य	४२ काश्यप
९. पुलस्त्य	२६. कौण्डिन्य	४३. शर्कराक्ष
१०. नारद	२७. वार्क्षि	४४. हिरण्याक्ष
११. असित	२८. देवल	४५. लोकाक्ष
१२. अगस्त्य	२९ गालव	४६. पैङ्गि
१३ वामदेव	३० साँकृत्य	४७ शौनक
१४. मार्कण्डेय	३१. बैजवापि	४८. शाकुनेय
१५. आश्वलायन	३२. कुशिक	४९. मैत्रेय
१६. पारीक्षि	३३. बादरायण	५० मैमतायनि
१७. भिक्षु आत्रेय	३४. बडिश	५१. वैखानस (अनेक)

५२. वालखिल्य (अनेक)

तथा अन्य अनेक महर्षि [हिमवत्पार्श्व पर ऋषिसम्मेलन मे आए]। ये सब ब्रह्मज्ञान तथा यम नियमो के कोष थे। तप के तेज से वे इस प्रकार दीप्त थे मानो देदीप्यमान अग्नि हो।

टिप्पण—आर्यो मे समय समय पर ऐसे सम्मेलन हुआ करते थे। उनमें देश भर के परमज्ञानी आया करते थे, तथा सम्पूर्ण समस्याओ को सरलता से

सुलझा लेते थे। क्या यह सभ्यता की पराकाष्ठा नही। हमारे जातीय गौरव को नष्ट करने के लिए यह मिथ्या प्रचार किया जाता है कि आर्य लोग असभ्य थे तथा आज के युग मे ही सभ्यता का पूर्ण विकास हुआ है। अस्तु।

ऋषि-प्रतिनिधि भरद्वाज—इन्द्र से ज्ञान उपलब्ध करने का निश्चय होने पर प्रश्न हुआ कि इन्द्र-भवन में किसे भेजा जाए। इस पर ऋषि भरद्वाज सहसा बोल उठा, "मुझे इस कार्य पर नियुक्त किया जाए।" वास्तव मे भरद्वाज का पिता बृहस्पति देवगुरु था। भरद्वाज तथा इन्द्र की परस्पर मैत्री भी थी। अत भरद्वाज का इन्द्र के पास जाना अति सरल था। अपरञ्च भरद्वाज अनूचानतम था। इसी कारण ऋषियो से नियुक्त परमर्षि भरद्वाज इन्द्र-भवन को गया। इन्द्र ने उसे आयुर्वेदोपदेश किया। चरकसहिता, सूत्र-स्थान, अ० १ मे लिखा है—

> तस्मै प्रोवाच भगवानायुर्वेदं शतक्रतुः।
> पदैरल्पैर्मतिं बुद्ध्वा विपुलां परमर्षये ॥२३॥
> हेतुलिङ्गौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्।
> त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यं बुबुधे यं पितामहः ॥२४॥
> सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्धमायुर्वेदं महामतिः।
> यथावदचिरात्सर्वं बुबुधे तन्मना मुनिः ॥२५॥

अर्थात्—भगवान् शतक्रतु ने परमर्षि भरद्वाज को विपुल बुद्धि जानकर अल्प शब्दो मे उसे आयुर्वेद का उपदेश किया। यह हेतु, लिङ्ग तथा औषध ज्ञानात्मक, स्वस्थ तथा आतुर का उत्कृष्ट मार्ग [अर्थात् स्वस्थ तथा रोगी दोनो को ठीक मार्ग दिखाने वाला] त्रिसूत्रमय, स्थायी, पुण्य ब्रह्मा का आयुर्वेद ज्ञान था। अत्यन्त बुद्धिमान् मुनि भरद्वाज ने उस अनन्त त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेद को शीघ्र ही यथावत् समझ लिया।

चरकसंहिता के इसी प्रकरण मे आगे लिखा है कि सब ऋषियो ने प्रजा की कल्याण-कामना से दीर्घायु होने के लिए यह आयु-वर्धक वेद भरद्वाज से ग्रहण किया। इस प्रकार गुरु इन्द्र से परमर्षि भरद्वाज द्वारा त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेदज्ञान मर्त्यलोक मे फैला।

आयुर्वेदावतार काल

द्वितीय द्वापर—हरिवश, ब्रह्माण्डपुराण तथा वायुपुराण के अनुसार प्रथम द्वापर के अन्त अथवा द्वितीय द्वापर के आरम्भ में काशिराज शौनहोत्र के यहाँ धन्वन्तरि जन्मा। धन्वन्तरि ने भिषक्क्रिया सहित आयर्वेद-ज्ञान

भरद्वाज से प्राप्त किया। यह निश्चय है

(क) हरिवंश पर्व १ अ० २९ में लिखा है। यथा—

द्वितीये द्वापरं प्राप्ते सौनहोत्रिःस काशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे धिन्वन्दीर्घतपास्तदा ॥२२॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः ॥२६॥
आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२७॥

अर्थात्—द्वितीय द्वापर का आरम्भ होने पर सौनहोत्रि, काशिराज दीर्घतपा ने पुत्रकामना से तप तपा। तब उसके घर मे सब रोगो को नष्ट करने वाला, काशिराज, महाराज, देव धन्वन्तरि उत्पन्न हुआ। उसने इस लोक मे भिषक् क्रिया सहित आयुर्वेद भरद्वाज से प्राप्त किया। पुनः उसका अष्टाङ्ग विभाग करके शिष्यो के लिए उसका प्रतिपादन किया।

(ख) हरिवंश के उत्तर-कालिक ब्रह्माण्डपुराण ३।६७ मे निम्नलिखित पाठ है।

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रः स काशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा ॥२०॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः ॥२३॥
आयुर्वेदं भरद्वाजात्प्राप्येह सभिषक्क्रियम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२४॥

(ग) ब्रह्माण्ड के समकालिक वायुपुराण अ० ९२ का एतद्विषयक पाठ निम्नलिखित है—

द्वितीये द्वापरे प्राप्ते सौनहोत्रः प्रकाशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे नृपो दीर्घतपास्तथा ॥१८॥
तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराजः सर्वरोगप्रणाशनः ॥२१॥
आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार सभिपक्क्रियम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥२२॥

इन तीनो पाठो की तुलना से निश्चय होता है कि पूर्व लिखित द्वापर के द्वितीय आदि कुछ अवान्तर विभाग है।

द्वापर के अट्ठाईस विभाग—वायुपुराण २३।११८-२२६ के पाठ के देखने से

ज्ञात होता है कि किसी द्वापर के २८ विभाग है। उनम से से कुछ आवश्यक विभागो का क्रम निम्नलिखित है—

१	द्वितीय द्वापर	सत्य व्यास
२.	तृतीय ,,	भार्गव ,,
३.	चतुर्थ ,,	अङ्गिरा ,,
४.	पञ्चम ,,	सविता ,,
५.	षष्ठ परिवर्त[1]	मृत्यु ,,
६.	सप्तम ,,	शतक्रतु ,,
७	चतुर्दश पर्याय	सुरक्षण ,,
८.	पञ्चदश परिवर्त	आरुणि ,,
६.	षोडश ,,	सञ्जय ,,
१०.	एकोनविंश ,,	भरद्वाज ,,
११.	चतुर्विंश ,,	ऋक्ष [वाल्मीकि] व्यास
१२.	पञ्चविंश ,,	वसिष्ट-शक्ति ,,
१३.	षड्विंश ,,	पराशर ,,
१४.	सप्तविंश ,,	जातूकर्ण्य ,,
१५.	अष्टाविंश ,,	द्वैपायन ,,

उपरिलिखित पाठो से स्पष्ट है कि द्वापर, पर्याय तथा परिवर्त आदि किसी बड़े युग अथवा किसी द्वापर के अवान्तर भेद है। यह गणना २८ पर समाप्त हो जाती है। अत. प्रतीत होना है कि इस द्वापर के २८ भाग बताए है परन्तु अङ्गिरा आदि त्रेता के व्यास अर्थात् वैदिक वाङ्मय के सङ्कलनकर्ता थे। उनका किसी द्वापर मे होना कोई गम्भीर अर्थ बताता है।

वायुपुराण के निम्नश्लोक भी इस विषय पर प्रकाश डालते है—

अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात्।
वेदव्यासस्ततो जज्ञे जातूकर्णपुरः सर ॥६३॥
अष्टाविंशतिमे तद्वद् द्वापरस्याशसंक्षये।
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ॥६७॥ अध्याय ६८।

अर्थात्—अट्ठाइसवे द्वापर में पराशर से विष्णु का आठवा जन्म वेदव्यास के रूप मे हुआ, तथा द्वापर के अश के अट्ठाइसवे क्षय पर वृष्णिकुल में कृष्ण के रूप मे विष्णु का जन्म हुआ।

यह सर्वसम्मत है कि कृष्णजी एक सौ बीस वर्ष जीवित रहे। उनके देहा-

---
१, एक परिवर्त में विश्वामित्र जन्मा। अनुशासनपर्व ६१।१४॥

वसान के दिन से कलि का आरम्भ हुआ। अतः यह निश्चित है कि कृष्णजी के देहावसान के समय द्वापर समाप्त हो गया।

टिप्पण—वि० सं० ६०० से पूर्वकालीन भट्ट कुमारिल अपने तन्त्रवार्तिक के पृ० १६७ पर लिखता है—ज्योतिःशास्त्रेऽपि—

युगपरिवर्तपरिमाणद्वारेण। इत्यादि।

अर्थात्—ज्योतिषशास्त्र में भी युग तथा परिवर्त आदि के परिमाण से।

इस वचन से स्पष्ट है कि ज्योतिषशास्त्र मे युग का कोई छोटा विभाग परिवर्त आदि का था। उसका क्रम निम्नलिखित प्रमाणो से ज्ञात होगा—

१. आद्य त्रेतायुग	दक्ष प्रजापति[1]
२. आद्य त्रेतायुगमुख	द्वादश देव[2]
३. आद्य त्रेता	मनु और सप्तर्षि[3]
४. तृतीय त्रेता	तृणबिन्दु[4]
५. दशम त्रेता	दत्तात्रेय[5]
६. पन्द्रहवाँ त्रेता	मान्धाता[5]
७. उन्नीसवा त्रेता	जामदग्न्य राम[5]
८. चौबीसवाँ त्रेता	दाशरथि राम[5]

इस सूचि से त्रेता के न्यून से न्यून २४ अवान्तर विभागो का ज्ञान होता है। द्वापर विषयक प्रथम सूचि की सख्या ११ मे तथा त्रेता विषयक सूचि संख्या ८ मे उल्लिखित ऋक्ष अर्थात् वाल्मीकि तथा दाशरथि राम समकालिक है। परन्तु ऋक्ष की गणना द्वापर में परिगणित चौबीसवे परिवर्त मे की गई है तथा राम की गणना चौबीसवें त्रेता मे है। सख्या दोनो की चौबीस है। एक के आगे परिवर्त तथा दूसरे के आगे त्रेता शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि युग-गणना का यह विशेष प्रकार है। इसको गहरी खोज की आवश्यकता है।

महामहोपाध्याय शिवदत्त तथा चौबीसवां त्रेता

महामहोपाध्यायजी ने लिखा है कि छः मन्वन्तर व्यतीत होने पर सातवें वैवस्वत मन्वन्तर की चौबीसवी चतुर्युगी के त्रेता मे दाशरथि राम हुआ। इसी प्रकार २८वी चतुर्युगी के द्वापर के अन्त मे व्यास तथा कृष्ण हुए।

महामहोपाध्यायजी के अर्थ की असङ्गति

---

१. वायु ३०।७४-७६॥६७।४३॥ २. वायु ६७।४३,४४॥

३. वायु ५७ ३१॥ ४. वायु ७०।३१॥८६।१५॥

५. वायु ७०।४७, ४८॥६८।८६-६२॥

प्रथम हेतु—यदि शिवदत्तजी का अर्थ ठीक माना जाए तो पूर्वलिखित त्रेता की सूची के अनुसार दत्त आत्रेय दसवी चतुर्युगी के त्रेता मे, मान्धाता पन्द्रहवी चतुर्युगी के त्रेता मे, जामदग्न्य राम उन्नीसवी चतुर्युगी के त्रेता मे तथा दाशरथि राम चौबीसवी चतुर्युगी के त्रेता मे हुए। प्रत्येक चतुर्युगी मे एक एक कलियुग भी हुआ। कलियुग का आरम्भ होने पर आर्य-राज्य परम्परा उच्छिन्न हो जाती है। परन्तु इसके विपरीत रामायण आदि इतिहासो के अनुसार मान्धाता से दाशरथि राम तक आर्य-राज्य-परम्परा का उच्छेद कभी नही हुआ। अपितु मान्धाता तथा दाशरथि राम एक ही वश में कुछ अन्तर पर हुए लिखे है। अतः पूर्वोक्त गणनाओ मे शिवदत्तजी का अर्थ सङ्गत नही।

द्वितीय हेतु—सम्पूर्ण आर्य शास्त्र के अनुसार मानव-आयु ४०० वर्ष से अधिक नही होती। मान्धाता आदि सब राजा मनुष्य थे। वे न देव थे, न ऋषि। अत. उनकी आयु ४०० वर्ष से अधिक नही हो सकती। मान्धाता से राम तक लगभग ४४ पीढिया है। प्रत्येक राजा का राज्य यदि अधिक से अधिक १०० वर्ष माना जाए तो उनका राज्यकाल लगभग साढे चार सहस्र वर्ष बनता है। परन्तु शिवदत्त जी स्वीकृत एक ही त्रेता का युगमान कई लाख वर्ष का है। अत महामहोपाध्याय का चतुर्युगी वाला काल-मान इस वशावलि की अवधि में पूरा नही होता।

परिणाम—फलत इतिहास की कालगणना-प्रदर्शिका पूर्वोक्त दोनो सूचियो की गणना का आधार अन्वेषणीय है। रामायण उत्तरकाण्ड ३८।१५ के अनुसार काशिपति प्रतर्दन और दाशरथि राम वयस्य तथा समकालिक थे।[1] काशिपति प्रतर्दन का तीसरा अथवा चौथा पूर्व पुरुष धन्वन्तरि था। धन्वन्तरि ने भरद्वाज से भिषक्क्रिया सहित आयुर्वेद सीखा। धन्वन्तरि को आयुर्वेद पढ़ाने से पहले भरद्वाज इन्द्र से त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेद सीख चुका था। अतः आयुर्वेदावतार का काल दाशरथि राम से कुछ पूर्व अर्थात् त्रेता के अन्त मे हुआ।

राजगुरु हेमराजजी का मत—धन्वन्तरि का दूसरा अथवा तीसरा उत्तर-पुरुष दिवोदास है। श्री राजगुरुजी ने इस दिवोदास का काल कलि मे अथवा कलि के समीप माना है। एतद्विषयक उनकी सब युक्तिया अनुमानो पर आश्रित है। राम और प्रतर्दन की मैत्री के विषय में उन्होने कोई प्रकाश नही डाला, अतः उनका मत असिद्ध है।

---

१. भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० सं० पृ० ११७।

३०. भरद्वाज

वंश—परमर्षि भरद्वाज आङ्गिरस बृहस्पति का पुत्र था। हरिवंश १।३२ में लिखा है—

> बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो राजन्महामुनिः।
> संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥१४॥

अर्थात्—हे राजन् आङ्गिरस बृहस्पति का पुत्र, महामुनि भरद्वाज मरुद्गणो द्वारा [सम्राट् भरत को] दे दिया गया।

निम्नलिखित वंशवृक्षसे यह वंशक्रम स्पष्ट हो जाएगा। यथा—
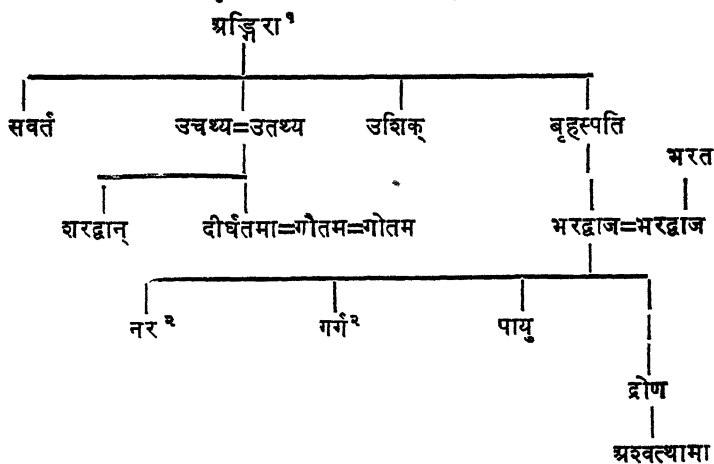
चक्रवर्ती भरत का संक्रामित पुत्र—देवगुरु बृहस्पति का पुत्र भरद्वाज मरुद्गणो द्वारा चन्द्रवंशी, चक्रवर्ती सम्राट् भरत को पहुँचा दिया गया था। हरिवंश १।३२ मे इस घटना का संकेत है—

> अत्रैवोदाहरन्तीम भरद्वाजाय धीमतः।
> धर्मसंक्रमणं चापि मरुद्भिर्भरताय वै ॥१५॥

अर्थात्—यहाँ भरत के लिए मरुद्गणों द्वारा बुद्धिमान भरद्वाज का धर्म-संक्रमण वर्णित किया जाता है।

---

१. महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय १३२ में लिखा है—

> अष्टौ चाङ्गिरसः पुत्रा वारुणास्तेऽप्यवारुणाः।
> बृहस्पति-रुचथ्यश्च वयस्यः शान्तिरेव च ॥
> घोरो विरूपः सवर्तः सुधन्वा चाष्टमः स्मृतः।

२. अधिक देखो पूर्व पृष्ठ १२१ तथा सं० व्या इ० पृ० ६९।

मत्स्यपुराण अध्याय ४६ में भी यह वर्णन मिलता है—

जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थितः ।
तस्मिन्काले तु भरतो बहुभिः क्रतुभिः विभुः ।
पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञैरयजत्पुत्रलिप्सया ॥२७॥
यदा स यजमानस्तु पुत्रं नासादयत्प्रभुः ।
ततः क्रतुं मरुत्सोमं पुत्रार्थे समुपाहरत् ॥२८॥
तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तुष्टुवुः ।
उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै ॥२६॥
दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पतेः ।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतं प्रति ॥३०॥

अर्थात्—मरुद्गणों ने कृपा से भरद्वाज को ग्रहण कर लिया। उसी समय सम्राट् भरत पुत्रकामना से पुत्र-नैमित्तिक यज्ञ कर रहा था। जब यजमान को पुत्र प्राप्त न हुआ तो उसने पुत्रप्राप्ति के लिए मरुत्सोम यज्ञ किया। उसके मरुत्सोम यज्ञ से मरुद्गण सन्तुष्ट होगए। वे भरद्वाज को भरत का पुत्र बनाने के लिए ले गए। वह अङ्गिरा के पुत्र [बृहस्पति] का पुत्र अथवा बृहस्पति का औरस पुत्र मरुद्गणों द्वारा सम्राट् भरत को पहुचा दिया गया।

स्पष्ट है कि बार्हस्पत्य भरद्वाज सम्राट् भरत द्वारा गोद लिया गया।

द्व्यामुष्यायण—भरद्वाज को द्व्यामुष्यायण इस लिए कहते है, कि वह दो पिता वाला था। एक बृहस्पति का औरस और दूसरे भरत का गोद-लिया पुत्र। उसकी सन्तान में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनो हुए। देखो मत्स्य अ० ४६।३३॥

विदथि भरद्वाज—हरिवंश १।३२ के अनुसार भरद्वाज के पुत्र का नाम वितथि था। यथा

अयोजयद्भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्हि तम् ।
पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि ॥१६॥
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत् ।
ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ ॥१७॥
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ ।

अर्थात्— ··भरद्वाज के पुत्र का नाम वितथ था। वितथ के उत्पन्न होने पर भरत की मृत्यु हो गई। तदनु वितथ का अभिषेक करके भरद्वाज वन को गया।

मत्स्यपुराण अध्याय ४६ में वितथ को भरद्वाज का पुत्र नही माना गया अपितु वितथ भरद्वाज का विशेषण माना गया है।

इन सब का उत्तरवर्ती, परम इतिहास-पुराणज्ञ शौनक अपनी बृहद्देवता अध्याय पाँच मे भरद्वाज को विदथी कहता है—

> योऽङ्गारेभ्यो ऋषिर्जज्ञे तस्य पुत्रो बृहस्पतिः ।
> बृहस्पतेर्भरद्वाजो विदथीति य उच्यते ॥१०२॥
> मरुत्स्वासीद्गुरुर्यश्च स एवाङ्गिरसो नयात् ।
> सपुत्रस्य तु तस्यैतत् मण्डलं षष्ठमुच्यते ॥१०३॥

अर्थात्—अङ्गिरा का पुत्र बृहस्पति था। बृहस्पति का पुत्र भरद्वाज था। उसे विदथी कहा जाता है।

इस विषय का निश्चय करने के लिए अनेक पुस्तको के शुद्ध सम्पादन की आवश्यकता है। अभी तक पुराण आदि का सन्तोषजनक सम्पादन नही हो सका। परन्तु बृहद्देवता का पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। विदथी का अर्थ निम्नलिखित भी हो सकता है—

वितथं अस्यास्तीति वितथी ।

अर्थात्—जिसका पुत्र वितथ है।

वितथ और विदथ समानरूप माने जा सकते है। परन्तु यह विषय अभी विचारणीय है।

अनेक भरद्वाज

भारतीय इतिहास मे तीन महापुरुषो के साथ भरद्वाज शब्द सम्बद्ध है। वे निम्नलिखित है—

१. बार्हस्पत्य भरद्वाज[1]
२. कुमारशिरा भरद्वाज[2]
३. बाष्कलि भरद्वाज[3]

इनमें से बार्हस्पत्य भरद्वाज का थोड़ा सा वर्णन हो चुका है। यह भरद्वाज आयुर्वेद का उपदेष्टा था।

दूसरा है कुमारशिरा भरद्वाज। इसका वास्तविक नाम कुमारशिरा है तथा भरद्वाज पद उसके साथ उपचार से जुडा है। यथा—

---

१. कात्यायन अपनी ऋक्सर्वानुक्रमणी में बार्हस्पत्य भरद्वाज को अनेक सूक्तों का द्रष्टा लिखता है।

२. आयुर्वेदीय चरकसंहिता सूत्रस्थान २६।४।

३. देखो पं० भगवद्दत्तकृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग प्रथम, पृ० ७८।

अर्थात्—जिसका नाम कुमारशिरा है तथा जो भरद्वाज [चैत्ररथ वन में होने वाली ऋषि-सभा में उपस्थित था] ।

स्पष्ट है कि इस भरद्वाज का मूल नाम कुमारशिरा है ।

चरकसंहिता में एक अन्य भरद्वाज—चरकवर्णित ऋषि-सभाओ में भिन्न-भिन्न आयुर्वेदीय विषयो पर वाद-विवाद होता था । ये सभाएँ समय-समय पर विभिन्न स्थानो में हुई । इन विवादो में अन्तिम निर्णय पुनर्वसु आत्रेय पर आश्रित रहता था । इसी प्रकार के एक वाद-विवाद में भाग लेने वाले किसी भरद्वाज का वर्णन चरकसहिता सूत्रस्थान, अ० २५ तथा शारीरस्थान अ० ३ में मिलता है । यह भरद्वाज आत्रेय-गुरु बार्हस्पत्य भरद्वाज नही है, क्योकि दोनो प्रकरणो में पुनर्वसु-आत्रेय गुरुरूपेण अन्तिम निर्णय करता है । शारीरस्थान ३।३३ की टीका में चक्रपाणिदत्त भी लिखता है—

यहां पर भरद्वाज शब्द से आत्रेय का गुरु भरद्वाज अभिप्रेत नही । यह कोई अन्य भरद्वाज गोत्र का व्यक्ति है । इति ।

यह निश्चय है कि यह भरद्वाज बार्हस्पत्य भरद्वाज के अतिरिक्त कोई अन्य है । प्रश्न होता है, यह भरद्वाज कौन है ।

वह कुमारशिरा है—पूर्व पृ० १२५ पर लिख चुके हैं कि आर्य-इतिहास लेखक समान नामो के पूर्व पार्थक्य-दर्शक कोई विशेषण प्राय: लगा देते थे । चरकसंहिता मे वर्णित आत्रेय-शिष्यो के नामो में कुमारशिरा भरद्वाज के अतिरिक्त किसी अन्य भरद्वाज का उल्लेख नही मिलता ।

चरकसहिता अ० ६ तथा शारीरस्थान ६।२० में वर्णित भरद्वाज के साथ कुमारशिरा का प्रयोग हुआ है, परन्तु सूत्रस्थान अ० २५ तथा शारीरस्थान अ० ३ में भरद्वाज शब्द अकेला प्रयुक्त हुआ है । चरकसहिता के किसी भी प्रकरण में दोनो नाम इकट्ठे प्रयुक्त नही हुए । प्रतीत यह होता है कि केवल कुमारशिरा भरद्वाज ही, आत्रेय-शिष्य है । चरकसंहिता मे प्रसग ज्ञात होने के कारण कुमारशिरा नाम सर्वत्र प्रयुक्त नही हुआ । कही-कही उसे केवल औपचारिक नाम भरद्वाज से स्मरण किया गया है ।

बाष्कलि भरद्वाज—तीसरा भरद्वाज है बाष्कलि । यह बष्कल का पुत्र भरद्वाज है ।

पूर्वोक्त भरद्वाजों के अतिरिक्त कोई अन्य भरद्वाज अभी तक हमारी दृष्टि म नही पड़ा । इनमें से बार्हस्पत्य भरद्वाज दीर्घजीवितम था । महाभारत, बृहद्देवता, सर्वानुक्रमणी तथा रामायण मे उसी का वर्णन है ।

पार्जिटर-मत—इङ्गलैण्ड देशोत्पन्न पार्जिटर महोदय ने मुख्य चार भरद्वाज स्वीकार किए है। यथा—

१. भरद्वाज प्रथम

२. विदथिन भरद्वाज

३. द्रोणपिता भरद्वाज

४. अन्य भरद्वाज (इस सख्या के अन्तर्गत कई भरद्वाज है। एक है बाष्कलि भरद्वाज।)

इनमें से प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय भरद्वाज भिन्न नही है। बार्हस्पत्य ही विदथी तथा द्रोणपिता के नाम से स्मृत है। पार्जिटर ने पाश्चात्य पक्षपात के कारण इस भरद्वाज की दीर्घायु के पक्षकी उपेक्षा की है। अपरञ्च एक भरद्वाज को तीन भरद्वाजो के रूप में प्रकट किया है। शेष बात पहले स्पष्ट की जा चुकी है।

राजगुरु हेमराज जी का मत—श्री राजगुरु हेमराज जी काश्यपसहिता के उपोद्घात पृ० ६२, ६३ पर लिखते है—

भरद्वाजाद्धन्वन्तरेरायुर्वेदविद्यालाभस्य, दिवोदासेनापि भरद्वाजस्याश्रयणस्य हरिवंशे उल्लेखेन त्रिपुरुषान्तरिताभ्यां धन्वन्तरिदिवोदासाभ्यां सह सम्बद्धो भरद्वाज एक एव व्यक्तिरुत तद्गोत्रीयं व्यक्तिद्वयमिति नावधार्यते।··· · ····। काश्यपसंहितायां रोगाध्याये (पृ० २६) कृष्णभारद्वाजस्य निर्देशश्चास्ति। तेनायुर्वेदविद्यायां नानाभरद्वाजानामाचार्यभावोऽवगम्यते। इति।

अर्थात्—धन्वन्तरि को आयुर्वेदविद्या देने वाला भरद्वाज, तथा हरिवश के अनुसार धन्वन्तरि से चार पीढी उत्तरवर्ती दिवोदास से सम्बद्ध भरद्वाज एक ही व्यक्ति है अथवा तद्गोत्रीय दो व्यक्ति, यह ज्ञात नही। काश्यपसहिता पृ० २६ पर एक कृष्णभारद्वाज का निर्देश है। अत. आयुर्वेदविद्या मे नाना भरद्वाज पाए जाते है।

आलोचना

१. धन्वन्तरि तथा दिवोदास से सम्बद्ध भरद्वाज प्रसिद्ध दीर्घजीवितम बार्हस्पत्य भरद्वाज है।

२. काश्यपसहिता रोगाध्याय, पृष्ठ २६ पर निर्दिष्ट कृष्णभारद्वाज को भरद्वाजो की श्रेणी मे रखना असङ्गत है। भारद्वाज शब्द का प्रयोग भरद्वाज गोत्र मे होने वाले व्यक्ति के लिए हुआ है न कि भरद्वाज के लिए। अत. इसे भरद्वाजो की गणना में नही रखना चाहिए।

धन्वन्तरि परिचय के लेखक श्री रघुवीरशरण का मत—श्री रघुवीरशरण जी ने लगभग सात भरद्वाज माने है। इनमे से धन्वन्तरि के गुरु भरद्वाज, इन्द्र के शिष्य भरद्वाज तथा पुरुवशी भरत के पुत्र भरद्वाज भिन्न नही।

रघुवीरशरणजी ने एक कृष्ण भरद्वाज भी माना है। परन्तु राजगुरुजी के लेख से स्पष्ट है कि वह कृष्णभरद्वाज नही अपितु कृष्णभारद्वाज है। ऐतिहासिक परम्परा-क्रम जानने के लिए गोत्र-विषयक शब्द-रूपो का ध्यान रखना चाहिए।

भारतीय इतिहास में गोत्रज्ञान की महत्ता—श्री ब्रह्माजी के पश्चात् सप्तर्षि, प्रजापति अथवा पितर-काल आरम्भ हो गया। उस समय से भारतीय इतिहास मे गोत्रो का आरम्भ हुआ। भृगु आदि ऋषियो के मूल गोत्र सात है। कालान्तर मे इन सात मूल ऋषियो की परम्परा मे अनेक अवान्तर गोत्र तथा प्रवर चल पडे। इन सबके ज्ञान से आर्य इतिहास स्पष्टतया समझ मे आ सकता है। सम्पूर्ण प्राचीन वाङ्मय मे गोत्र और अपत्य प्रत्ययान्तो से इतिहास की कडियाँ सुरक्षित रखी गई है।

वैयाकरण, इतिहास के मार्मिक पण्डित—आपिशलि, शाकटायन तथा पाणिनि आदि वैयाकरणो ने अति सूक्ष्मेक्षिका से उन गोत्रो के अन्तर्गत व्यक्ति-विशेषो के नामो के रूप सुरक्षित कर दिए है। अष्टाध्यायी की काशिका-वृत्ति ४।१।११९ मे लिखा है—

शौङ्गो भवति भारद्वाजश्चेत् शौङ्गिरन्यः।

अर्थात्—भरद्वाज के गोत्र मे होने वाले शुङ्ग की सन्तति में किसी पुरुष का नाम शौङ्ग हो सकता है। अन्य गोत्र मे उत्पन्न होने वाले शुङ्ग-पुत्र का नाम शौङ्गि होगा। इस प्रकार विभिन्न गोत्रीय अन्य अनेक नाम-रूपो के लिए व्याकरण ग्रन्थो मे पार्थक्य-दर्शक स्पष्ट नियम मिलते है। जो बात वाङ्मय वालो ने की, उसका अधिक रक्षण वैयाकरणो ने किया।

गृह्यसूत्रकारों की सावधानी—गृह्यान्तर्गत नामकरण सस्कार के प्रकरण में कल्पसूत्रकारो ने एक सामान्य नियम स्थिर कर दिया कि साधारण लोग तद्धितान्त नाम न रखे। केवल तद्-तद् गोत्र वाले अपने नामो के साथ तद्धित रूप जोड सकते है। यथा—

न तद्धितान्तम्। कौषीतकि गृह्यसूत्र १।१६।१३॥

अर्थात—तद्धित प्रत्ययान्त नाम न रखा जाए।

अस्तु। अब प्रस्तुत विषय पर आते है।

सन्तति—भरद्वाज बहुसन्तति वाला था। उसके मन्त्रद्रष्टा पुत्रो तथा रात्रि नाम्नी मन्त्रद्रष्ट्री पुत्री का उल्लेख मिलता है। इनके विशेष वत्त के लिए देखो

पं० युधिष्ठिरकृत स० व्या० इ० पृ० ६५। तथा ऋ० स० का वचन—

सुहोत्रादयोऽनुक्तगोत्रा भारद्वाजाः पौत्रा बृहस्पतेः।
द्वौ षन्तेर्वा भरतस्य ।६।५२।।

काल—त्रेता का कुछ काल व्यतीत होने पर भरद्वाज का जन्म हुआ। तब से भारतयुद्ध से लगभग २०० वर्ष पूर्व तक भरद्वाज जीवित रहा।

भरद्वाज जी के देहावसान विषय पर महाभारत आदिपर्व का सुन्दर प्रमाण श्री प० भगवद्दत्तजी ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० १४६ पर दिया है—

ततो व्यतीते पृषते स राजा द्रुपदोऽभवत्।
पञ्चालेषु महाबाहुरुत्तरेषु नरेश्वरः।
भरद्वाजोऽपि भगवानारुरोह दिवं तदा ॥ अ० १३०।

अर्थात्—यज्ञसेन-द्रुपद के पिता राजा पृषत् के दिवंगत होने के समय अर्थात् भारतयुद्ध मे लगभग २०० वर्ष पूर्व भरद्वाज भी परलोक सिधारा।

आयु—बार्हस्पत्य भरद्वाज अमितायु था। चरकसहिता सू० १।२६ मे इसका उल्लेख है। ऐतरेय आरण्यक १।२।२ मे भरद्वाज को दीर्घजीवितम लिखा है—

भरद्वाजो ह वा ऋषीणामनूचानतमो दीर्घजीवितमस्तपस्वितम आस।

अर्थात्—भरद्वाज ऋषियों मे अनूचानतम, दीर्घजीवितम, तथा तपस्वितम था।

टिप्पण—ध्यान रखना चाहिए कि भरद्वाज ऋषियो मे दीर्घजीवितम था। वह प्रजापतियो, पितरों, देवर्षियो अथवा देवो में दीर्घजीवितम नही था।

भरद्वाज इन्द्र का प्रिय मित्र था। इन्द्र ने भरद्वाज को आयुष्य रसायन सेवन कराया। इससे भरद्वाज ने कई पुरुषायुष उपलब्ध की। ऋषियो तथा देवो के दीर्घजीवन विषयक सत्य पर सर्वप्रथम प्रकाश डालने वाले श्री प० भगवद्दत्त जी ने तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।११।४५ के प्रमाण से लिखा है—

भरद्वाज तीन आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्य-सेवन कर चुका था। वह जीर्ण-शरीर वृद्ध और चलने-फिरने में अशक्त लेटा हुआ था। इन्द्र उसके समीप आकर बोला, हे भरद्वाज यदि तुझे चौथी आयु दे दूँ।

इससे स्पष्ट है कि परम रसायनज्ञ देवराज इन्द्र ने पहले तीन वार भरद्वाज को युवा किया था। वह चौथी वार युवा करने के लिए पूछता है। उसने रसायन बल से भरद्वाज का काया-कल्प कराया। न केवल रसायन-प्रयोग ही कराया अपितु दीर्घायु-प्रद यज्ञ भी कराया। पूर्व पृ०३७ पर लिख चुके हैं कि भरद्वाज ने इन्द्रोपदिष्ट सौत्रामणि यज्ञ करके सर्वायु प्राप्त की।

ताण्डय ब्राह्मण १३।११।११ में—**भरद्वाज लोम** है। वही कण्डिका १३ के अनुसार यह लोम दीर्घायु-प्रद साम-मन्त्र से सम्बद्ध है।

निश्चय है कि बार्हस्पत्य भरद्वाज की अति दीर्घ आयु थी। श्री प० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने भरद्वाज की आयु लगभग एक सहस्र वर्ष लिखी है[1] परन्तु पूर्व प्रमाणो से लिखा जा चुका है कि चक्रवर्ती सम्राट् भरत के कुछ पूर्व से भारत युद्ध के लगभग २०० वर्ष पूर्व तक भरद्वाज जीवित रहा। यह आयु-परिमाण लगभग ४५०० वर्ष है।

क्या यह असम्भव है—पूर्व-प्रदर्शित तथ्य असत्य नही। इस के कारण है। उनका उल्लेख पहले हो चुका है। यहाँ सक्षेप मे पुन स्पष्ट करते है।

भरद्वाज—

१. ऋषि था।

२. उसे इन्द्र ने तीन वार आयु-दान किया।

तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण के एतद्विषयक वचनो मे अविश्वास करने का कोई हेतु नही है।

३. उग्रतपस्या करता था।

४. आयुर्वेद-ज्ञाता था।

आयुर्वेद-ज्ञान का महत्व—आयुर्वेद उस विज्ञान का नाम है जिसके द्वारा आयु की रक्षा के विषय मे पूर्ण ज्ञान होता है। चरक सहिता, सू० ३०।३३ में आयुर्वेद शब्द की अति सुन्दर व्युत्पत्ति निरूपित की गई है। यथा—

तत्रायुर्वेदयतीत्यायुर्वेद ....। यतश्चायुष्याण्यनायुष्याणि च द्रव्यगुणकर्माणि वेदयत्यतोऽप्यायुर्वेदः।

अर्थात्—जो आयु का ज्ञान कराता है उसे आयुर्वेद कहते है।......। और क्योकि आयु के लिए हितकर तथा आयु को न्यून करने वाले द्रव्य, गुण एव कर्मों को बताता है, इस कारण भी आयुर्वेद कहाता है।

इसी की सुन्दर व्याख्या काश्यप सहिता, विमान स्थान पृ० ४२ पर भी की गई है—

विद् ज्ञाने धातु', 'विद्लृ' लाभे च, आयुरनेन ज्ञानेन विद्यते ज्ञायते विन्दते लभ्यते न रिष्यतीत्यायुर्वेद.।

अर्थात्—विद् धातु ज्ञानार्थक तथा 'विदलृ' लाभार्थक है। इस ज्ञान से आयु होती है, तथा जानी जाती है अथवा आयु प्राप्त की जाती है, वा (इसके ज्ञान से) आयु का ह्रास नही होता, अत. यह आयुर्वेद कहाता है।

---

१. व्या० शा० का इतिहास, पृ० ६८।

साराश यह कि आयुर्वेद मे स्वास्थ्य-स्थिरीकरण के मार्ग, नियमित-जीवन व्यतीत करने की विधि तथा आतुरो की रोगनिवृत्ति के उपाय वर्णित है। अत. आयुर्वेद-विशेषज्ञो की आवश्यकता रोगी की चिकित्सा के लिए ही नही अपितु प्रत्येक व्यक्ति के वास्तविक स्वास्थ्य-लाभ के लिए भी होती है। अति-प्राचीन काल से आर्य-लोग शरीर-रक्षा विषयक गहन-तत्त्वो से परिचित थे। वे उनका पूर्ण पालन करते थे। अत दीर्घायु होते थे। इस पर भी ऋषि आदि सामान्य मनुष्यो से आचार और नियमो का पालन कही अधिक करते थे। अतएव वे अति दीर्घायु होते थे।

वेद में सहस्रायु होने को प्रार्थना—अथर्ववेद १७।१।२७ मे सहस्रायु होने के लिए प्रार्थना की गई है। यथा—

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥

अर्थात्—मै प्रजापति ब्रह्मा[1] के कवच तथा कश्यप[1] की ज्योति और वर्चस से ढका हुआ, वृद्धावस्था को प्राप्त, पूर्ण शक्तिशाली, श्रेष्ठ कर्म करता हुआ सहस्र वर्ष आयु वाला पृथ्वी पर विचरु।

टिप्पण—यास्कीय निघण्टु के अनुसार वेद म शत तथा सहस्र का अर्थ बहुत भी होता है। परन्तु यहाँ बहुत अर्थ सगत नही। कारण, वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थो मे सर्वत्र शतायु का अर्थ सौ वर्ष की आयु वाला लिया जाता है। अत. सहस्रायु का अर्थ बहुत आयु वाला नही अपितु सहस्र वर्ष की आयु वाला है।

प० भगवद्दत्त जी ने भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय सस्करण, पृ० ७३, टिप्पण २ मे शाखायन आरण्यक २।१७ का प्रमाण दिया है—

तत उ ह दीर्घतमा दश पुरुषायुषाणि जिजीव।

अर्थात्—इस कारण ऋषि दीर्घतमा दश पुरुषो की आयु अर्थात एक सहस्र वर्ष जिया।

एक पुरुष की सामान्य आयु सौ वर्ष से न्यून नही मानी गई। परन्तु कृत-युग आदि मे जब पुरुष-आयु ४०० वर्ष थी, तब सामर्थ्ययुक्त ऋषि ४००० वर्ष तक जीते थे।

वर्तमान ऐतिहासिक, डाक्टर अथवा वैज्ञानिको को इस विषय का अधिक ज्ञान नही, अतः आयु के दैर्घ्य के विषय मे उनके मत महत्व नही रखते।

---

१. वेद मे ये दोनों शब्द सामान्य हैं। व्यक्तिविशेष का नाम नहीं।

प्रश्न—पक्षपाती पाश्चात्य प्रश्न करता है कि यदि पूर्वकाल में आयु इतनी लम्बी हो सकती थी तो वर्तमान काल मे क्यो नही हो सकती ।

उत्तर—हमारा उत्तर है, इस समय पूर्वकाल सदृश ऋषि अथवा देव नही है। कलियुग में उनका अभाव सा हो जाता है । अतः आयु उतनी दीर्घ दिखाई नही देती । फिर भी प्रश्नकर्ता के प्रति हमारा कथन है कि पुरातन काल की सब बाते अब नही हो सकती ।

प्रश्न—पाश्चात्य वैज्ञानिक कहता है । जो पहले हो सका था, वह अब भी हो सकता है ।

उत्तर—हमारा उत्तर है—

(क) विकास पक्ष वालो को सृष्टि-उत्पत्ति का जो प्रकार मान्य है, उस प्रकार से पृथ्वी पर अब मनुष्य की उत्पत्ति नही हो सकती ।

(ख) पहले पशु एक शफ थे ।[१] अब गो आदि पशु दो शफ वाले हो गए है, केवल अश्व आदि एक शफ वाले है ।

(ग) पहले पशु एक रूप रोहित थे ।[२] अब श्वेत, कृष्ण और रोहित हो गए है ।[२] पहले गौए एक वर्ण थी ।[३] अब अनेक वर्ण है ।[३]

(घ) पहले पृथ्वी अलोमिका थी ।[४] पुन पृथ्वी पर ओषधि मात्र थी । अब पृथ्वी पर ओषधि, वनस्पति, पशु, पक्षी तथा मनुष्य आदि है ।

(ङ) पहले कभी इन सब लोको से वृष्टि परे चली गई थी ।[५]

(च) कभी जल क्षीर-रसा थे । ता० ब्रा० १३।४।७।।

ये सारी पूर्वावस्थाए अब नही हो सकती ।

अत निष्कर्ष यह है कि विकासमत वाले उलटे पक्ष में भी हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त स्वीकार करना पड़ेगा कि अनेक बाते अपने समय पर ही होती है । पूर्व-युगो की बाते, अब भी हो, यह आवश्यक नही । वे बातें अगले सृष्टि-चक्र मे अपने समय पर पुन हो सकेगी ।

कृत और त्रेता युग के पुरातन-ऋषियो के शरीर परम बलवती ओषधियो तथा अनुपम अन्नो से बने थे । फलतः वे लोग दीर्घायु थे ।[६] युग के ह्रास के साथ यह बात अब लुप्त है । देवो के शरीर अमृत के कारण अत्यन्त पुष्ट और जरा-रहित हुए ।

---

१. जै० ब्रा० २।१४।।
२. जै० ब्रा० १।१६०।।
३. महा० अनुशासन २०६।२६—।
४. ऐ० ब्रा० २४।२३।।
५. ता० ब्रा० १३।५।१३।।
६. तुलना, च०, चि० १।४।८।।

कलियुग का आयु-परिमाण—कृत, त्रेता तथा द्वापर का मानव आयु-परिमाण क्रमश ४००, ३०० तथा २०० वर्ष है। कलियुग मे मानव आयु-परिमाण सौ वर्ष रह गया है। कलि के आरम्भ मे प्रतिसस्कृत, आयुर्वेदीय चरकसहिता, शा० ६।२६ मे लिखा है—

वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले।

अर्थात्—इस (कलि) काल मे (मानव) आयु का प्रमाण सौ वर्ष है।

प्रतियुगीण नियतायु का उल्लङ्घन सम्भव—यद्यपि प्रत्येक युग का सामान्य मानव-आयु-परिमाण निश्चित है, तथापि युग-प्रभाव के अनुसार निश्चित आयु-परिमाण का उल्लङ्घन प्रत्येक युग मे हो सकता है। चरकसहिता, सू० १।३ की टीका मे चक्रपाणिदत्त लिखता है—

यदा त्वनियतायुषो रसायनमाचरन्ति तदा तत्प्रभावाद्युगप्रभाव-नियतायुर्लङ्घनं भवति।

अर्थात्—जब अनियतायु लोग रसायन-सेवन करते है तब उस रसायन के प्रभाव से (तत् तत्) युग के प्रभाव वाले निश्चित आयु (परिमाण) का उल्लङ्घन हो जाता है।

तिब्बत मे अनेक लामाओ की आयु आज भी डेढ सौ वर्ष की होती है। अन्तत. निश्चय है कि इस युग मे भी सौ वर्ष से अधिक आयु हो सकती है। तथा ऐसे लोग कही-कही देख भी जाते है।

शास्त्री उदयवीरजी की सूझ

दीर्घायु-विषयक तथ्य का पूर्ण-ज्ञान न होने से अनेक पाश्चात्य तथा एतद्देशीय लेखक समूचे आर्य-इतिहास को विस्मृति का क्रीडास्थल पुकार उठते है। अभी-अभी योग्य सस्कृतज्ञ श्री प० उदयवीरजी शास्त्री ने 'साख्यदर्शन का इतिहास' मे लिखा है—

१. यद्यपि अभी तक दशरथ और महाभारत युद्धकाल के अन्तर का पूर्ण निश्चय नही, पर इतना निश्चय अवश्य है, कि वह अन्तर काल इतना अधिक था, कि उतने समय तक कोई व्यक्ति जीवित नही रह सकता। पृ० ४८७।

२. ब्रह्मा को आदिसर्ग अथवा सत्ययुग के आरम्भ मे मानकर यह स्वीकार किया जाना कि महाभारत-कालिक व्यास उसकी चौथी पीढी मे था, इतना सत्य नही कहा जा सकता। पृ० ४८८।

३. परन्तु यह वसिष्ठ ब्रह्मा का पुत्र था, अथवा दशरथ-कालिक वसिष्ठ था, इतना असत्य किसी पुराण के मुँह मे ही समा सकता है। पृ० ४८८।

(घ) कृष्ण द्वैपायन व्यास ब्रह्मा की वश-परम्परा मे ही हुए है। गोत्र-प्रदर्शक श्रौतसूत्रादि सम्पूर्ण ग्रन्थो में यह वशक्रम सत्य स्वीकार किया गया है। यह क्रम निम्नलिखित है—
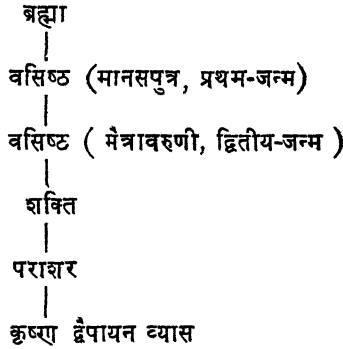
यदि किसी को यह वश-परम्परा मान्य नही तो उसे वसिष्ठ-पुत्र शक्ति के अतिरिक्त कोई अन्य शक्ति बताना पडेगा। इस विषय मे अनुमान-मात्र से काम नही चल सकता। पूर्व लिख चुके है कि सत्य-वक्ता आर्य ऋषि इतिहास की रक्षा मे तत्पर समान-नामो का पार्थक्य प्रदर्शित करने के लिए उन नामो के साथ किसी विशेषण का प्रयोग प्राय करते थे। शक्ति के नाम के साथ पार्थक्य-प्रदर्शक ऐसा कोई विशेषण प्राचीन वाड्मय मे प्रयुक्त नही हुआ। अत शक्ति एक था।[1]

यही वश-परम्परा वैदिक ऋषियो को मान्य है। ऋक्सर्वानुक्रमणी का कर्ता इसी परम्परा को सत्य मानता है। मानव-आयु-परिमाण ४०० वर्ष मानने वाले श्री स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी ने भी इस वश-परम्परा को माना है।[2]

(ङ) अब प० जी की अगली धारणा को लेते है। भारतीय इतिहास के पारगत लेखक साहित्य मे लिखे गए नामो को सिलसिलेवार नही जोड़ते। प्रत्युत इतिहास मे लिखे नामो को पुनः विद्वानो के सामने लाते है। इतिहास मे लिखे नाम पहले ही सिलसिलेवार जुडे है। अत उनका क्रम जोडा नही जाता। इतिहास पहले से ही शुद्ध, सत्य और जुडा हुआ है। इतिहास पुस्तको मे लेखक-प्रमाद से कही-कही जो भूल हो गई है, ऐतिहासिक उसे दूर करते है।

(च) आर्य लोग आरम्भ से अपने इतिहास को पूर्ण सुरक्षित रखते आए

१. इक्ष्वाकु की ४२वीं पीढ़ी में सुदास तथा ६३वीं मे दाशरथि राम था। ऋक् स० ६।४२ के अनुसार राम से पूर्व सौदासों द्वारा शक्ति की मृत्यु हुई।

२. सत्यार्थप्रकाश, एकादशसमुल्लास ।

है। विद्याध्ययन मे इतिहास-पुराण को विशेष स्थान दिया जाता था। इतिहास का श्रवण और लेखन परम्परा से अविच्छिन्न चला आता है।

विशेष-विशेष ऋषियो के साथ इतिहास-पुराणज्ञ विशेषण पाया जाता है। पूर्व पृ० ११२ पर लिख चुके है कि नारद सनत्कुमार को कहता है कि मै इतिहास पुराण जानता हूँ। इसी विशेषता के कारण हमारे यहाँ विद्या-वशावलियाँ तथा कुल-वशावलियाँ पृथक्-पृथक् बनती रही है। जिस जाति ने अपने इतिहास को सुरक्षित रखने के लिए इतना सूक्ष्म वर्गीकरण किया था, उस जाति के परम पुनीत वशधरो के सम्बद्ध इतिहास को विस्मृति का क्रीडास्थल कहना चिररक्षित ऐतिहासिक परम्परा पर हडताल फेरना है। आर्य जाति के पुरातन इतिहास के सुरक्षित रहने के कारण ही आज भी सारे ससार को आर्यों के गौरव के सामने झुकना पडता है। यदि शास्त्री जी के अनुसार मान ले कि इतिहास भूलता जाता है तो यह इतिहास न रहेगा, खिलवाड बन जाएगा। हमारी इस पुस्तक मे ब्रह्मा से लेकर चरक आदि पर्यन्त के सम्बद्ध आयुर्वेदीय ऐतिहासिक नामो को जनता के समक्ष पुन रखने का यत्न किया गया है।

(छ) पुरातन इतिहास-क्रम ऋषियो द्वारा लेख-बद्ध किया गया था। अत वह अव्यवहित क्रमानुसार जुडा हुआ है। आर्य वाङ्मय के अनेक ग्रन्थो के नष्ट हो जाने पर भी इतिहास-ग्रन्थो में वह पूर्ण सम्बद्ध है। वास्तव मे भारत का नवीन इतिहास जुडा हुआ नही है। अत. उसे जोडने की आवश्यकता पडती है। प्राचीन इतिहास के जोडने की नही। फलत ऋषियो के उस इतिहास को समझ न सकना मानव-बुद्धि का फेर है।

प० उदयवीरजी ने दीर्घायु को न मानने के लिए कोई युक्ति उपस्थित नही की। केवल दीर्घायु को न मानने की मनोवृत्ति का परिचय दिया है।

पार्जिटर—पू० पृ० ११ पर पार्जिटर महोदय का वाक्य लिख चुके है। उसमें भी लेखक की दीर्घायु न मानने की मनोवृत्ति का ही दिग्दर्शन है। युक्ति वहाँ भी नही दी गई।

कीथ—श्री प० भगवद्दत्तजी ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० १४० पर टिप्पणी सख्या १ मे कीथ का एक वाक्य उद्धृत किया है। उसका भावार्थ निम्नलिखित है—

आर्य लोग वारम्वार दीर्घायु होने के लिए प्रार्थना करते हैं। वेद-मन्त्रों में इस पर बहुत बल दिया जाता है। अतः प्रतीत होता है कि उनकी आयु अति न्यून होती थी।

टिप्पण—दीर्घायु के लिए वारम्वार की गई प्रार्थना का अभिप्राय इतना

मात्र है कि आर्य लोग आयु की दीर्घता के महत्व को समझे। अत ईश्वर द्वारा वेदमन्त्रो मे उपदेश है कि प्रत्येक मनुष्य की आयु अवश्यमेव दीर्घ हो, तथा वह तदर्थ भारी परिश्रम करे।

सातवलेकर—श्री प० पाद दामोदर सातवलेकरजी भी दीर्घ आयु के सिद्धान्त में विश्वास नही रखते। वे आयु का अधिकाधिक परिमाण २०० वर्ष का मानते है।[1] उन्होंने भी इतिहास के इस क्षेत्र मे सम्पूर्ण आर्य वाङ्मय को परे फेका है। पूर्व-प्रमाणो से हम सिद्ध कर चुके है कि आर्य वाङ्मय दीर्घायु-विषयक हमारे पक्ष के प्रमाणो से ओतप्रोत है, अत. वर्तमान मिथ्या-तर्क के कारण उन सब ग्रन्थो की अवहेलना नही की जा सकती।

गुरु

१. **इन्द्र**—भरद्वाज ने इन्द्र से अथाह ज्ञान प्राप्त किया—

(क) **आयुर्वेद**—पूर्व प्रमाणों से लिख चुके है कि भरद्वाज ने इन्द्र से त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेद सीखा।

(ख) **व्याकरण**—ऋक्तन्त्र के अनुसार भरद्वाज ने इन्द्र से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया।[2]

(ग) **यज्ञ-ज्ञान**—इनके अतिरिक्त भरद्वाज ने दीर्घायु-विषयक यज्ञ-ज्ञान भी इन्द्र से प्राप्त किया।

(घ) **वेद की अनन्तता का उपदेश**—तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१०।११ के अनुसार भरद्वाज की तृतीय पुरुषायुष की समाप्ति पर इन्द्र ने उसको वेद की अनन्तता का उपदेश किया।

२. **तृणञ्जय**—वायुपुराण १०३।६३ के अनुसार तृणञ्जय ने भरद्वाज के लिए पुराण का प्रवचन किया।

शिष्य

१ **आयुर्वेद**—भरद्वाज ने आयुर्वेद ज्ञान कई शिष्यो को दिया—

(क) **अनेक ऋषि**—चरक संहिता सू० अध्याय प्रथम मे वर्णित, हिमवत्पार्श्व पर होने वाले सम्मेलन मे एकत्रित अनेक ऋषियो ने भरद्वाज से आयुर्वेद सीखा।

(ख) **आत्रेय पुनर्वसु**—चरकसहिता सू० १।३० के अनुसार भरद्वाज से

---

१. देखो, मानव आयुष्य की वैदिक मर्यादा।

२. इसके प्रमाण पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र का इतिहास पृ० ६६ पर देखो।

आयुर्वेद सीखने वाले शिष्यो मे आत्रेय पुनर्वसु प्रमुख था।

(ग) धन्वन्तरि द्वितीय—पूर्व-प्रमाणो से लिख चुके है कि धन्वन्तरि द्वितीय ने अपने पिता के पुरोहित, इसी भरद्वाज से आयुर्वेद-ज्ञान उपलब्ध किया था।

२. व्याकरण—ऋक्तन्त्र १।४ के अनुसार भरद्वाज ने अनेक ऋषियो को व्याकरण पढाया था।

३ वायुपुराण—१०३।६३ मे लिखा है कि भरद्वाज ने गौतम को पुराण पढाया।

स्थान—वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग ५४ मे लिखा है कि दशरथ के काल मे भरद्वाज का आश्रम प्रयाग के निकट गङ्गा और यमुना के सङ्गम पर था।

विशेष घटना

१. उन्नीसवें परिवर्त का व्यास—पूर्व पृ० १३८ पर कुछ व्यासो की एक सूचि प्रस्तुत की गई है। भारतीय इतिहास को समझने के लिए समय-समय पर होने वाले इन व्यासो का परिचय अत्यन्त आवश्यक है। ये व्यास चरणो, वेद की शाखाओ, ब्राह्मण-ग्रन्थो और कल्पसूत्र आदिको का प्रवचन तथा सकलन तथा अन्य अनेक तन्त्रो और शास्त्रो का प्रवचन भी करते थे। एक ओर ये वैदिक ग्रन्थो के प्रवचन-कर्ता थे, तो दूसरी ओर लोकभाषा में लिखे गए धर्मशास्त्रो, आयुर्वेद ग्रन्थो, ज्योतिष ग्रन्थो तथा इतिहास पुराणो के भी कर्ता थे। इसी कारण वात्स्यायन मुनि न्यायदर्शन २ । २ । ६७ के भाष्य मे लिखते है कि वैदिक ग्रन्थो के प्रवचन कर्ताओ और इतिहास-पुराण के कर्ताओ का अभेद है।[1]

२. तरखान से गो-ग्रहण—मनुस्मृति १०।१०७ मे लिखा है कि एक वार भरद्वाज पुत्रो-सहित क्षुधा-पीडित हो निर्जन वन मे घूम रहा था। ऐसी अवस्था मे उसे बृव नामक तरखान से अनेक गौएं लेनी पडी—

> भरद्वाजः क्षुधार्तस्तु सपुत्रो विजने वने।
> बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह बृवोस्तक्ष्णो महातपाः॥

३. भृगु-भरद्वाज संवाद—महाभारत, शा० अ० १७५-१८५ तक भृगु तथा भरद्वाज का अति सुन्दर विज्ञानपूर्ण सवाद वर्णित है।

---

१. देखो, पं० भगवद्दत्त कृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० ७२-७६।

ब्रह्मा की समता को प्राप्त—बौधायन धर्मसूत्र ४।६।६ में लिखा है—

मन्त्रमार्गप्रमाणं तु विधाने समुदीरितम् ।
भरद्वाजादयो येन ब्रह्मणस्समतां गताः ॥

स्पष्ट है कि भरद्वाज आदि ऋषि वेद-मन्त्रो के मार्ग से ब्रह्मा की समता को प्राप्त हुए ।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—भावप्रकाश १।५५ मे लिखा है कि भरद्वाज ने इन्द्र से उपलब्ध ज्ञान तन्त्ररूप में उपबद्ध किया—

(क) तत्तन्त्रजनितज्ञानचक्षुषा ऋषयोऽखिलाः ।
गुणान्द्रव्याणि, कर्माणि दृष्ट्वा तद्विधिमाश्रिताः ॥

अष्टाङ्गसङ्ग्रह उत्तरस्थान, अ० ३६ पृ० २७० पर किसी टीका से भरद्वाज का मत उद्धृत है—

पृथग्दोषसंसर्गसन्निपातरक्तविपद्रुमप्रसवाघ्राणजत्वभेदेनास्या नवविधत्वमाख्यातवान् भरद्वाजः ।

चरकसहिता, सिद्धिस्थान १।३२५ की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त भरद्वाज का एक वचन उद्धृत करता है—

. यदुक्तं भरद्वाजेन—

अप्रदुष्टेन भावेन प्रसन्नेनान्तरात्मना ।
शिष्येण सम्यक् पृष्टस्य गुरोर्बुद्धिः प्रकाशते ॥ इति ॥

इन वचनो से स्पष्ट है कि ये वचन भरद्वाज के किसी आयुर्वेदीय ग्रन्थ से उद्धृत है। भरद्वाज की इस आयुर्वेदीय रचना का नाम अभी ज्ञात नही हो सका।

(ख) भेषजकल्प—भरद्वाज का यह ग्रन्थ मद्रास पुस्तक-भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि सख्या १३१७६, १३१८० तथा १३१८१ के अन्तर्गत है ।

(ग) भारद्वाजीय प्रकरण—मद्रास पुस्तकभण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि सख्या १३१७८ के अन्तर्गत भारद्वाजीय प्रकरण का उल्लेख है।

२. धनुर्वेद—महाभारत शान्तिपर्व २१०।२१ के अनुसार भरद्वाज ने धनुर्वेद का प्रवचन किया ।

शान्तिपर्व १६४।८१ मे लिखा है कि भरद्वाज ने रुशदश्व से असि-शास्त्र प्राप्त किया ।

३. राजशास्त्र—भरद्वाज को राजशास्त्र-प्रणेता कहा गया है।

महाभारत शा० ५८।२, ३ मे इसका उल्लेख है—

विशालाक्षश्च भगवान्काव्यश्चैव महातपाः ।
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च तथा प्राचेतसो मनुः ॥
भरद्वाजश्च भगवांस्तथा गौरशिरा मुनिः ।
राजशास्त्रप्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिनः ॥

अर्थात्—विशालाक्ष [शिव], महातपस्वी काव्य [उशना], सहस्राक्ष महेन्द्र, प्राचेतस मनु, भगवान् भरद्वाज तथा मुनि गौरशिरा राजशास्त्र के प्रणेता है। ये सब वेद के जानने वाले तथा वेद के प्रवचनकर्ता है।

टिप्पण—महाभारत पूना सस्करण के मूल पाठ मे भरद्वाज पाठ है परन्तु पाठान्तरो मे भारद्वाज है। अभिमन्यु-पौत्र जनमेजयकृत नीतिप्रकाशिका मे भी भारद्वाज पाठ है—

बृहस्पतिश्च शुक्रश्च भारद्वाजो महातपाः ।
वेदव्यासश्च भगवान् तथा गौरशिरा मुनिः ।
एते हि राजशास्त्राणां प्रणेतार परन्तपाः ॥

विष्णगुप्तकृत अर्थशास्त्र मे भारद्वाज के अर्थशास्त्र विषयक मत बहुधा उद्धृत है, अत निश्चय से नही कह सकते कि भरद्वाज राजशास्त्र का प्रणेता था अथवा भारद्वाज द्रोण।

४ यन्त्र सर्वस्व—भरद्वाज के कला-कौशल विषयक बृहद् ग्रन्थ का नाम यन्त्रसर्वस्व' था। इसका कुछ भाग बडोदा के पुस्तकालय मे सुरक्षित है। इसका विमान विषय से सम्बद्ध, स्वल्पतम उपलब्ध भाग श्री प० प्रियरत्न जी आर्ष (वर्तमान स्वामी ब्रह्ममुनि जी) ने विमानशास्त्र के नाम से प्रकाशित किया है।

५. पुराण—पूर्व लिख चुके है कि भरद्वाज पुराण-प्रवक्ता था।

६. शिक्षा—भण्डारकर रिसर्च इंस्टीच्यूट पूना से एक भरद्वाज शिक्षा प्रकाशित हुई है। उसके अन्तिम श्लोक तथा टीकाकार नागेश्वर भट्ट के मतानुसार यह शिक्षा भरद्वाज प्रणीत है।[1]

७. उपलेख सूत्र—बडोदा के राजकीय पुस्तक भण्डार मे उपलेख सूत्र

---

१. देखो पं० युधिष्ठिर जी मीमांसककृत संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इ० पृ० ६३।

सभाष्य विद्यमान है।[१] तदनुसार मूल सूत्र भरद्वाज-रचित है।

८ **मन्त्रद्रष्टा**—ऋग्वेद के छटे मण्डल के अधिकाश सूक्तो के द्रष्टा भरद्वाज तथा उसके पुत्र है।

आकस्फोर्ड अध्यापक मोनिअर विलियम्स की घबराहट—ईसाई महोपाध्याय मो० वि० पाश्चात्य मिथ्या भाषा-मत के भय के कारण लिखता है—

भरद्वाज The supposed author of RV. vi, I–30...

अर्थात्—भरद्वाज ऋग्वेद मण्डल छ के सूक्तो का अनुमानित कर्ता है। इति।

अध्यापक को क्या ज्ञान नही था कि ऋषि मन्त्रद्रष्टा थे, मन्त्रकर्ता नही। पुन उन्हे कर्ता लिखना महापक्षपात है। तथा भरद्वाज अनुमानित-द्रष्टा नही था। वह तो सत्य इतिहास के अनुसार वास्तविक द्रष्टा था। इन पाश्चात्य लेखको ने ऐसी अगणित भूले की है।

पूर्व लिख चुके है कि भरद्वाज उन्नीसवें परिवर्त का व्यास था। अत उसने अनेक ग्रन्थ रचे होगे। उनका ज्ञान हमे अभी नही हो सका।

योग—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने 'बृहत् फलघृत' तथा 'फलघृत' नामक भरद्वाज के दो योग उद्धृत किए है।

इति कविराज सूरमचन्दकृते आयुर्वेदेतिहासेऽष्टमोऽध्यायः।

१. देखो, सन् १६४२ में मुद्रित सूचिपत्र भाग प्रथम, पृ० ३८, प्रवेश-संख्या ५४२।

नवम अध्याय

३१. धन्वन्तरि द्वितीय

वंश—देवयुग मे अमृत-मन्थन के समय अमृत निकाल कर लाने वाले धन्वन्तरि का वर्णन हो चुका। सुश्रुतसहिता, तथा पुराण आदि के पाठो से यह स्पष्ट है कि उसी धन्वन्तरि ने मनुष्यलोक मे पुन जन्म लिया।

चन्द्रवंशी धन्वन्तरि—पुराणो की वशावलियो के अनुसार धन्वन्तरि द्वितीय का जन्म काशी के चन्द्रवशी राजकुल मे हुआ। हरिवंश तथा पुराणो के अनुसार उस कुल का वशवृक्ष निम्नलिखित है—

इन वशावलियो में स्वल्प भेद है। कही दीर्घतपा का पुत्र धन्वन्तरि माना

---

१ हरिवंश १।३२।१८-२२,२८ ॥

२. हरिवंश १।२९।५-१० ॥

३. ब्रह्माण्ड पुराण ३।६६।३—॥ ४. वायु ९२ । १८—॥

गया है और कही दीर्घतपा का पुत्र धन्व तथा धन्व का पुत्र धन्वन्तरि। भागवत तथा गरुड पुराण मे दीर्घतपा का पुत्र धन्वन्तरि आयुर्वेद-प्रवर्तक माना गया है। अत यह भेद विचारणीय है।

महाभारत उद्योगपर्व अ० ११७ का निम्नलिखित श्लोक भी द्रष्टव्य है—

महाबलो महावीर्य काशीनामीश्वरः प्रभुः।
दिवोदास इति ख्यातो भैमसेनिः नराधिपः॥

इस श्लोक के अनुसार वायुपुराण के पाठ मे भीमरथ और दिवोदास को एक मानना सत्य नही दीखता। वायु मे दिवोदास नाम छूट गया है। काठकसहिता ७।१।८ मे भी भीमसेन का पुत्र दिवोदास लिखा है।

ऋक् सर्वानुक्रमणी के अनुसार प्रतर्दन ऋषि था। उसका पिता दिवोदास था। यथा—प्रतर्दनो दैवोदासिः। ६।६६॥

आयुर्वेद-प्रवर्तक—इतना निश्चय है कि यह धन्वन्तरि आयुर्वेद-प्रवर्तक था। इसने प्रसिद्ध बार्हस्पत्य भरद्वाज से भिषक्-क्रिया सहित आयुर्वेद प्राप्त किया। तदनु उसका अष्टाङ्ग विभाग करके उसे शिष्यो को दिया।

सुश्रुत सं० का धन्वन्तरि—विश्वामित्र-पुत्र सुश्रुत का गुरु धन्वन्तरि था। परन्तु उसका मूलनाम दिवोदास था। धन्वन्तरि उसका औपचारिक नाम था। वह काशिराज था। उसका एक विशषण अमरवर भी है। सुश्रुतसहिता, सू०. १।३ मे लिखा है—

अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनववैतरणौरभ्रपौष्कलावतकरवीर्यगोपुररक्षित-सुश्रुतप्रभृतय ऊचु'।

अर्थात्—भगवान्, अमरश्रेष्ठ, ऋषिगणो से घिरे आश्रम मे बैठे हुए, काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि को औपधेनव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुररक्षित, सुश्रुत आदि बोले।

स्पष्ट है कि काशिनरेश दिवोदास धन्वन्तरि उस समय आश्रमस्थ=वानप्रस्थ हो चुका था।

भावप्रकाश १।७८ से पूर्ण निश्चय हो जाता है कि सुश्रुत-गुरु दिवोदास उपचार रूप से धन्वन्तरि कहाता था। यथा—

तत्र नाम्ना दिवोदास काशिराजोऽस्ति बाहुज.।
स हि धन्वन्तरिः साक्षादायुर्वेदविदां वरः।

अर्थात्—वहाँ [काशि मे] दिवोदास नाम वाला, क्षत्रियवशोत्पन्न काशि-राज है। वह साक्षात् धन्वन्तरि है, तथा आयुर्वेद जानने वालो मे श्रेष्ठ है।

धन्वन्तरि तथा दिवोदास—उपरिलिखित सम्पूर्ण प्रकरण पढने से स्पष्ट है कि द्वितीय धन्वन्तरि को सुश्रुत का गुरु मानना कुछ आपत्तिजनक है, क्योकि उसका दिवोदास नाम अभी तक कही दिखाई नही दिया। अब प्रश्न यह है कि यहाँ किस काशिराज दिवोदास ने धन्वन्तरि नाम ग्रहण किया। पूर्व पृष्ठ १६० पर लिखी वशावली मे धन्वन्तरि की चतुर्थ पीढी मे दिवोदास नाम दिखाई देता है। गृह्यसूत्रोके अनुसार किसी व्यक्ति का प्रपौत्र अपने प्रपितामह का नाम रख सकता है। अत सम्भव है कि धन्वन्तरि-प्रपौत्र दिवोदास का नाम भी धन्वन्तरि हो गया हो। अथवा प्रकाशिराट्-पुत्र अथवा प्रपौत्र धन्वन्तरि भी दिवोदास कहाता हो। वाग्भट के पितामह का नाम भी वाग्भट था।

राजगुरु हेमराज जी का मत—राजगुरु जी काश्यपसहिता उपोद्घात पृ० ५८ पर लिखते हैं—

धन्वन्तरेः सन्निकृष्टसन्ततित्वेन, तदीयसम्प्रदायप्रकाशकत्वेन धन्वन्तरिस्थानापन्नतया धन्वन्तरेरवताररूपत्वेन सम्मान्य सुश्रुतसंहितायां धन्वन्तरिं दिवोदासं सुश्रुतप्रभृतय ऊचुः।

अर्थात्—धन्वन्तरि के कुल मे होने से, तथा उसके सम्प्रदाय का प्रकाशक होने से, धन्वन्तरि का स्थानापन्न व्यक्ति धन्वन्तरि का अवतार-रूप समझा गया। अतएव सुश्रुत सहिता मे लिखा है कि—धन्वन्तरि दिवोदास को सुश्रुत आदि बोले।

इस वचन का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि धन्वन्तरि प्रपौत्र तथा धन्वन्तरि सम्प्रदाय का होनें से दिवोदास ही धन्वन्तरि कहाया।

पूर्वोक्त धन्वन्तरि-द्वय को पृथक् मानने मे आपत्ति

(क) हरिवश तथा पुराणो के वचनो से यह स्पष्ट है कि सौनहोत्रि दीर्घतपा ने उग्र तपस्या की। फलत मथित-समुद्र मे से अमृत निकालने वाले धन्वन्तरि का दूसरा जन्म उसके यहाँ हुआ।

(ख) सुश्रुत-सहिता १।२१ में सुश्रुत-गुरु दिवोदास धन्वन्तरि को ही देव-चिकित्सक तथा आदि-काल वाला देव धन्वन्तरि कहा गया है। यथा—

अहं हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्याङ्गमङ्गैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम्॥

इससे स्पष्ट है कि सुश्रुत-गुरु धन्वन्तरि का प्रथम जन्म देवलोक मे हुआ था, तथा दूसरा पृथ्वी पर हुआ।

इससे आगे सुश्रुत सहिता उत्तरतन्त्र ३९।३ मे लिखा है—

येनामृतमपां मध्यादुद्धृतं पूर्वजन्मनि।

अर्थात्—(सुश्रुत आदि ने ऐसे गुरु से प्रश्न पूछा) जिसने पूर्वजन्म म [मथित] जल में से अमृत निकाला था।

फलत इस विषय मे अभी कुछ निश्चय नही हो सकता कि धन्वन्तरि द्वितीय तथा सुश्रुत-गुरु दिवोदास अथवा धन्वन्तरि तृतीय ? भिन्न-भिन्न व्यक्ति है, अथवा नही।

काल—धन्वन्तरि द्वितीय का काल-निर्णय करना कठिन नही। दाशरथि राम त्रेता-द्वापर की सन्धि मे हुए। काशिपति प्रतर्दन उनका मित्र था। त्रेता-द्वापर का सन्धिकाल ३०० वर्ष का था। अत प्रतर्दन से लगभग चार पीढी पूर्व अर्थात् त्रेता के अन्त मे अथवा विक्रम मे लगभग ५७४४ वर्ष पूर्व धन्वन्तरि द्वितीय का काल था। रामाभिषेक मे प्रत० उपस्थित था(रा०उ० ३८।१५।)

स्थान—काशी अर्थात् वर्तमान वाराणसी—बनारस, काशि—नृपो की राजधानी थी। काशिराज होने के कारण धन्वन्तरि-द्वितीय का निवास काशी में ही था। वानप्रस्थ होने पर काशिराज धन्वन्तरि का आश्रम काशी के समीप होना सम्भव है। यह आश्रम ऋषि-गण-परिवृत रहता था। वहा अनेक शिष्य धन्वन्तरि से विद्याध्ययन करते थे।

विशेषण

हरिवश १।२६ मे धन्वन्तरि को **विद्वान्** कहा है। प्राचीन वाङ्मय में मन्त्रद्रष्टा तथा शास्त्र-रचयिता को विद्वान् कहा जाता है।[1] पूर्व पृ० १३७ पर लिख चुके है कि धन्वन्तरि **सर्वरोगप्रणाशन** अर्थात् सब रोगो को नष्ट करने वाला था। भागवत पुराण मे धन्वन्तरि को **आयुर्वेद-प्रवर्तक** कहा है। पूर्व पृ० १६१ पर उद्धृत सुश्रुत स० के वचन में **काशिराज, दिवोदास** तथा **धन्वन्तरि** पद एक ही व्यक्तिके लिए प्रयुक्त हुए है। सुश्रुत सहिता चि० २।३ में धन्वन्तरि को **धर्मभृतां वरिष्ठ** अर्थात् परम धर्माचरणयुक्त तथा **वाग्विशारद** पदो से विशेषित किया है। सुश्रुत स० नि० १।३ मे धन्वन्तरि को **राजर्षि** पद से स्मरण किया है। सुश्रुत स० क० ४।३ से ज्ञात होता है कि धन्वन्तरि **महाप्राज्ञ** तथा **सर्वशास्त्रविशारद** था। सुश्रुत सं०, उ० १८।३ में धन्वन्तरि को **तपोदृष्टि, उदारधी** तथा **मुनि** कहा है। सुश्रुत सं० उ० ६६।३ मे दिवोदास धन्वन्तरि के ज्ञान-समुद्र का अति सुन्दर वर्णन है—

अष्टाङ्गवेदविद्वांसं दिवोदासं महौजसम्।
छिन्नशास्त्रार्थसंदेहं सूक्ष्मागाधागमोदधिम्॥

---

१. देखो भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय स० पृ० ४८।

अर्थात्—अष्टाङ्ग आयुर्वेद के विद्वान्, महा ओजस्वी, शास्त्रो के अर्थ-विषयक सदेह को दूर करने वाले, सूक्ष्म तथा अगाध आगम के समुद्र [अर्थात् अनेक कठिन तथा सूक्ष्म शास्त्रो के ज्ञाता], दिवोदास को [सुश्रुत बोला]।

इन विशेषणो से स्पष्ट है कि काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि परम तपस्वी, शास्त्रो का मर्मज्ञ, भाषा का पण्डित, धर्मात्मा तथा अष्टाग आयुर्वेदज्ञ था।

धन्वन्तरि दिवोदास तथा काशिराज

पूर्वलिखित विशेषणो मे धन्वन्तरि, काशिराज तथा दिवोदास पद स्पष्टतया एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुए है। परन्तु अन्य स्थलो मे धन्वन्तरि, दिवोदास तथा काशिराज पदो का प्रयोग तीन पृथक् व्यक्तियो के लिए हुआ है। ऐसे स्थल नीचे उद्धृत किए जाते है। यथा—

१. ब्रह्मवैवर्त की सूचि—पूर्व पृ० ९२ पर उद्धृत ब्रह्मवैवर्त पुराण की भास्कर-शिष्यो की सूचि मे धन्वन्तरि, दिवोदास तथा काशिराज नामक तीन व्यक्तियो को भास्कर-शिष्य कहा है। उक्त सूचि मे भास्कर के सोलह शिष्य कहे है। पूर्वोक्त तीनो नामो को पृथक् गिने विना सोलह की सख्या पूर्ण नही होती।

२. षड्व्याधि-घातक—पूर्व पृ० ११८ पर उद्धृत एक वचन मे छ व्याधिघातक आचार्यो के नाम है। इनमे भी धन्वन्तरि, दिवोदास तथा काशिराज नामक तीन आचार्यो को पृथक् स्मरण किया है।

३. हर्नलि का मत—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग द्वितीय, पृ० ३१२ पर हर्नलि का एक वाक्य उद्धृत करते है—

"The work called Navanıtaka (ın the Bower MS.) professes to be by Sushruta,to whom ıt was declared by the Munı Kasıraja. The latter ıs clearly a proper name, not a tıtle 'a kıng of Kasıʼ."

अर्थात्—नावनीतक का प्रवचन सुश्रुत ने किया। सुश्रुत को इसका उपदेश मुनि काशिराज नें किया। यहा काशिराज शब्द व्यक्ति-विशेष का नाम है, विशेषण नही।

गिरिन्द्रनाथ की भूल—मुखोपाध्याय जी का अभिप्राय यह है कि हर्नलि के अनुसार नावनीतक ग्रन्थ अपने को सुश्रुत की रचना सिद्ध करता है। यह ठीक प्रतीत नही होता। Bower MS. के तीन भाग है। पहले भाग मे पांच पत्र है। उनमे पहले लशुन कल्प उल्लिखित है। वस्तुत: इस लशुनकल्प का

उपदेश काशिराज ने सुश्रुत को किया। यथा—

मुनिमुपगत. सुश्रुतः काशिराजं किन्नु-एतत् स्यात्।
अथ स भगवानाह।

नावनीतक अथवा सिद्ध-सङ्कर्ष ग्रन्थ इन पाच पत्रोके पश्चात्, द्वितीय भाग से आरभ होता है। हर्नलि इस बात को जानता था। गिरिन्द्रनाथजी ने हर्नलि का भाव नही समझा। हर्नलि लिखता है—The present work professes to be by Sushruta. (Bower MS. part I, p. 11)

नाथजी ने भूल से हर्नलि का पाठ बदला है—

गिरिन्द्रनाथ-उद्धृत हर्नलि-पाठ	हर्नलि का पाठ
the work called नावनीतक (in the Bower MS.) professes	the present work professes

अत निश्चय है कि नावनीतक सुश्रुत का ग्रन्थ नही है।

वास्तव में काशिराज और धन्वन्तरि के नामैक्य का विषय विचारणीय है।

गुरु

१. भरद्वाज—पूर्व पृ० १३७ पर लिखे अनेक प्रमाणो से स्पष्ट है कि धन्वन्तरि द्वितीय ने भिषक्-क्रिया सहित आयुर्वेद-ज्ञान भरद्वाज से प्राप्त किया। दिवोदास भी भरद्वाज का शिष्य था। अनुशासन प० अ० २६ मे दिवोदास स्वय भरद्वाज से कहता है—

शिष्यस्नेहेन भगवंस्त्वं मां रक्षितुमर्हसि।

२. इन्द्र—सुश्रुतस० सू० १।२० मे धन्वन्तरि-तृतीय ? स्वय कहता है—

ब्रह्मा प्रोवाच, ततः प्रजापतिरधिजगे, तस्मादश्विनौ, अश्विभ्यामिन्द्रः, इन्द्रादहं, मया त्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः।

अर्थात्—ब्रह्मा ने आयुर्वेद का प्रवचन किया, उससे प्रजापति दक्ष ने प्राप्त किया, उसमे अश्विद्वय ने, अश्विद्वय से इन्द्र ने, तथा इन्द्र से मैने [दिवोदास = धन्वन्तरि ने]। अब मै प्रजाओ के कल्याण के लिए इस लोक मे अर्थियो [आयुर्वेद जानने की इच्छा करने वालो को] दूँगा।

अष्टाङ्ग सङ्ग्रह, सू० अ० १, पृ० २ पर भी धन्वन्तरि द्वितीय का, साक्षात् इन्द्र से आयुर्वेदोपदेश ग्रहण करने का वर्णन है—

नरेषु पीड्यमानेषु पुरस्कृत्य पुनर्वसुम्
धन्वन्तरि-भरद्वाज-निमि-काश्यप-कश्यपाः।
महर्षयो महात्मानस्तथालम्बायनादयः।
शतक्रतुमुपाजग्मुश्शरण्यममरेश्वरम्॥

इस श्लोक मे धन्वन्तरि, भरद्वाज, निमि, काश्यप, कश्यप तथा आलम्बायन आदि अन्य महर्षियो का पुनर्वसु की प्रमुखता मे इन्द्र से आयुर्वेद सीखने का उल्लेख है।

सम्भवत. सुश्रुतसंहिता के पूर्वलिखित उद्धरणान्तर्गत अह पद संग्रह-वर्णित परम्परा का पोषक है।

३. भास्कर—पूर्व पृ० ९२ पर लिखी गई भास्कर-शिष्यो की सूचि सख्या २ में दिवोदास का नाम है। इसी सूचि की सख्या ३ मे काशिराज को भी भास्कर-शिष्य कहा है। इससे इतना निश्चय अवश्य है कि दिवोदास ने भास्कर से चिकित्सा का विशेष ज्ञान प्राप्त किया।

शिष्य

(क) धन्वन्तरि द्वितीय ने अपने गुरु भरद्वाज से आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त करके उसका अष्टाङ्ग-विभाग किया। यह ज्ञान उसने अनेक शिष्यो को दिया।

(ख) पूर्व पृ० १६१ पर लिखे गए सुश्रुतसहिता के वचन मे दिवोदास=धन्वन्तरि तृतीय ? के औपधेनव आदि सात शिष्यो के नाम लिख चुके है। उन नामो के आगे प्रभृति शब्द का प्रयोग हुआ है। इस शब्द की व्याख्या मे डल्हणाचार्य लिखता है—

प्रभृतिग्रहणात् निमि-काङ्कायन-गार्ग्य-गालवाः।

अर्थात्—प्रभृति शब्द के प्रयोग से निमि, काङ्कायन, गार्ग्य तथा गालव अभिप्रेत है।

(ग) भावप्रकाश १।८० में लिखा है कि सुश्रुत के साथ एकशत मुनिपुत्र दिवोदास=धन्वन्तरि तृतीय ? से आयुर्वेद सीखने आए।

फलत. दिवोदास=धन्वन्तरि तृतीय ? ने अनेक शिष्यो को आयुर्वेद-ज्ञान दिया। इन शिष्यो मे विश्वामित्र-सुत सुश्रुत प्रधान था। सब सहाध्यायियो ने एकमति से उसे प्रश्न पूछने के लिए अपना प्रतिनिधि बनाया। शिष्यो की इच्छानुसार धन्वन्तरि तृतीय ? ने उन्हे शल्यशास्त्र का उपदेश दिया।

आयुर्वेद के विभिन्न अङ्गों का ज्ञाता धन्वन्तरि

१. अष्टाङ्गायुर्वेद-ज्ञाता—पूर्व पृ० १६३ पर उद्धृत विशेषणो से स्पष्ट है कि धन्वन्तरि तृतीय ? आयुर्वेद के आठो अङ्गो का ज्ञाता था। अष्टाङ्गसग्रह के पूर्वलिखित पाठ मे आगे स्पष्ट लिखा है कि पुनर्वसु की प्रमुखता में इन्द्र के पास जाकर धन्वन्तरि आदि ऋषियो ने ब्रह्मा का आठ अङ्गो वाला आयुर्वेद सीखा।

२. अश्व तथा गजायुर्वेदज्ञ—काश्यपसहिता उपोद्घात पृ० ६९ पर श्री

राजगुरु हेमराजजी ने आग्नेय पुराण (अ० २७९-२९२) के प्रमाण से लिखा है कि सुश्रुत-गुरु धन्वन्तरि न केवल मनुष्य-आयुर्वेद का ज्ञाता था अपितु अश्व तथा गज आयुर्वेदज्ञ भी था।

३. भिषक्-क्रिया विशेषज्ञ—पूर्व पृ०१६१ पर लिख चुके है कि शिष्यो की प्रार्थना पर दिवोदास=धन्वन्तरि तृतीय ? ने सुश्रुत आदि को शल्य-शास्त्र का विशेष उपदेश किया। पुराणो के पाठो से स्पष्ट है कि भरद्वाज से धन्वन्तरि द्वितीय ने भिषक् क्रिया अर्थात् शल्य-शास्त्र सीखा। अत आयुर्वेद के आठो अङ्गों का ज्ञान रखते हुए भी धन्वन्तरि ने भिषक् क्रिया का विशेष ज्ञान दिया। यह ज्ञानामृत सुश्रुतसहिता मे आज भी विद्यमान है।

भिषक् क्रिया=शल्य शास्त्र—आयुर्वेद के ग्रन्थो मे भिषक् क्रिया तथा भिषग् विद्या शब्द प्रयुक्त हुए है। प्रतीत होता है भिषक् क्रिया का मूलार्थ शल्य क्रिया तथा भिषग्-विद्या का प्रधानार्थ काय-चिकित्सा है।

४. व्याधिप्रणाशबीज-ज्ञाता—आयुर्वेद का सामान्य ज्ञान अनेक व्यक्तियो को था परन्तु विशेष व्यक्ति केवल चिकित्सा-विषयक ज्ञान मे विशेषता प्राप्त करते थे। ब्रह्मवैवर्त के प्रमाण से स्पष्ट है कि ऐसे लोगो को व्याधिप्रणाश-बीज-ज्ञाता कहा है। पूर्व पृ०११८ पर उद्धृत प्रमाण मे इन्ही को व्याधि-घातक कहा है। धन्वन्तरि ने भी गुरु भास्कर से चिकित्सा का विशेष ज्ञान सीखा। फलत उसकी गणना छ व्याधिघातको मे हुई।

धन्वन्तरि-सम्प्रदाय—पूर्व पृ० ११७ पर लिख चुके है कि अपरकाल मे धन्वन्तरि शब्द का प्रयोग शल्यतन्त्रज्ञो के लिए सामान्यरूपेण होने लगा।

आयुर्वेदीय चरकसहिता, चि० ५।६३ मे शल्यतन्त्रज्ञो के लिए धान्वन्तरीय शब्द का प्रयोग हुआ है—

दाहे धान्वन्तरीयाणामत्रापि भिषजां बलम्।

अर्थात्—दाह आदि की आवश्यकता हो तो धन्वन्तरि सम्प्रदाय वालो का प्रामाण्य है।

अष्टाङ्गसग्रह सू०, अ० २८, पृ० २१६ पर धन्वन्तरि सम्प्रदाय वालो का मत प्रदर्शित करने के लिए लिखा है—

धन्वन्तरीयाः पुनराहुः।

स्पष्ट है कि मानव ससार मे शल्यशास्त्र का अधिक ज्ञान धन्वन्तरि ने विस्तृत किया। अत. उसके शास्त्र को जानने वालो को धान्वन्तरीय कहा गया।

धन्वन्तरि के वचन

सुश्रुत स० के अतिरिक्त अन्य आयुर्वेदीय संहिताओ, उनकी टीकाओ तथा

सग्रह ग्रन्थो मे अनेक स्थानो पर धन्वन्तरि के वचन, धन्वन्तरि-सहिता के उद्धरण तथा धन्वन्तरि-सम्प्रदाय वालो के मत उद्धृत है। उन ग्रन्थो के ऐसे कतिपय वचन कालक्रमानुसार नीचे उद्धृत किए जाते है। यथा—

१ अष्टाङ्गहृदय ५।४४ की सर्वाङ्गसुन्दरा टीका मे धन्वन्तरि के ग्रन्थ का वचन उद्धृत है—

तथा चोक्तं धान्वन्तरे—

शालिपिष्टमयं सर्वं गुरुभावाद्विदह्यते ।इति।

धन्वन्तरि का यह वचन सुश्रुतसहिता मे उपलब्ध नही होता।

२. वाग्भट अपने अष्टागहृदय, शा० ३।१६ मे धन्वन्तरि का मत प्रदर्शित करता है। यथा—

धन्वन्तरिस्तु त्रीण्याह सन्धीनां च शतद्वयम्।
दशोत्तरम्।

३. अष्टाङ्गहृदय, शा० ३।५० मे वाग्भट ने पुन धन्वन्तरि का मत उद्धृत किया है—

तदधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता।
सैव धन्वन्तरिमते कला पित्तधराह्वया॥

४. अष्टाङ्गहृदय सू० ६।१५८ की सर्वाङ्गसुन्दरा व्याख्या मे धन्वन्तरि-निघण्टु का एक प्रमाण उल्लिखित है—

तथा च धन्वन्तरिराख्यत् (ध० निघण्टौ व० १।२१२)—बिभीतक कर्षफल इत्यादि।

५. अष्टाङ्गसङ्ग्रह उत्तर स्थान, अ० ३४ की इन्दु टीका के पश्चात सम्पादक ने किसी अन्य टीका का पाठ उद्धृत किया है—

धन्वन्तरिणाप्युक्तम्—

ग्रन्थिः सिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात् सरुजश्चलश्च।
तत्रारुजश्चाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः॥ इति।

यह वचन सुश्रुतसहिता मे से लिया गया है।

६ अष्टाङ्गसग्रह उ० अ० १६ पर इन्दु टीका के पश्चात् सम्पादक द्वारा उद्धृत किसी अन्य टीका मे धन्वन्तरि का निम्नलिखित वचन उल्लिखित है—

धन्वन्तरिणा तु धूमरचिकित्सायामुक्तम्—
घृतं पिबेद् धूमदर्शी नरस्तु कुर्याद्विधिं पित्तहरं च सर्वम्॥इति।

हमारी अब तक की खोज मे धन्वन्तरि का यह वचन सुश्रुतसहिता में उपलब्ध नही हुआ।

७. अष्टाङ्गसग्रह उ०, अ० ३६ पृ० २७१ पर धन्वन्तरि का अधोलिखित वचन भी उद्धृत है—

ऊक्तं च धन्वन्तरिणा—
विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षवङ्क्षणसन्धिषु।
विदारिका सा विज्ञेया सरुजा सर्वलक्षणा॥ इति।

यह वचन किञ्चित् पाठ-भेद से सुश्रुतसहिता नि० १३।२४,२५ मे उपलब्ध होता है।

८. आयुर्वेदीय चरकसहिता, शा० ६।२१ मे पुनर्वसु आत्रेय गर्भशरीर-विचायक प्रकरण आरम्भ करने से पूर्व सूत्रकार ऋषियो के विप्रतिवादो का वर्णन करते हुए कहता है—

सर्वाङ्गाभिनिर्वृत्तिर्युगपदिति धन्वन्तरिः।

अर्थात्—सारे अङ्गो का निर्माण तत्काल होता है, यह धन्वन्तरि का मत है।

आत्रेय पुनर्वसु इस विषय मे धन्वन्तरि के मत को मान्य कहते है।

६. पूर्व० पृ० १६७ पर लिख चुके है कि चरकसहिता चि० ५।६३ मे धन्वन्तरि-सम्प्रदायानुवर्त्तियो का एक वचन उल्लिखित है।

१०. चरकसहिता वि० ७।११ मे धन्वन्तरि के लिए आहुति विहित है।

११. आयुर्वेदीय काश्यपसहिता पृ० ३६ पर भी धन्वन्तरि के निमित्त आहुति-दान विहित है।

१२. अ० स०उ०, पृ० ३१४ पर धन्वन्तरि मत लिखा है।

इन वचनो को पढकर निम्नलिखित परिणाम निकलते है—

१. धन्वन्तरि के कई ऐसे वचन है जो सुश्रुत सहिता मे उपलब्ध नही। अत धन्वन्तरि की अपनी रचना अवश्य थी।

२. धान्वन्तरीय पद से शल्यशास्त्रज्ञ अभिप्रेत है।

३. धन्वन्तरि-निघण्टु अवश्य था। एक निघण्टु प्रकाशित भी हो चुका है। यह विचारणीय है कि वह विक्रमकालिक धन्वन्तरि का था अथवा किसी पूर्ववर्ती धन्वन्तरि का।

४. चरकसहिता मे उद्धृत धान्वन्तरीय-मत मे स्पष्ट है कि पुनर्वसु आत्रेय के काल मे ही धन्वन्तरि-सम्प्रदाय पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका था।

ग्रन्थ

१. **चिकित्सा दर्शन**—पूर्व० पृ० ६२ पर उद्धृत ब्रह्मवैवर्तपुराण की सूचि के अनुसार दिवोदास ने चिकित्सादर्शन नामक तन्त्र रचा।

२. **चिकित्साकौमुदी**—ब्रह्मवैवर्त पु० की पूर्वोक्त सूचि मे काशिराज द्वारा चिकित्साकौमुदी नामक तन्त्र-निर्माण का उल्लेख है।

३. **योगचिन्तामणि**—पूना के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि मे सख्या १५७ के अन्तर्गत किसी धन्वन्तरि के योगचिन्तामणि नामक ग्रन्थ का उल्लेख है।

४. **सन्निपातकलिका**—धन्वन्तरि की इस रचना का उल्लेख पूना के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि सख्या ३०६ के अन्तर्गत है।

५. **गुटिकाधिकार**—बडोदा के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि भाग द्वितीय, सन् १९५०, प्रवेशसख्या १५६५ के अन्तर्गत किसी धन्वन्तरि के इस ग्रन्थ का उल्लेख है।

६. **धातुकल्प**—धन्वन्तरि का यह ग्रन्थ बडोदा के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि, भाग द्वितीय, सन् १९५० की प्रवेश सख्या १५७६ (ए) के अन्तर्गत सन्निविष्ट है।

इन हस्तलिखित ग्रन्थो के अतिरिक्त गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने छ निम्नलिखित ग्रन्थो का उल्लेख अपनी हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन भाग २, पृ० ३२८ पर किया है। यथा—

७. **अजीर्णामृतमञ्जरी**—यह काशिराज की रचना है।

८. **रोग निदान**—इसका रचयिता धन्वन्तरि है।

९. **वैद्य चिन्तामणि**—यह भी धन्वन्तरि की कृति है।

१०. **विद्याप्रकाश-चिकित्सा**—इस ग्रन्थ के अन्त मे लिखा है कि यह धन्वन्तरि की रचना है।

११. **धन्वन्तरि-निघण्टु**—धन्वन्तरि की यह रचना प्रकाशित हो चुकी है। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ निम्नलिखित पुस्तकालयो मे है—

बीकानेर—१३९२। इण्डिया आफिस— २७३६, २७३७।

आक्सफोर्ड सूचिपत्र—४५१। मद्रास पुस्तक-भण्डार १३२८३-१३२९४।

बड़ोदा पुस्तकालय—३५५४, इस पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति का उल्लेख मुखोपाध्याय जी ने नही किया।

१२ **वैद्यक भास्करोदय**—यह रचना भी धन्वन्तरि की है।

१३. **चिकित्सासारसंग्रह**—मद्रास पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि संख्या १३१३७-१३१४५ के अन्तर्गत धन्वन्तरि की यह रचना सन्निविष्ट है। मुखोपाध्याय जी लिखते है कि यह नवीन रचना है। वास्तव मे उपरिलिखित सम्पूर्ण गन्थो के विषय मे विचारना होगा कि ये किस-किस धन्वतरि की रचनाए है।

३२. भिषग्विद्या-प्रवर्तक, संसार का महान् वैज्ञानिक पुनर्वसु आत्रेय

त्रेता का अन्त=भारतयुद्ध से लगभग २७०० वर्ष पूर्व

दो विशिष्ट सहाध्यायी—आरम्भ से हम ब्रह्मोपदिष्ट आयुर्वेद-परम्परा का क्रमिक निदर्शन करते आ रहे हैं। ब्रह्मा का विस्तृत आयुर्वेद-ज्ञान यथाक्रम देवलोक में से परमर्षि भरद्वाज द्वारा सर्वाङ्गरूपेण मनुष्यलोक में लाया गया। उस अष्टाङ्गीण ज्ञान में से धन्वन्तरि ने शल्य-चिकित्सा का विशिष्ट उपदेश किया। काय-चिकित्सा के ज्ञान को विस्तृत करने का श्रेय पुनर्वसु आत्रेय को है। मुद्रित आयुर्वेदीय वाङ्मय में से यदि धन्वन्तरि तथा पुनर्वसु की चिकित्सा-पद्धति को निकाल दिया जाए तो आज के वैज्ञानिक-ब्रुव-जगत् से टक्कर लेने का कोई साधन हमारे पास न रहेगा। धन्वन्तरि तथा पुनर्वसु एक ही गुरु भरद्वाज के शिष्य थे। इन्द्र से ज्ञान लेने के लिए भी ये एक साथ गए थे। अतः दोनों सहाध्यायी आचार्यों का एक अध्याय में वर्णन करना उचित है। इनमें से शल्यतन्त्र-प्रवर्तक का वर्णन हम कर चुके हैं, अब भिषग्विद्या-प्रवर्तक का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है।

वंश

अत्रिपुत्र—ब्रह्मा के मानसपुत्र महर्षि अत्रि का वृत्त पूर्व पृ० ६१-६३ पर लिख चुके हैं। स्वनामधन्य पुनर्वसु आत्रेय इन्हीं अत्रि का पुत्र था। आयुर्वेदीय चरकसंहिता सू० ३।२९ का निम्नलिखित वचन पुनर्वसु के अत्रि-पुत्रत्व को सिद्ध करता है। यथा—

इहात्रिजः सिद्धतमानुवाच।

पुनः चरकसंहिता सू० ३०।५० में महर्षि पुनर्वसु को अत्रिसूनु कहा है। तथा देखो, चरकसंहिता, चि० १२।३, ४।। २२।३।। ३०।७।। इत्यादि।।

अश्वघोष का लेख—प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान भिक्षु अश्वघोष (विक्रम से लगभग ३००-४०० वर्ष पूर्व)[1] अपने बुद्धचरित १।४३ में लिखता है—

चिकित्सितं यच्च चकार नात्रिः पश्चात्तदात्रेय ऋषिर्जगाद ।।

अर्थात्—जो चिकित्सा शास्त्र अत्रि ने न लिखा, उसे अत्रिपुत्र ऋषि आत्रेय उपदेश रूप से बोला।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि पुनर्वसु आत्रेय साक्षात् अत्रि ऋषि का पुत्र था।

---

[1] पाश्चात्य ढंग के वर्तमान लेखक इतिहास न जानने के कारण अश्वघोष को विक्रम प्रथम अथवा द्वितीय शती में मानते हैं।

चान्द्रभागी-पुनर्वसु—पुनर्वसु आत्रेय को चान्द्रभागी भी कहा जाता है। चरकसंहिता सू० १३।१०० में पुनर्वसु का यह विशेषण प्रयुक्त हुआ है—

यथाप्रश्नं भगवता व्याहृतं चान्द्रभागिना।

यह वचन स्नेहाध्याय की समाप्ति पर लिखा गया है। इस अध्याय के आरम्भ से पुनर्वसु-आत्रेय का उपदेश चल रहा है। अध्याय के अन्त में प्रयुक्त चान्द्रभागी विशेषण उपदेष्टा पुनर्वसु के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इसी वचन की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—

चान्द्रभागी=पुनर्वसुः।

अर्थात्—पुनर्वसु ही चान्द्रभागी हैं।

इसी तथ्य की पुष्टि में चरकसंहिता के लाहौर-संस्करण के सम्पादक श्री हरिदत्तजी शास्त्री चरकसंहिता के उपोद्घात पृ० च पर भेडसंहिता के दो प्रमाण उद्धृत करते हैं—

गान्धारदेशे राजर्षिर्नग्नजित् स्वर्गमार्गदः।
संगृह्य पादौ पप्रच्छ चान्द्रभागं पुनर्वसुम्॥भेलसंहिता पृ० ३०

इस स्थल में भी पुनर्वसु के लिए चान्द्रभाग विशेषण प्रयुक्त हुआ है। भेलसंहिता पृ ३९ पर भी पुनर्वसु को चान्द्रभाग कहा है—

सुश्रोता नाम मेधावी चान्द्रभागमुवाच ह।

राजगुरुजी का मत—श्री० राजगुरु हेमराज जी काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ७७ पर लिखते हैं कि पुनर्वसु की माता का नाम चन्द्रभागा था। अत. उसे चान्द्रभाग तथा चान्द्रभागी कहा है।

एक अन्य सम्भावना—आगे आत्रेय देश के विषय में यथास्थान लिखेंगे। सम्भवत किसी समय चन्द्रभागा नदी इस प्रदेश के निकट बहती थी। अत. चन्द्रभागा नदी के तटवर्ती प्रदेश में रहने के कारण पुनर्वसु का एक विशेषण चान्द्रभागी हो सकता है। संस्कृत वाङ्मय में ऐसे विशेषणों का प्रयोग प्राय पाया जाता है। देखो अष्टाध्यायी ४।१।११३॥

अत्रि-वंश का विस्तार—पूर्व पृ० ६१ पर लिख चुके हैं कि महर्षि अत्रि का वंश अतिविस्तृत हुआ। बौधायन मुनि (२८०० वर्ष विक्रम पूर्व) अपने श्रौतसूत्र के प्रवराध्याय में लिखते हैं—

अत्रीन्व्याख्यास्यामो अत्रयो भूरयः कृष्णात्रेया गौरात्रेया अरुणात्रेया नीलात्रेया श्वेतात्रेया श्यामात्रेया महात्रेया आत्रेयाः ।

अर्थात्—अब अत्रियों की व्याख्या करेंगे। अत्रि अनेक हैं ·· कृष्णात्रेय,

गौरात्रेय, अरुणात्रेय, नीलात्रेय, श्वेतात्रेय, श्यामात्रेय, महात्रेय, तथा आत्रेय...।

स्पष्ट है कि अत्रि के वंशज कृष्ण-आत्रेय आदि कहाए।

प्रतीत होता है कि कृष्णात्रेय कहाए जाने वालो का पूर्वपुरुष पुनर्वसु अपरनाम कृष्ण था। चरकसहिता के प्रमाणो से स्पष्ट है कि पुनर्वसु साक्षात अत्रि का पुत्र था। आगे स्पष्ट करेगे कि पुनर्वसु आत्रेय ही कृष्ण-आत्रेय कहाता था।

पुनर्वसु आत्रेय अपरनाम कृष्ण-आत्रेय—भरद्वाज के प्रकरण में लिख चुके है कि पुनर्वसु आत्रेय ही भरद्वाज का प्रमुख शिष्य था। आयुर्वेदीय चरकसहिता के अनुसार चरकसहिता के गुरुसूत्र आत्रेय पुनर्वसु के है। आयुर्वेदीय संहिताओ मे कही-कही इन्ही पुनर्वसु आत्रेय को कृष्ण आत्रेय भी कहा है। हम कतिपय ऐसे स्थल नीचे उद्धृत करते है, जहाँ कृष्णात्रेय पद पुनर्वसु आत्रेय के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा—

१. त्रित्वेनाष्टौ समुद्दिष्टाः कृष्णात्रेयेण धीमता। चरक सं० सू० ११।६५॥

२. अग्निवेशाय गुरुणा कृष्णात्रेयेण भाषितम्। च० चि० २८। १५७॥

३. कृष्णात्रेयेण गुरुणा भाषितं वैद्यपूजितम्। च० चि० २८।१६४॥

४. नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम्। च० चि० १५।१३२॥

इनमें से सख्या चार के वचन की व्याख्या मे चक्रपाणिदत्त लिखता है—

५. कृष्णात्रेयः पुनर्वसोरभिन्न एवेति वृद्धाः।

अर्थात्—वृद्धो [चक्रपाणिदत्त से पूर्ववर्ती लेखको] का मत है कि कृष्णात्रेय, पुनर्वसु आत्रेय से भिन्न नही।

चक्रपाणिदत्त का उत्तरवर्ती श्रीकण्ठदत्त व्याख्या-कुसुमावलि मे लिखता है—

६. कृष्णात्रेयः पुनर्वसुः। द्वि० सं०, पृ० ८४।

अर्थात्—कृष्णात्रेय पुनर्वसु है।

चरकसहिता, चि० ३०।४ मे **पुनर्वसु** का पाठान्तर **कृष्णात्रेय** भी है। देखो प० हरिदत्तजी का लाहौर सस्करण, द्वितीयावृत्ति, पृ० १५०१।

इन सब वचनो को पढने से निम्नलिखित परिणाम निकलते है—

१ चरकसहिता सू० अध्याय ११ के आरम्भ मे लिखा है—

अथातस्तिस्रैषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥१॥
इति ह स्माह भगवानात्रेयः ॥२॥

स्पष्ट है कि अग्निवेश के गुरु भगवान् आत्रेय तिस्रैषणीय अध्याय की व्याख्या करते है। इससे आगे समस्त अध्याय में केवल गुरुसूत्र है। अर्थात अग्निवेश के गुरु पुनर्वसु का ही उपदेश है। इस अध्याय की समाप्ति पर संग्रहश्लोको मे सख्या १ वाला निम्नलिखित वचन लिखा है—

त्रित्वेनाष्टौ समुद्दिष्टाः कृष्णात्रेयेण धीमता।

इस प्रसंग से स्पष्ट है कि आरम्भ मे जिस आचार्य को पुनर्वसु आत्रेय के नाम से स्मरण किया है, अध्याय के अन्त मे उसी आचार्य को उसके अपर नाम "**कृष्ण आत्रेय**" से पुकारा है।

२ पूर्व लिखित सख्या २ तथा ३ के वचन स्पष्ट करते है कि अग्निवेश के गुरु का नाम कृष्णात्रेय भी था। चरकसहिता के अनेक प्रकरणो मे पुनर्वसु आत्रेय ही अग्निवेश का गुरु स्वीकृत किया गया है। फलत. पूर्वलिखित वचनो मे स्मृत कृष्ण-आत्रेय अग्निवेश के गुरु पुनर्वसु आत्रेय का ही अपरनाम है।

३. संख्या ५ के वचन से निश्चय है कि चक्रपाणिदत्त के पूर्ववर्ती आचार्य पुनर्वसु आत्रेय का अपरनाम कृष्ण-आत्रेय स्वीकार करते थे।

४. चक्रपाणिदत्त भी इस विषय मे पूर्व आचार्यो से सहमत था, अन्यथा वह इस मत का प्रतिवाद करता।

५. चक्रपाणिदत्त का उत्तरवर्ती श्रीकण्ठदत्त भी पूर्वोक्त परम्परा से सहमत है।

६. चरकसहिता का पाठान्तर इस मत को अति दृढ करता है।

अन्तत यह परिणाम निकलता है कि पुनर्वसु आत्रेय का अपरनाम कृष्ण-आत्रेय था।

हिमवत्पार्श्वस्थ ऋषि-सम्मेलन में दो आत्रेय

पूर्व पृ० १३५ पर चरक-वर्णित ऋषि-सम्मेलन में उपस्थित होने वाले कतिपय ऋषियो मे संख्या ६ तथा १७ के अन्तर्गत दो आत्रेयो का उल्लेख है। पहला आत्रेय चरक-परम्परा का प्रसिद्ध पुनर्वसु आत्रेय है। दूसरा आत्रेय भिक्षुरात्रेय है। चरकसहिता सू० अध्याय २५ मे लिखित विचार-विनिमय करने वाले ऋषियो मे भिक्षुरात्रेय भी सम्मिलित है।

भिक्षु विशेषण साख्य-ज्ञाता सन्यासियो का है। यथा भिक्षु पञ्चशिख, भिक्षु याज्ञवल्क्य आदि। बौद्धो ने इन्ही साख्याचार्यो से यह पद ले लिया है। भिक्षु आत्रेय ऐसा ही महापुरुष था। स्मरण रहे कि आयुर्वेद का साख्य-शास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कृष्णात्रेय को पुनर्वसु से भिन्न मानने वाला पक्ष

गिरिन्द्रनाथ की युक्तियाँ—गिरिन्द्रनाथ जी नें अपनी हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग द्वितीय मे पुनर्वसु आत्रेय तथा कृष्ण-आत्रेय को भिन्न मान कर उनका पृथक्-पृथक् उल्लेख किया है। अपने पक्ष की पुष्टि के लिए वे निम्नलिखित युक्तियाँ उपस्थित करते हैं। यथा—

१. In the Charaka Samhita Punarvasu Atreya appears to have taught six disciples Agnivesha and others; and in that book his name is always written as Punarvasu Atreya and never as Krishna Atreya.

अर्थात्—चरक सहिता से ज्ञात होता है कि पुनर्वसु आत्रेय ने अग्निवेश आदि छ शिष्यो को पढाया। इस पुस्तक में सदा उसका नाम पुनर्वसु आत्रेय लिखा गया है। कृष्णात्रेय नाम कभी नही लिखा गया।

२ इससे आगे मुखोपाध्याय जी फिर लिखते है—

We find from quotations from Krishna Atreya that he belonged to the surgical school and could not have been the same as the Punarvasu Atreya, the speaker in the Agnivesha Tantra. Srikantha Datta in commenting on Kavaladhikara (Vrinda's Sidhayoga) says:—

ननु च तन्त्रान्तरीयै षड्विधः कवलः पठित.। तथा च कृष्णात्रेयः; again **शालाकिभिस्तु प्रतिदोषं पठितानि द्रव्याणि। तथा च कृष्णात्रेयः। इत्यादि।**

अर्थात्—अनेक उद्धरणो से स्पष्ट है कि कृष्ण-आत्रेय शल्य-परम्परानुवर्ती था। अत वह चरकसहिता वर्णित, अग्निवेश-गुरु पुनर्वसु आत्रेय नही हो सकता। कवलाधिकार की व्याख्या मे श्रीकण्ठदत्त का बचन द्रष्टव्य है।

३. **गिरिन्द्रनाथ जी की तीसरी युक्ति**—In the Tattva Chandrika Sivadasa while commenting on दशमूलाष्टपल घृत quoted from ज्वराधिकार of चक्रदत्त 'पञ्च प्रभृतिभ्य यत्रस्य' cites the names of Gopura Rakshita and Krishna Atreya. This proves that Krishna Atreya's work was quite different from that of Charaka.

अर्थात्—तत्त्वचन्द्रिका मे शिवदास ने दशमूलाष्टपल-घृत की व्याख्या की है। यह घृत, चक्रदत्त के ज्वराधिकार प्रकरण के पञ्चप्रभृतिभ्य पत्रस्य'

नामक प्रसङ्ग से उद्धृत है। इसकी व्याख्या मे शिवदास ने गोपुररक्षित, जतूकर्ण, [चरक, सुश्रुत] तथा कृष्णात्रेय के नाम लिखे है। अत सिद्ध होता है कि कृष्ण-आत्रेय की रचना चरक की रचना से सर्वथा भिन्न थी।

गिरिन्द्रनाथ की उलझन—पूर्व पृ० १७३ पर हम श्रीकण्ठदत्त का एक वचन उद्धृत कर चुके हैं कि कृष्ण-आत्रेय पुनर्वसु है। इस वचन से गिरिन्द्रनाथ जी उलझन मे पड गए है। जिस श्रीकण्ठदत्त के लेख से मुखोपाध्याय जी कृष्ण-आत्रेय को पुनर्वसु आत्रेय से भिन्न सिद्ध करना चाहते है, वही श्रीकण्ठदत्त कृष्ण-आत्रेय को पुनर्वसु आत्रेय से अभिन्न मानता है। इस वचन की कठिनाई को जानकर गिरिन्द्रनाथ जी लिखते है—

We cannot explain this identity satisfactorily.

अर्थात्—हम इस ऐक्य की सन्तोषप्रद व्याख्या नही कर सकते।

जोगिन्द्रनाथ सेन का मत—प० जोगिन्द्रनाथ सेन अपनी चरकोपस्कार नाम की चरकसहिता की व्याख्या मे एतद्विषयक कठिनाई को दूर करने के लिए लिखते है—

अत्रि का नाम कृष्ण-अत्रि हो सकता है। अतः आत्रेय कृष्णात्रिपुत्र पुनर्वसु है।

गिरिन्द्रनाथ, जोगिन्द्रनाथ के खण्डन मे—गिरिन्द्रनाथ जी इस विषय मे जोगिन्द्रनाथ से सहमत नही। अत वे फिर लिखते है—

This no doubt reconciles the conflicting statements of commentators but makes Krishna Atreya and Punarvasu Atreya to be the same rishi . . . Nowhere has he been so styled in Charaka Samhita.

अर्थात्—[जोगिन्द्रनाथ जी का] यह मत व्याख्याकारो के परस्पर-विरुद्ध कथनो का समाधान नि सन्देह कर देता है किन्तु कृष्ण-आत्रेय तथा पुनर्वसु आत्रेय को एक ऋषि बना देता है . . . चरकसहिता मे उसका इस प्रकार से उल्लेख कही नही मिलता।

स्पष्ट है कि गिरिन्द्रनाथ जी पुनर्वसु तथा कृष्ण आत्रेय को एक नही मानते। अत. उन्हे जोगिन्द्रनाथ की युक्ति मान्य नही।

नाथ-द्वय की आलोचना

वास्तव मे गिरिन्द्रनाथ तथा जोगिन्द्रनाथ, दोनो महानुभाव, तथ्य से दूर चले गए है। नीचे नाथ-द्वय की एतद्विषयक युक्तियो की क्रमश आलोचना की जाती है—

(क) गिरिन्द्रनाथ जी ने श्रीकण्ठदत्त तथा शिवदास नामक दोनो व्याख्याकारो के वचनो की कल्पित-व्याख्या से स्वयमेव विरोध उत्पन्न किया है। श्रीकण्ठदत्त के दोनो स्थलो को ध्यानपूर्वक पढने से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकण्ठदत्त कभी भी पुनर्वसु तथा कृष्ण-आत्रेय को भिन्न नही मानता। गिरिन्द्रनाथ जी स्वकल्पित मत के कारण चक्कर मे पड गए है।

(ख) जोगिन्द्रनाथ सेन जी का यह मत भी उपपन्न नही कि अत्रि का अपरनाम कृष्ण-अत्रि है, अत पुनर्वसु को कृष्ण-आत्रेय कहा जाता है।

पूर्व पृ० १०२ पर बौधायन श्रौतसूत्र के प्रमाण से लिख चुके है कि अत्रि के वशज कृष्णात्रेय, श्वेतात्रेय, नीलात्रेय तथा अरुणात्रेय आदि कहाए। पुनर्वसु आत्रेय महर्षि अत्रि का साक्षात् पुत्र था। यदि कृष्णात्रेय पद देखकर अत्रि के अपरनाम कृष्ण की कल्पना की जाए तो अत्रि के श्वेत, नील तथा अरुण आदि अनेक अपरनाम होने चाहिएँ। पर यह था नही।

चक्रदत्त पृ० ४३ पर कृष्ण-अत्रि-पुत्र का कुटज-पुटपाक नामक एक योग है। उसका अधोलिखित वचन द्रष्टव्य है—

कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः।

अर्थात्—यह योग कृष्ण-अत्रि-पुत्र को मान्य है। इस वचन से ही प्राय यह कल्पना की जाती है कि अत्रि का अपरनाम कृष्ण-अत्रि है, तथा कृष्ण-अत्रि का पुत्र कृष्ण-आत्रेय हुआ।

इसके विपरीत यदि उपरिलिखित वचन का निम्नलिखित प्रकार से समास तोडा जाए तो सब स्पष्ट हो जाता है—

कृष्ण एव अत्रि-पुत्र इति कृष्णात्रिपुत्रः, तन्मते पूजित इति कृष्णात्रिमतपूजितः।

अन्तत प्रतीत होता है कि पुनर्वसु का अपरनाम कृष्ण था, तथा अत्रि का पुत्र होने से वह आत्रेय कहाता था। अत उसके दो नाम हुए, पुनर्वसु आत्रेय तथा कृष्णात्रेय।

याजुष आत्रेय सहिता के विषय मे प० भगवद्दत्त जी वैदिक वाङमय का इतिहास, भाग प्रथम, पृ० १६८, १६६ पर लिखते है—

"स्कन्द पुराण नागर खण्ड अध्याय ११५ मे अनेक गोत्रो की गणना की गई है। वहाँ लिखा है—

आत्रेया दश संख्याता शुक्लात्रेयास्तथैव च ॥१६॥
कृष्णात्रेयास्तथा पञ्च ॥२६॥

अर्थात्—दश आत्रेय गोत्र वाले, दश ही शुक्ल आत्रेय गोत्र वाले, तथा

पाँच कृष्णात्रेय थे ।

आयुर्वेद की चरकसंहिता जो महाभारत काल मे लिखी गई, पुनर्वसु आत्रेय का ही उपदेश है । हमे इस पुनर्वसु आत्रेय का सम्बन्ध इस [याजुष] आत्रेयी सहिता से प्रतीत होता है । लगभग सातवी शताब्दी का जैन आचार्य अकलङ्क-देव अपने राजवार्तिक के पृ० ५१ और २९४ पर अज्ञान-दृष्टि वाले वैदिक लोगो की ६७ शाखाए गिनाता हुआ, वसु का भी स्मरण करता है । बहुत सम्भव है कि इस नाम मे भी आत्रेय शाखा कभी प्रसिद्ध रही हो । आत्रेय शाखा वाले ही कृष्ण-आत्रेय कहाते होगे । पुनर्वसु को भेलसहिता मे कृष्णात्रेय भी कहा गया है । महाभारत मे लिखा है कि कृष्ण-आत्रेय ने चिकित्सा शास्त्र रचा । इन सब स्थलो के देखने से प्रतीत होता है कि पुनर्वसु, पुनर्वसु आत्रेय, और कृष्ण-आत्रेय एक ही व्यक्ति के नाम है ।"

इस पक्ष की तथ्यता विचारणीय है । श्वेत, कृष्ण, नील आदि अनेक आत्रेय थे । इन सब नामो का वास्तविक कारण अभी अज्ञात है ।

(ग) इसके आगे मुखोपाध्यायजी लिखते है कि कृष्णात्रिपुत्र पद की जोगिन्द्रनाथ सेन निर्दिष्ट व्याख्या से आत्रेय तथा कृष्ण-आत्रेय एक ही ऋषि के नाम हो जाएगे, परन्तु चरकसहिता मे उसका इस प्रकार मे उल्लेख नही ।

पूर्व पृ० १७३ पर चरकसहिता से उद्धृत सख्या २ तथा ३ के वचनो मे कृष्णात्रेय को स्पष्ट शब्दो में अग्निवेश का गुरु कहा है । अत गिरिन्द्रनाथजी का पूर्व लेख मान्य नही । प्रतीत होता है, उनकी दृष्टि मे चरकसहिता का यह पाठ नही पडा ।

गिरिन्द्रनाथ के युक्तित्रय का क्रमिक उत्तर

गिरिन्द्रनाथजी की तीन युक्तियो का उल्लेख पूर्व कर चुके है । उनका क्रमिक उत्तर निम्नलिखित है—

१. मुखोपाध्यायजी की प्रथम युक्ति का उत्तर उनके अन्तिम लेख के उत्तर मे दे चुके है । सक्षेप मे इतना कहना पर्याप्त होगा कि चरकसहिता का निम्नलिखित वचन उनकी पुनरावृत्त युक्ति को खण्डित करता है—

अग्निवेशाय गुरुणा कृष्णात्रेयेण भाषितम् ।

२. अपनी दूसरी युक्ति म गिरिन्द्रनाथ जी कहते है कि कृष्ण-आत्रेय शल्य-परम्परानुवर्ती था, परन्तु अग्निवेश के गुरु पुनर्वसु ने कायचिकित्सा का उपदेश किया, अत उन्हे दो भिन्न व्यक्ति समझना चाहिए ।

(क) एक ही व्यक्ति शल्यतन्त्रज्ञ तथा कायचिकित्सक हो, इसमे कोई आश्चर्य नही । हम आरम्भ से लिखते आ रहे है कि एक-एक ऋषि अनेक विद्याओ

का युगपद् ज्ञाता था। संस्कृत वाङ्मय की विशेषता इसी मे है। ऋषियो की उग्र-तपस्या, समाधिजन्य बुद्धि तथा दीर्घजीवन द्वारा उन्हे यह शक्ति प्राप्त थी। पाश्चात्य प्रभाव के कारण गिरिन्द्रनाथजी को इसमे सन्देह हुआ है। धन्वन्तरि तथा भरद्वाज आदि महर्षि अष्टाङ्ग-आयुर्वेद के ज्ञाता थे। अत कृष्ण-आत्रेय का कायचिकित्सक होते हुए शल्यतन्त्रज्ञ होना पूर्ण सम्भव है।

(ख) कृष्ण-आत्रेय को केवल शल्य-परम्परानुवर्ती लिखते हुए मुखोपाध्याय जी ने महाभारत शा० प० २१२।३३ का निम्नलिखित वचन नही देखा—

कृष्णात्रेयश्चिकित्सितम्।

अर्थात्—कृष्णात्रेय को [परम्परा-क्रम से] चिकित्सा का ज्ञान था।

यदि कृष्ण-आत्रेय केवल शल्यतन्त्रज्ञ होता तो परम इतिहासज्ञ व्यास उसे चिकित्सक न लिखता। आयुर्वेद के आठो अङ्गो मे चिकित्सा शब्द प्रधानतया कायचिकित्सा के साथ प्रयुक्त हुआ है। पुनर्वसु=कृष्ण आत्रेय आयुर्वेद के अन्य अङ्गो का ज्ञाता होते हुए भी कायचिकित्सा-विशेषज्ञ था। इसी कारण पदे-पदे ऐतिहासिक परम्परा को सुरक्षित रखने वाले व्यास ने पुनर्वसु का अपरनाम कृष्ण आत्रेय प्रयुक्त करके उसका विशेषण लिखा, चिकित्सक। यदि कृष्ण-आत्रेय किसी अन्य अङ्ग का विशेषज्ञ होता तो व्यास उसके नाम के साथ वैसा विशेषण अवश्य प्रयुक्त करता।

भेलसंहिता का निर्णय—अग्निवेश का एक सहपाठी भेल था। पुनर्वसु आत्रेय का उपदेश दोनो ने ग्रहण किया। अब भेलसहिता के निम्नलिखित वचन देखने योग्य हैं—

१. सिद्ध्यति प्रतिकुर्वाण इत्यात्रेयस्य शासनम्। पृ० १५।
२. कस्मिन् जनपदे रोगा के भवन्त्यधिका इति।
गुर्दालभेकिना[1] पृष्टो व्याचचक्षे पुनर्वसु.। पृ० २२।
३. शताभ्यधिको दोषो न्यूनश्चैवेति पठ्यते।
कृष्णात्रेयं पुरस्कृत्य कथाश्चक्रुर्महर्षय:। पृ० २६।
४. यमौ तदौ संभवत. कृष्णात्रेयवचो यथा। पृ० ७६।
५. अशीतिकं नरं विद्यात् कृष्णात्रेयवचो यथा। पृ० ६८।

इन पाच स्थानो का पाठ पुनर्वसु और कृष्ण नामो का तत्त्व जानने के लिए पर्याप्त है। भेल पर-तन्त्रकार का प्रमाण नही देता। वह पुनर्वसु आत्रेय,

---

१. गिरिन्द्रनाथ पार्श्ववर्ती मूल हस्तलेख की प्रतिलिपि का पाठ।
गुर्दालुभेः (कि) ना—मुद्रित पाठ।

अथवा कृष्ण आत्रेय का ऐक्य तथा कायचिकित्सा का तन्त्रकार होना निश्चित मानता हूँ ।

सम्भवत आत्रेय ने कायचिकित्सा तथा शालाक्य विषयक दो तन्त्र लिखे ।

३. अपनी तीसरी युक्ति मे मुखोपाध्याय जी कहते है कि तत्त्व-चन्द्रिका मे शिवदास ने अन्य आचार्यो का मत प्रदर्शित करते हुए चरक तथा कृष्ण-आत्रेय का नाम पृथक्-पृथक् ग्रहण किया है। अत प्रतीत होता है कि कृष्ण-आत्रेय की रचना चरक की रचना से सर्वथा भिन्न थी ।

वस्तुत पुनर्वसु अपरनाम कृष्ण-आत्रेय ने अग्निवेश आदि शिष्यो को जो उपदेश दिया, वह गुरुसूत्रो के रूप मे उन शिष्यो की संहिताओ मे अब भी सुरक्षित है, परन्तु पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय की स्वतन्त्र आयुर्वेदीय संहिता अवश्य थी । अत आत्रेय-शिष्य अग्निवेश के पर्याप्त उत्तरवर्ती चरक का यदि किसी विषय मे कृष्ण-आत्रेय से न्यूनाधिक्य हो तो कोई आश्चर्य नही ।

अष्टाङ्गसंग्रह कल्प० अ०८, पृ० ३६८ पर इन्दुटीका मे कृष्णात्रेय का मत बहुधा उद्धृत है । एक स्थल पर कृष्णात्रेय का मत उद्धृत करते हुए इन्दु अपनी टीका मे लिखता है कि यह मत चरक को भी अभिमत है—

१. कृष्णात्रेयमतो वाहटेनाङ्गीकृतो यतश्चरकस्यैष एव पक्षः ।

२ कृष्णात्रेयमतानुसारेणैव द्रव्याणा पलमित्युक्तम् । तदेव च चरकस्याभिमतमेव ।

अर्थात्—१. कृष्णात्रेय का मत वाहट ने स्वीकार किया है क्योकि चरक का भी यही पक्ष है ।

२ कृष्णात्रेय के मत के अनुसार द्रव्यो का एक पल कहा है । यही चरक को सम्मत है । तुलना करो चरक स० चक्र० टीका, पृ० ९४ ।

३. चक्रपाणिदत्त चरकसंहिता चि० ३।१९७-१९९ की व्याख्या में कृष्णात्रेय नामक ग्रन्थ का एक वचन उद्धृत करता है—

कृष्णात्रेये—स्नेहपाकविधौ यत्र प्रमाणं नोदितं क्वचित् ।
स्नेहस्य कुडवं तत्र पचेत् कल्कपलेन तु ॥ इति ।

इन वचनो से स्पष्ट है कि कृष्णात्रेय की स्वतन्त्र संहिता थी, तथा इन स्थलो मे चरक आचार्य कृष्णात्रेय की स्वतन्त्र संहिता स्वीकार करता है । अतः शिवदास द्वारा चरक तथा कृष्णात्रेय के पृथक् नामग्रहण-मात्र से यह अनुमान करना कि कृष्णात्रेय पुनर्वसु आत्रेय का विरोधी अथवा उस से भिन्न है, उचित नही ।

राजगुरुजी का मत—श्री राजगुरु हेमराज जी भी काश्यपसंहिता के

उपोद्घात पृ० ७७ पर लिखते है—

कृष्णात्रेय. पुनर्वसुरात्रेयश्च विभिन्नौ आचार्यौ इत्यपि वक्तुं शक्यते ।

अर्थात्—कृष्णात्रेय तथा पुनर्वसु आत्रेय दो भिन्न आचार्य है, यह कहा जा सकता है ।

राजगुरु जी ने अपने मत की पुष्टि म मुखोपाध्याय जी द्वारा उपस्थापित युक्तियो का ही आश्रय लिया है। अत गिरिन्द्रनाथ के खण्डनपरक पूर्व-प्रदर्शित तर्कों से राजगुरुजी का मत भी खण्डित हो जाता है ।

काल—पुनर्वसु-कृष्ण आत्रेय का वही काल ह जो धन्वन्तरि द्वितीय तथा आयुर्वेदावतार का काल है। पुनर्वसु आत्रेय ने द्वापर के आरम्भ मे अग्निवेश आदि शिष्यो को आयुर्वेदोपदेश किया ।

भगवान् पुनर्वसु आत्रेय बौद्धकालीन नहीं

आयुर्वेदीय ग्रन्थो के महान् उद्धारक तथा आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के अनुपम स्तम्भ श्री यादवजी त्रिकमजी आचार्य ने चक्रपाणि-टीकायुत चरक सहिता के द्वितीय सस्करण (सन् १९३५)की भूमिका मे पूर्व पक्षियोका अनुमान लिखा है कि तक्षशिला-विश्वविद्यालय का बुद्ध-कालीन आचार्य आत्रेय चरकसहिता का उपदेष्टा पुनर्वसु आत्रेय हो सकता है। यह मत भेलसहिता के प्राक्टिप्पण मे परलोकगत श्री आशुतोष मुखोपाध्याय ने (सन् १९३०) प्रकट किया है—

"Atreya is said to have flourished in the sixth century B C. and to have had six pupils."

अर्थात्—आत्रेय ईसा-पूर्व छटी शती मे था। उसके छ शिष्य थे ।

हर्नलि का अनुमान—तक्षशिला के अध्यापक जीवक-गुरु आत्रेय का उल्लेख करके हर्नलि (सन् १९०७) लिखता है ।

He, accordingly, should have flourished at some time in the sixth century B. C. (आस्टिआलोजि, पृ० ७,८)

अर्थात्—आत्रेय को ईसा-पूर्व छटी शती मे होना चाहिए ।

टिप्पण—हर्नलि के असिद्ध अनुमान से इतिहास मे एक भयानक भ्रान्ति उत्पन्न हुई ।

पूर्वोक्त अनुमान का खण्डन, राजगुरुजी द्वारा

राजगुरु श्री हेमराज जी ने अनेक युक्तिया देकर इस मत का खण्डन किया है।[1] हम राजगुरु जी के निष्कर्ष से सहमत है, परन्तु जीवक-गुरु कोई आत्रेय-

---

१. काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ७९–८२ ।

नामक व्यक्ति न था, उनके इस तर्क को उत्पन्न नही मानते ।

संस्कृत ग्रन्थ मूल-सर्वास्तिवाद की, विनयवस्तु के, चीवरवस्तु मे जीवक की वैद्यक शिक्षा आदि का विस्तृत इतिवृत्त मिलता है। उसमे जीवक गुरु तक्षशिला के वैद्य आचार्य आत्रेय का स्पष्ट उल्लेख है—

तेन श्रुतं तक्षशिलायाम् आत्रेयो नाम वैद्यराजः। (पृ०२९)

अर्थात्—उस (जीवक ने) सुना कि तक्षशिला मे आत्रेय नामक वैद्यराज है।

आगे भी प्रसङ्गानुपूर्वी से जीवक-गुरु आत्रेय का उल्लेख है ।

इस बुद्धकालीन वैद्यराज आत्रेय की उन सर्वतन्त्रार्थवित्, अग्निहोत्रपरायण, भगवान् पुनर्वसु आत्रेय से कैसी तुलना ।

१ आगे पृ० १८५ पर उल्लिखित आत्रेय पुनर्वसु के जितने विशेषण प्रयुक्त हुए है उनमे से एक भी विशेषण का प्रयोग तक्षशिला के वैद्यराज आत्रेय के नाम के साथ नही हुआ ।

२. आत्रेय पुनर्वसु के प्रसिद्ध छ शिष्यो का उल्लेख आयुर्वेद के अनेक ग्रन्थो में है। परन्तु तक्षशिला के वैद्याचार्य आत्रेय के जीवक-व्यतिरिक्त किसी अन्य प्रसिद्ध शिष्य का कही भी उल्लेख नही।

३ आत्रेय पुनर्वसु पर्यटन-शील था। उसका छात्रावास तक्षशिला का भवन नही था। वह तो पार्वत्य तथा अन्य प्रदेशो मे इतस्तत विचरण करते हुए शिष्यो को शिक्षा दिया करता था। इसके विपरीत तक्षशिला का आचार्य विद्यालय मे बैठ कर शिक्षा देता था।

४ पुनर्वसु आत्रेय के दो शिष्य अग्निवेश और पराशर दशरथ-सखा महाराज रोमपाद के दरबार मे उपस्थित थे। ऐसा उल्लेख पालकाप्य ग्रंथ के अन्त मे है। कहा वह काल और कहा तथागत बुद्ध का काल ।

५. जो लोग तक्षशिला के अध्यापक आत्रेय का पुनर्वसु आत्रेय से ऐक्य मानते है, उन्हे स्वतन्त्र प्रमाणो से सिद्ध करना होगा, कि वह आत्रेय ऋषि अत्रि का पुत्र था। केवल अनुमानमात्र साधक प्रमाण नही हो सकता ।

इस पाश्चात्य मत का सुन्दर खण्डन वैद्य यादवजी ने सटीक चरकसहिता के तृतीय सस्करण (सन् १९४१) की भूमिका मे कर दिया है। हमारे उपर्युक्त तर्कों से भी इस मत का खण्डन हो गया।

आत्रेय द्वापर के आरम्भ मे था।

स्थान—चरकसहिता के पाठ से ज्ञात होता है कि पुनर्वसु आत्रेय जिज्ञासु-प्रकृति का था। वह अन्य अनेक ऋषियो के साथ स्थान-स्थान पर ओषधियो के अन्वेषण तथा सामयिक सम्मेलनो मे भाग लेने के लिए घूमता रहता था। काशिराज धन्वन्तरि के समान उसने आश्रम मे बैठ कर उपदेश नही दिया। अपितु शिष्य-मण्डल के साथ यत्र-तत्र विचरण करते हुए वह अनेक आयुर्वेदीय विषयो का उपदेश करता रहा। अग्निवेश आदि ने जिन भिन्न-भिन्न स्थानो पर आचार्य पुनर्वसु से उपदेश ग्रहण किया, उसका मुख्यतया चरकसहिता के आधार पर निम्नलिखित सग्रह प्रस्तुत किया जाता है—

१. वने चैत्ररथे रम्ये समीयुर्विजिहीर्षवः। च० सू० २६।६॥

अर्थात्—सुन्दर चैत्ररथ वन मे रोगो का हरण करने की इच्छा वाले [ऋषि] एकत्र हुए।

सिद्धविद्याधराकीर्णे कैलासे नन्दनोपमे। तप्यमानं तपस्तीव्रम्······
च० चि० १३।३॥

अर्थात्—सिद्धो तथा विद्याधरो से आवृत नन्दनवन सदृश कैलास पर तीव्र तप तपते हुए [पुनर्वसु को अग्निवेश बोला]।

कैलासे किन्नराकीर्णे बहुप्रस्रवणौषधे। च० चि० २१।३॥

अर्थात—बहुत झरनो तथा औषधो से युक्त, किन्नरगण-आकीर्ण कैलास पर [विहार करते हुए पुनर्वसु को अग्निवेश बोला]।

कृतक्षणं शैलवरस्य रम्ये स्थितं धनेशायतनस्य पार्श्वे। च० सि० ३।३॥

अर्थात्—पर्वत श्रेष्ठ हिमालय के कुबेर-भवन वाले सुन्दर पार्श्व पर ठहरे हुए [पुनर्वसु को अग्निवेश बोला]।

इन सन्दर्भो से निश्चय है कि अनेक वार कैलास-पर्वत के कुबर-भवन के समीपवर्ती प्रदेशो मे पुनर्वसु ने अग्निवेश को उपदेश दिया।

२. जनपदमण्डले पञ्चालक्षेत्रे द्विजातिवराध्युषिते काम्पिल्य-राजधान्यां भगवान् पुनर्वसुरात्रेयोऽन्तेवासिगणपरिवृतः पश्चिमे घर्ममासे गङ्गातीरे वनविचारमनुविचरन् शिष्यमग्निवेशमब्रवीत्। च० वि० ३।३॥

अर्थात्—पञ्चाल जनपद मण्डल की द्विजातिवर-सेवित काम्पिल्य नामक राजधानी में शिष्यगण सहित भगवान् पुनर्वसु आत्रेय गर्मी के महीने मे गङ्गा तटवर्ती वन मे विचरण करता हुआ, शिष्य अग्निवेश को बोला।

३. विहरन्तं जितात्मानं पञ्चगंगे पुनर्वसुम्। चि० ४।३॥

स्पष्ट है कि पञ्चगङ्ग प्रदेश में विचरण करते हुए आत्रेय ने शिष्य

अग्निवेश को उपदेश किया।

४. ऋषिगणपरिवृतमुत्तरे हिमवत पार्श्वे विनयादुपेत्य। च० चि० १६।३॥

अर्थात्—हिमालय के उत्तर पार्श्व पर ऋषिगण परिवृत [पुनर्वसु के समीप] सविनय जाकर [अग्निवेश बोला] ।

पुण्ये हिमवतः पार्श्वे सुर-सिद्धर्षिसेविते

अर्थात्—देवो, सिद्धो तथा ऋषियो से सेवित हिमालय के पुण्य पार्श्व पर। इन दोनो प्रकरणो मे सकेतित हिमवत्पार्श्व भी कैलास का प्रदेश प्रतीत होता है।

५. भेलसहिता के अनुसार पुनर्वसु आत्रेय एक बार गान्धार भूमि मे गया था।

६. बावर हस्तलेख के अन्तर्गत लशुन कल्प आदि के प्रकरणानुसार आत्रेय आदि ऋषि ओषधियो के रस, गण, आकृति, वीर्य तथा नामो को जानने की इच्छा से पर्वतश्रेष्ठ पर शतश विचरण करते थे। यथा—

आत्रेय-हारित-पराशर भेल-गर्ग-शाम्बव्य-सुश्रुत-वसिष्ठ-कराल-काप्या. ।
सर्वौषधि-रस-गण-आकृति-वीर्य-नाम जिज्ञासव समुदिताः शतशः प्रचेरुः

स्पष्ट ह कि सर्वोषधि-समन्वित पर्वतराज हिमालय के पुण्य-प्रदेशो मे पुनर्वसु आत्रेय की उपदेश-गङ्गा अविरत-रूपेण प्रवाहित हुई।

चलता-फिरता आयुर्वेद विद्यालय

उपरिलिखित उद्धरणो से विदित होता है कि आत्रेय पुनर्वसु सशिष्य भ्रमण करता था। अवसर पाकर अग्निवेश प्रमुख शिष्य-गण ने स्थान-स्थान पर गुरु से उपदेश ग्रहण किया। गुरु उपदेशमात्र से सन्तुष्ट न था। वह भिषग्विद्या का साक्षात् अभ्यास कराता था। अन्य ऋषि-गण के सहित जडी बूटियो का पूर्ण ज्ञान करके, उनके रस, गण, आकृति, वीर्य तथा नाम का साक्षात् ज्ञान देने का यह प्रकार देख, हम निश्चयपूर्वक कह सकते है कि वह चलता-फिरता आयुर्वेद विद्यालय था। ऐसे अनुपम आचार्य तथा उसके अद्वितीय शिष्यो का इतिहास मे प्रमुख स्थान है।

आत्रेय देश

श्री प० भगवद्दत्त कृत भारतवर्ष का इतिहास, द्वि० स० पृ० १६१ पर आत्रेय तथा भरद्वाज देश के विषय मे लिखा है—

अष्टाध्यायी ४।२।१४५ मे भरद्वाज देश का उल्लेख है। वही इस देश के दो ग्राम कृकण और पर्ण भी वर्णित है। आयुर्वेदीय चरकसहिता का मूल

उपदेष्टा आत्रेय था। और वह भरद्वाज का शिष्य था। किसी पुरातन राजा ने इन दोनो को ये प्रदेश दिए होगे। वे प्रदेश इन दो ऋषियो के नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्मपर्व १०।६७ मे इसका उल्लेख है—**आत्रेयाः सभरद्वाजा.**

ये म्लेच्छ देश थे। वहाँ ओषधियाँ अधिक होती होगी। इति।

हेमाद्रि टीका सू० १५। ८ मे **भारद्वाजी वनकार्पासी** का उल्लेख है। तथा नया अमर कोश २।४।११५ मे लिखा है **कार्पासी भारद्वाजी भरद्वाजसृष्टित्यागमः।**

विशेषण—पुनर्वसु आत्रेय के अनेक विशेषण चरकसहिता मे प्रयुक्त हुए हैं। इनसे उस महान् वैज्ञानिक का व्यक्तित्व तथा विद्वत्ता आलोकित हो उठती है। यथा—

१ प्रत्यक्षधर्मा	च० सू० २५।२।।
२. प्रजाओ का पितृवत् शरण्य	च० चि० ५।३।।
३. भूतभविष्यदीश	,,
४ वदता वरिष्ठ-वाग्मी	,,
५. मोह तथा मान से ऊपर	च० चि० ६।३।।
६ ज्ञान-तपो-विशाल	,,
७. तीव्र तप तपने वाला	च० चि० १३।३।।
८. आयुर्वेद-विदो मे श्रेष्ठ	च० चि० १३।४।।
९. भिषग्विद्या-प्रवर्तक	,,
१०. जितात्मा	,,
११. अव्यग्र	च० चि० १४।३।।
१२. प्रात जपशील	,,
१३. परावरज्ञ	च० चि० २५।३।।
१४. गतमानमत्व्यथ	,,
१५. ब्राह्मी लक्ष्मी से युक्त	,
१६. धी	च० चि० २७।३४।।
१७. स्मृति	,,
१८. धृति	,,
१९. विज्ञान	,,
२०. ज्ञान	,,
२१. कीर्ति	,,
२२. क्षमा	

(१६–२२ : से युक्त)

२३. हुताग्निहोत्र च० चि० २९।३॥
२४. अग्निवर्चस ,,
२५. तत्वज्ञानार्थदर्शी च० चि० ३०।३४॥

सम्पूर्ण आर्य वाङमय ऐसे ही चमत्कारी गुणयुक्त ऋषियो की दी हुई सम्पत्ति है। पुनर्वसु भी सिद्धतम-ऋषि-सन्तान होने के कारण दिव्य-गुण-सम्पन्न हुआ। इन सब विशेषणो मे एक ऐसा विशेषण है, जिससे एक विशेष ऐतिहासिक तथ्य समझ मे आता है। वह सख्या ९ वाला विशेषण यहाँ पुनः लिखते है—

भिषग्विद्याप्रवर्तक

धन्वन्तरि के प्रकरण मे लिख चुके है कि यहा भिषग्विद्या का स्पष्ट अभिप्राय कायचिकित्सा से है। पुनर्वसु के साथी धन्वन्तरि ने भिषक्-क्रिया अर्थात् शल्य-क्रिया सीखी, परन्तु पुनर्वसु ने भिषक्-विद्या का विशिष्ट प्रचार किया। अत उसे भिषग्विद्या-प्रवर्तक कहा गया।

अवेस्ता मे भिषक् शब्द—पारसी धर्म पुस्तक अवेस्ता मे भिषक् के लिए बए२षज्य (Baesazya) शब्द प्रयुक्त हुआ है।[1] पारसी जाति मे कभी सस्कृत भाषा का पूर्ण प्रचार था।

गुरु

१. भरद्वाज—चरकसहिता सूत्र स्थान अ० १ के अनुसार पुनर्वसु आत्रेय का गुरु भरद्वाज था।

२. इन्द्र—अष्टाङ्ग सग्रह सूत्रस्थान, अ० १ मे लिखा है कि पुनर्वसु आदि ने इन्द्र से अष्टाङ्ग आम्नाय का ज्ञान प्राप्त करके तन्त्र-रचना की। यथा—

नरेषु पीड्यमानेषु पुरस्कृत्य पुनर्वसुम्।
धन्वन्तरि-भरद्वाज-निमि-काश्यप कश्यपाः॥
तान्दृष्ट्वैव सहस्राक्षो निजगाद यथागमम्।
आयुषः पालनं वेदमुपवेदमथर्वणः॥
कायबालग्रहोर्ध्वाङ्ग शल्यदंष्ट्राजरावृषै।
गतमष्टाङ्गतां पुण्यं बुबुधे यं पितामहः॥
गृहीत्वा ते तमाम्नायं प्रकाश्य च परस्परम्।

---

[1] श्री रुलियाराम कश्यप कृत "दि वैदिक ओरिजिन्स आफ ज़ोरास्ट्रियनिज़्म" सन् १९४०, पृ० १२१, १२२।

आययुर्मानुषं लोकं मुदिता परमर्षयः ॥
स्थित्यर्थमायुर्वेदस्य तेऽथ तन्त्राणि चक्रिरे ।
कृत्वाग्निवेश-हारीत-भेल-माण्डव्य-सुश्रुतान् ॥
करालादींश्च तच्छिष्यान् ग्राहयामासुरादृता. ।
स्वं स्वं तन्त्रं ततस्तेऽपि चक्रुस्तानि कृतानि च ॥
गुरून् संश्रावयामासुस्सर्षिसंघान्सुमेधस ।
ते प्रशस्तानि तान्येषां प्रतिष्ठां भुवि लेभिरे ॥

अर्थात्—लोगो के रोग-पीडित होने पर पुनर्वसु की प्रमुखता मे धन्वन्तरि आदि ऋषि [इन्द्र के पास गए।] इन्द्र ने तत्काल अथर्ववेद के उपाङ्ग आयुर्वेद का आगम के अनुसार प्रवचन किया। यह आगम ब्रह्मा का अष्टाङ्ग ज्ञान था। उस आम्नाय को ग्रहण तथा परस्पर प्रकाशित करके मुदित ऋषिगण मनुष्य-लोक मे आए। आयुर्वेद की स्थिति के लिए उन्होने अपने तन्त्र रचे। तन्त्र रचना करके अग्निवेश, हारीत, भेल, माण्डव्य, सुश्रुत को तथा उनके शिष्य कराल आदियो को वे तन्त्र समझाए। तत्पश्चात् शिष्यो ने अपने तन्त्र रच के बुद्धिमान् ऋषियो की सभा मे गुरुओ को सुनाए। उन ऋषियो तथा गुरुओ से स्वीकृत तन्त्र ससार मे प्रसिद्ध हुए।

३. अत्रि—पुनर्वसु आत्रेय ने अपने पिता अत्रि से भी आयुर्वेद सीखा। काश्यपसहिता पृ० ६२ तथा अष्टाङ्गहृदय मे इसका उल्लेख है।

शिष्य

१–६. अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत, तथा क्षारपाणि नामक छ शिष्यो ने गुरु आत्रेय से एक साथ आयुर्वेद ज्ञान प्राप्त किया। चरकसहिता सू० १।३०, ३१ मे इसका वर्णन है। इन शिष्यो मे अग्निवेश प्रमख था। सब शिष्यो ने पृथक्-पृथक् तन्त्र रचे।

आत्रेय तथा ऋषि-सङ्घ अनुमत तन्त्र

छ शिष्यो की तन्त्र-रचना के पश्चात् आत्रेय तथा अन्य अनेक ऋषियो की सभा हुई। अष्टाङ्गसग्रह के अनुसार धन्वन्तरि आदि गुरुओ के शिष्यो ने भी उस काल तक तन्त्ररचना कर ली थी। अत उस सभा मे सब गुरु एकत्रित हुए। इन सब शिष्यो के तन्त्र उस सभा मे सुनाए गए। उन सबकी रचनाए सुनने के अनन्तर सर्वभूतहितैषि ऋषियो ने प्रसन्नता से कहा—यथावत् रचना की गई है। तदनु परमर्षि-अनुमत ये तन्त्र प्रसिद्ध हुए।

टिप्पण—उपरिलिखित सन्दर्भ से आर्यो की उच्च सभ्यता तथा ऐतिहासिक दृष्टि का प्रभूत निदर्शन होता है। हम स्थान-स्थान पर लिखते आ रहे

है कि अनेक ऋषि सभाओ मे सर्वसम्मति से निर्णय करके गुरु-विशेष से ज्ञान प्राप्त करने जाते थे। तदनन्तर उस पर पूर्णतया विचार करते थे। उपरिलिखित प्रमाणो से स्पष्ट है कि उस उपदेश को ग्रन्थ-रूप मे उपनिबद्ध करके ऋषि-सम्मेलन मे सुनाया गया। सर्वस्वीकृति के पश्चात् ये ग्रन्थ मान्य हुए। पुनर्वसु के सब शिष्यो मे से अग्निवेश का तन्त्र रचना-कौशल के कारण अधिक प्रसिद्ध हुआ।

कितने सुसस्कृत तथा परिष्कृत थे वे लोग जिन्होने यह सुन्दर परम्परा बनाई। उस युग मे वर्तमान-युग के समान प्रत्येक व्यक्ति मनचाही तथा अनावश्यक रचनाए नही करता था। उन दिनो कागज काला करने की खुली छुट्टी न थी। अत उस समय व्यर्थ वाड्मय नही बढा।

आत्रेय के प्रधानत्व मे वाद-सभाएं

दो प्रकार की ऋषिसभाओ का वर्णन यथाप्रसग कर चुके है। इनके अतिरिक्त आत्रेय की प्रमुखता मे होने वाली तीन वाद-सभाओ का वर्णन चरक-सहिता मे मिलता है। उन वाद-सभाओ मे सम्मिलित होने वाले ऋषियो की नामावलि आगे प्रस्तुत की जाती है—

प्रथम सभा[1]	द्वितीय सभा[2]	तृतीय सभा[3]
१ काशिपति वामक	१. आत्रेय	१. भृगु
२. मौद्गल्य	२. भद्रकाप्य	२. कौशिक
३. शरलोमा	३. शाकुन्तेय ब्राह्मण	३. काप्य
४. हिरण्याक्ष-कुशिक	४. पूर्णाक्ष मौद्गल्य	४. शौनक
५. कौशिक (शौनक)[4]	५. हिरण्याक्ष कौशिक	५. पुलस्त्य
६. भद्रकाप्य	६. कुमारशिरा भरद्वाज	६. असित
७ भरद्वाज (कुमारशिरा)	७. वार्योविद राजर्षि	७. गौतम
८ काङ्कायन	८ निमि वैदेह	
९. भिक्षुरात्रेय	९. बडिश धामार्गव	
	१०. काङ्कायन बाह्लीक भिषक्	

पुनर्वसु=कृष्ण आत्रेय के वचन

पुनर्वसु आत्रेय के वचनो का सग्रह करना आवश्यक नही, क्योकि आयुर्वे-

१. चरकसंहिता सूत्रस्थान, अध्याय २५॥
२. चरकसंहिता ,, ,, २६॥
३. चरकसंहिता सिद्धिस्थान ,, ११॥
४ चरकसंहिता के लाहौर-सस्करण मे कौशिक की अपेक्षा शौनक पाठान्तर है।

दीय ग्रन्थो मे स्थान स्थान पर आत्रेय के मत तथा वचन उद्धृत है। वर्तमान आयुर्वेदीय जगत् मे पुनर्वसु के कृष्ण नाम पर कुछ सन्देह प्रकट किया जाता है। अत पुनर्वसु के जितने वचन कृष्णात्रेय नाम से उद्धृत है उनका यथा-सम्भव एकत्र करना आवश्यक प्रतीत होता है। गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग द्वितीय, पृ० ४४२ पर ऐसे आठ वचन भिन्न-भिन्न ग्रन्थो से उद्धृत किए है। इनके अतिरिक्त जो वचन हमने सगृहीत किए है, उन्हे नीचे लिखा जाता है—

१. कृष्णात्रेयोपि-षष्टिकस्सुकर इत्यादि पठित्वा लघवः कटुपाकाश्चेत्याह। अष्टाङ्गसंग्रह सू०, पृ० ३।

२. कृष्णात्रेयो द्विधारिष्टं स्थिरास्थिरविभेदतः। अ० सं० पृ० ८५।

३. कृष्णात्रेयस्तु षोडशगुणम्। अ० सं० क० पृ० ३६६।

४ कषायपाककल्पोऽयं कृष्णात्रेयेण वर्णितः। अ० सं० पृ० ३७५।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—आत्रेय पुनर्वसु की आयुर्वेदीय रचना अवश्य थी। अष्टाङ्ग-सग्रह सू० पृ० २ के कुछ वचन पूर्व पृ० १८६ पर उद्धृत कर चुके है उनमे लिखा है—

तेऽथ तन्त्राणि चक्रिरे

अर्थात्—पुनर्वसु आदि ऋषियो ने इन्द्र से ज्ञान प्राप्त करके अपने तन्त्र रचे। इसके आगे पृ० ४ पर सग्रहकार पुन लिखता है—

स्वान्यतन्त्रविरोधानां भूयिष्ठं विनिवर्तक।

अर्थात्—यह (अष्टाङ्गसग्रह) स्व-तन्त्र तथा अन्य-तन्त्रो के विरोध का अतिनरा हटाने वाला है।

इस वचन की टीका मे इन्दु लिखता है—

स्वतन्त्रविरोधो य एकस्मिन्नेव तन्त्रेऽन्यस्थानस्थितो ग्रन्थोऽन्यस्थान-स्थितेन विरुध्यते। एतच्च सम्मोहनमात्रनिवृत्तये उक्तं न हि वस्तुतो विरुद्धस्सम्भवति। परतन्त्रविरोधो यथा चरकग्रन्थेन कृष्णात्रेयो विरुद्ध।

इस सन्दर्भ मे चरक तथा कृष्णात्रेय के ग्रन्थ को स्पष्टतया पर-तन्त्र कहा है। स्पष्ट है कि पुनर्वसु की एक रचना कृष्णात्रेय नाम से थी। इसी कारण चरक तथा कृष्णात्रेय के मत मे कुछ न्यूनाधिक्य हुआ है।

गदनिग्रह भाग प्रथम मे कई योग कृष्णात्रेय की सहिता से उद्धृत किये गए है—

कृष्णात्रेयाद्व्रणे महागौर्याद्यं घृतम्।

चिकित्सा-विषयक अति-सूक्ष्म परीक्षण बताता है, जिनका ज्ञान उन पृष्ठो मे ही हो सकता है ।

५. अन्तिम भाग मे अगदो का वर्णन है ।

इस विवरण के अनुसार आत्रेय-सहिता अत्यन्त व्याख्यापूर्ण थी ।

आत्रेय-सहिता के उपलब्ध हस्तलेख—अनेक पुस्तकालयो मे आत्रेयसहिता के हस्तलेख उपलब्ध होते है ।

१. बडोदा पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि सख्या ११४, प्रवेश-सख्या ५८२६ के अन्तर्गत आत्रेय सहिता का उल्लेख है ।

२. गिरिन्द्रनाथ जी लिखते है कि—डाक्टर भण्डारकर के सेकेण्ड रिपोर्ट फार दी सर्च आफ सस्कृत मेन्युस्कृप्ट्स पृ० ४६ पर आत्रेयसहिता की एक अति-प्राचीन प्रति उल्लिखित है ।

३. L. २६३३ के अन्तर्गत एक अन्य हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध है ।

योग—गिरिन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने चरकसहिता के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थो में से आत्रेय पुनर्वसु के नाम मे सात योग सगृहीत किए है । कृष्ण-आत्रेय के नाम से एकत्रित योगो की सख्या बीस है ।

हमनें चरकसहिता मे से कृष्ण-आत्रेय नाम से उल्लिखित दो नए योग ढू ढे है—

१. बला तैल च० चि० २८।१४८-१५६।।

२ अमृताद्य तैल च० चि० २८।१५७-१६४।।

पूर्व पृ० १२६ पर लिख चुके है कि हारीतसंहिता के अनुसार च्यवनप्राश नामक योग भी कृष्णात्रेय का है । इस प्रकार कुल योग हुए तीस ।

इति कविराज सूरमचन्द्र कृते आयुर्वेदेतिहासे नवमोऽध्यायः ।

दशम अध्याय

अष्टाङ्ग विभाजन-क्रम

प्रत्यक विद्या के प्रथम प्रवक्ता के लक्षश्लोकात्मक आयुर्वेदीय आगम का उल्लेख पूर्व पृ० २० पर हो चुका। यह आगम अतिविस्तृत तथा गम्भीर था। इसमें आयुर्वेद का स्वरूप क्रमबद्ध तथा परमवैज्ञानिक परिभाषाओ आदि से युक्त था। लोगो की आयु तथा बुद्धि का ह्रास देख ब्रह्माजी ने उस विस्तृत आगम को अष्टाङ्गविभागात्मक करा जीक। या दक्षिके उत्तरवर्ती आचार्य जापति दक्ष, अश्विद्वय तथा इन्द्र को यह ज्ञान परम्परा-क्रम से मिलता गया। मानवयुग से बुद्धि का अधिकाधिक ह्रास हुआ, अत अष्टाङ्गविभागात्मक यह ज्ञान अधिक सक्षिप्त यद्यपि व्याख्यामय होता गया। ऐसे काल मे ऋषिसम्मत परमर्षि भरद्वाज ने इन्द्र से त्रिस्कन्धात्मक आयुर्वेदीय ज्ञान प्राप्त किया। परन्तु युग ह्रास के कारण मानव-बुद्धि अधिक मन्द हो रही थी। अत परमकारुणिक ऋषियो को वारम्वार गुरु का आश्रय लेना पडा। वाग्भट अपने संग्रह मे लिखता है कि एक वार धन्वन्तरि, भरद्वाज आदि ऋषि पुनर्वसु की प्रमुखता मे देवराज इन्द्र से उपदेश लेने गए। इस वार भी इन्द्र ने आगम के आधार पर अष्टाङ्गविभागात्मक उपदेश किया। ऋषिगण ने सम्प्राप्त-ज्ञान पर वही परस्पर विमर्श किया। इस काल मे पुनर्वसु तथा धन्वन्तरि आदि की रचनाएँ विशिष्ट हुई। ये रचनाए अष्टाङ्गपूर्ण होती हुई भी किसी विशेष अङ्ग पर अधिक वल देती थी। यथा—धन्वन्तरि ने भिषक्-क्रिया पर बल दिया,तो पुनर्वसु ने कायचिकित्सा पर। काश्यप ने कौमारभृत्य को प्रथम स्थान दिया। इस पद्धति पर उत्तरोत्तर विभक्त अष्टाङ्ग आयुर्वेद-ज्ञान इस युग के लोगो को वुद्धि-गम्य हुआ।

सर प्रफुल्लचन्द्र रे का भ्रम—जर्मन भाषा-मत से प्रभावित आचार्य रे ने इस ऐतिहासिक तथ्य पर अविश्वास करके "दि हिस्ट्री आफ हिन्दू कैमिस्ट्री" भाग प्रथम की भूमिका अ० २, पृ० ११ पर लिखा है—

We now alight upon a period when we find the

Hindu system of medicine methodised and arranged on a rational basis with a scientific terminology.

अर्थात्—(अथर्ववेद के जादू टोने के युग के पश्चात्) अब हम एक ऐसे युग मे पदार्पण करते है जब हिन्दू-चिकित्सा-पद्धति को नियमित तथा युक्ति-युक्त आधार पर क्रमबद्ध और वैज्ञानिक परिभाषाओ से युक्त पाते है। इति।

रे महोदय के इस वाक्य से निम्नलिखित परिणाम निकलते है—

१. आयुर्वेद का इतिहास वैदिक तथा आयुर्वैदिक युगो मे विभक्त है।

२. आयुर्वैदिक युग से पूर्व अर्थात् वैदिक युग मे हिन्दू-चिकित्सा-पद्धति परिपूर्ण नही थी। उसमे अनेक न्यूनताए थी।

३. चरक से पूर्व विशिष्ट चिकित्सा-पद्धति का अभाव था।

४. इस युग से पूर्व हिन्दू-चिकित्सा का क्रम युक्तियुक्त आधार पर आश्रित न था।

५. आयुर्वैदिक युग से पूर्व आयुर्वेद की वैज्ञानिक परिभाषाए न थी।

अब हम इन विचारो की क्रमश आलोचना करते है।

१. आर्य-इतिहास मे वैदिक युग की कल्पना करना आर्य वाङ्मय तथा आर्यजाति के साथ भारी अन्याय करना है। वर्तमान पाश्चात्य लेखको ने मिथ्या जर्मन भाषामत के आधार पर भारतीय इतिहास मे वैदिक वाङ्मय के तीन काल माने है, मन्त्रकाल, ब्राह्मणकाल तथा सूत्रकाल। इसी विचारधारा के प्रभाव से आचार्य रे ने आयुर्वेद के इतिहास मे वैदिक तथा आयुर्वैदिक युगो की कल्पना की, तथा चरक से पूर्ववर्ती सम्पूर्ण आयुर्वेदाचार्यों को अवैज्ञानिक मान उन्हे कल्पित वैदिक-युग मे रख दिया। अपरञ्च उस वैदिक युग को अथर्ववेद के जादू टोनो का युग कह दिया।

आदिकाल के ब्रह्मा आदि महान् वैज्ञानिको का क्रमबद्ध इतिहास इस ग्रन्थ मे लिखा गया है। पूर्वकाल के इन आचार्यो के अनेक वचन, मत तथा योग हम उद्धृत करते आ रहे है। उनके ये वचन उन्ही की भाषा मे है। उनसे स्पष्ट ज्ञान होता है कि इन आचार्यो ने लोकभाषा सस्कृत मे परम वैज्ञानिक रचनाए की। उन्ही आचार्यो ने किञ्चित् विभिन्न शैली मे ब्राह्मण-ग्रन्थ रचे। अत ब्राह्मणकाल तथा लोकभाषाकाल पृथक् नही थे। एक ही काल मे ये सब रचनाए हो रही थी। आथर्वण ऋचाओ मे जो जादू-टोने समझे जाते है, उनका कुछ स्पष्टीकरण आगे भूतविद्या-प्रकरण में करेगे। अधिक विस्तार के लिए पृथक् ग्रन्थ की आवश्यकता है।

श्री तारापद भट्टाचार्य—भारतीय वाङ्मय के सब अंगो के इति-

ह्रास मे पाश्चात्यानुयायी यही कठिनाई अनुभव करते है। इसका स्वल्पाभास वास्तुविद्या पर लिखने वाले तारापदजी (सन् १६४७) को भी हुआ है। यथा—

Many scholars think that the list (of ancient teach· ers of Vastu) is a mere traditional one and that the persons mentioned had not really written any work on Vastu... I shall try to show below that both these objections are untenable (p 89)

अर्थात्—बहुत विद्वान् सोचते है कि मत्स्यपुराण मे उल्लिखित वास्तु-विद्या के १८ उपदेशक भृगु, अत्रि, ब्रह्मा आदि ने वास्तु-विद्या का कोई ग्रन्थ नही लिखा ··मै इन आक्षेपो की निराधारता आगे लिखूगा। इति।

यदि तारापदजी के मन से मैक्समूलर आदि के मिथ्या भाषामत का रहा-सहा प्रभाव भी चला जाता, तो वे इस पूर्व-पक्ष का बहुत अधिक खण्डन करते।

स्पष्ट है कि प० भगवद्दत्त जी ने सन् १६२७ ने जिस भूल का उद्घाटन वैदिक वाङ्मय का इतिहास ब्राह्मण भाग मे कर दिया था, उसकी ओर अब विद्वानो का ध्यान आकृष्ट हो रहा है।

२. भारतीय इतिहास मे सर्वसम्मत है कि प्रत्येक विद्या का प्रथम-प्रवक्ता तथा आदि-विद्वान् ब्रह्मा था। यद्यपि उत्तरकाल में किसी भी चतुर्वेदविद् व्यक्ति के लिए ब्रह्मा पद प्रयुक्त हो सकता था, तथापि आदिदेव ब्रह्मा निस्सन्देह ऐतिह्य सिद्ध एक विशेष व्यक्ति था। धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, काम-शास्त्र, मोक्षशास्त्र, अश्वशास्त्र, तथा हस्तिशास्त्र आदि प्रत्येक विषय के आदिम ग्रन्थो का रचयिता ब्रह्मा था। उसने प्रत्येक विषय का परिपूर्ण ज्ञान दिया। उस ज्ञान मे किसी प्रकार की न्यूनता न थी। मनुष्यो की शारीरिक तथा मानसिक शक्तियो के उत्तरोत्तर ह्रास के कारण अति विस्तृत प्राचीन ग्रन्थ शनै शनै. सक्षिप्त परन्तु व्याख्यामय होने लगे। इस प्रकार आयुर्वेद का मूल प्रवक्ता भी ब्रह्मा था। ब्रह्मा के आगम के आधार पर प्रवृत्त आर्य-चिकित्सा-पद्धति आदि से सर्वाङ्गपूर्ण थी।

भारतीय इतिहास का यह चिर-विस्मृत पक्ष इतिहासाचार्य प० भगवद्दत्तजी[१] तथा महावैयाकरण श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमासक[२] ने परम

१. देखो पं० भगवद्दत्त जी कृत भारतवर्ष का इतिहास द्वि० सं०, पृ० ३१ तथा भारतवर्ष का बृहद् इतिहास पृ० ७२-७६।

२. पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक कृत संस्कृत व्या० शा० इतिहास पृ० १०—।

प्रबल युक्तियो से उपस्थापित किया है ।

३. चरक मुनि अग्निवेश-तन्त्र का प्रतिसस्कर्ता-मात्र था। उसने मूल-तन्त्र को नि सन्देह अधिक व्याख्या-युक्त किया । उस व्याख्या-युक्त रचना को देख रे महोदय भ्रम मे पड गए । फलत यह कहना कि चरक से पूर्व आयुर्वेद की चिकित्सा-पद्धति विशिष्ट न थी, आयुर्वेद पर भारी कुठाराघात है। पूर्व लेख से हम स्पष्ट कर चुके है कि चरक से पूर्व अग्निवेश का ऋषिसम्मत त विद्यमान था।[1] अग्निवेश से पूर्व अन्य अनेक आचार्यों के अतिरिक्त, अद्भुत मृतसजीवनी विद्या के ज्ञाता भृगु तथा उशना दोनो पिता-पुत्र के आयुर्वेदीय शास्त्र विद्यमान थे। परम रसायनज्ञ देवराज इन्द्र तथा अश्विद्वय की रचनाओ का तो कहना ही क्या । ऐसे अद्भुत आचार्यों की रचनाओ को विशिष्ट पद्धति-हीन कहना सर्वथा इतिहास-विरुद्ध है । रे जी पुरातन इतिहास मे यदि अधिक यत्नवान होते तो ऐसी भयङ्कर भूल न करते ।

४. आज के युग मे अधिकतर वैद्य चरक तथा सुश्रुत सहिताओ के आधार पर चिकित्सा नही करते, अपितु सग्रह-ग्रन्थो का अधिक प्रयोग करते है। निश्चित है कि चरक के युग की अपेक्षा वर्तमान युग के लोगो की बुद्धि का अधिकाधिक ह्रास हो गया है । एव आपातत मानना पडेगा कि वर्तमान काल की अपेक्षा पूर्व, पूर्वतर तथा पूर्वतम काल मे आयुर्वेद-ज्ञान विस्तृत, विस्तृततर तथा विस्तृततम था । चरक से प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थो के उपलब्ध उद्धरणो में प्रायः वही परिभाषाए मिलती है जो चरक आदि मे व्यवहृत है। अत यह कहना कि चरक के काल से वैज्ञानिक परिभाषाओ का प्रयोग आरम्भ हुआ, सम्पूर्ण आयुर्वेदीय आगम, तन्त्र तथा सहिताओ की उपेक्षा करना अपरञ्च परम सत्यनिष्ठ ऋषि मुनियो को अनृतवादी सिद्ध करना है।

१. इस विषय का विशेष वृत्त "अग्निवेश-तन्त्र का स्वरूप" नामक शीर्षक के अन्तर्गत आगे पृष्ठ २०१ पर देखें।

भारत में कायचिकित्सा का विस्तार

छः आत्रेय शिष्य

३३. अग्निवेश (अलौकिक प्रतिभावान्) ।।१।।

वंश—ऐतिहासिक कहते है कि अग्निवेश अग्नि का पुत्र था। भागवत पुराण ६।२।२१-२२ मे इसे देवदत्त का पुत्र तथा अग्नि का अवतार लिखा है। अग्निवेश का इससे अधिक परिचय अभी नही मिल सका। मत्स्य १९६।१२ में अग्निवेश्य नाम अङ्गिरा गोत्रान्तर्गत है।

अपरनाम—पुरातन आर्य वाङ्मय मे नाम के पर्यायो के प्रयोग की विधि भी पाई जाती है। अग्नि के दो पर्याय वह्नि तथा हुताश भी है। अत चरक-सहिता मे अग्निवेश के स्थान मे वह्निवेश (सू० १३।३) तथा हुताशवेश (सू० १७।५) नामो का प्रयोग भी हुआ है।

अनेक स्थानो मे अग्निवेश्य नाम मिलता है। अष्टाध्यायी ४।१।१०५ के अनुसार यह गोत्रापत्य प्रत्यान्त नाम है।

व्याख्या मधुकोश पृ० २४८ पर श्रीकण्ठदत्त लिखता है—

हुताश इति अग्निवेश-सम्बोधनम् । चरके हुताशवेशशब्देनाग्नि-वेशोऽभिधीयते ।

अर्थात्—यहाँ पर हुताश अग्निवेश का सम्बोधन है, क्योकि चरक मे हुताशवेश शब्द से अग्निवेश कहा जाता है।

काल—श्री दाशरथि राम के काल के कुछ पूर्व से भारत युद्ध से लगभग २५० वर्ष पूर्व तक अग्निवेश जीवित रहा। इस लम्बे काल मे उसने अनेक मुनियो को आयुर्वेद ज्ञान दिया। द्रोण जी उससे सक्रिय धनुर्वेद सीखते थे।

ब्रह्माण्ड पुराण ३।४७।४९ के अनुसार जामदग्न्य परशुराम के अश्वमेध यज्ञ मे काश्यप, गौतम, विश्वामित्र, मार्कण्डेय तथा भरद्वाज के साथ वेदवेदाङ्ग-पारग अग्निवेश्य भी भाग ले रहा था।

पालकाप्य मुनि के हस्ति-आयुर्वेद के १।१।२५, २८ श्लोक के अनुसार महाराज रोमपाद की सभा मे अग्निवेश्य और पराशर दोनो उपस्थित थे।

चौबीसवें परिवर्त में जब वाल्मीकि=ऋक्ष व्यास था, तब उसके साथ शालिहोत्र और अग्निवेश्य भी थे। (देखो, वायु पु० २३।२०७।।)

अग्निवेश्य तथा वाल्मीकि की याजुष शाखाएं थी। तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य-कार ने १।६।४ मे इन दोनो आचार्यो की शाखाओ में प्रयुक्त होने वाले विसर्ग विषयक एक समान नियम का निर्देश किया है। इस सूत्र की व्याख्या मे माहिषेय लिखता है—**अग्निवेश्यवाल्मीक्यो. शाखिनोः**। निश्चय है कि दोनो आचार्य समकालिक थे।

अत पूर्वोक्त काल लगभग ठीक गिना गया है।

स्थान—महाभारत आ० १४१।४१ के प्रसङ्ग से स्पष्ट है कि अग्निवेश का आश्रम था। उसका स्थान अन्वेषणीय है।

गुरु

१. पुनर्वसु आत्रेय—अग्निवेश का आयुर्वेद-विद्या-दाता गुरु भिषग्विद्या-प्रवर्तक पुनर्वसु आत्रेय था।

२ भरद्वाज—महाभारत आ० १४०।४१ के अनुसार अग्निवेश ने ऋषि भरद्वाज से आग्नेयास्त्र प्राप्त किया—

अग्निवेश्यं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान्।
प्रत्यपादयदाग्नेयमस्त्रमस्त्रविदां वर ॥

स्पष्ट है कि प्रतापी भरद्वाज ने महाभाग अग्निवेश को आग्नेयास्त्र सिखाया।

सम्भवत परमर्षि भरद्वाज से समय-समय पर आयुर्वेद का ज्ञान भी अग्निवेश ग्रहण करता रहा।

३. अगस्त्य—पूर्व पृ० ७४ पर लिख चुके है कि अग्निवेश ने ऋषि अगस्त्य से धनुर्वेद सीखा। महाभारत आ० १५१।१२ के पाठ से ज्ञात होता है कि अग्निवेश को ब्रह्मशिरा नामक अस्त्र प्राप्त था।

शिष्य

१. आचार्य द्रोण—भारत-युद्ध काल के समस्त क्षत्र-समूह का धनुर्वेदाचार्य द्रोण अग्निवेश महर्षि का शिष्य था। यथा—

महर्षेरग्निवेश्यस्य सकाशमहमच्युत।
अस्त्रार्थमगमं पूर्वं धनुर्वेदजिघृक्षया॥
महा० १४१।४१॥

अर्थात्—मै धनुर्वेद सीखने की इच्छा से महर्षि अग्निवेश के पास गया।

२. महाराज द्रुपद—गुरु द्रोण के साथ ही पाञ्चाल्य यज्ञसेन=द्रुपद

ने भी महर्षि अग्निवेश के आश्रम मे धनुर्वेद सीखा था ।

पाञ्चाल्यो राजपुत्रश्च यज्ञसेनो महाबल ।
इष्वस्त्रहेतोर्न्यवसत्तस्मिन्नेव गुरौ प्रभुः ॥
महा० आ० १४१।४३ ॥

अर्थात्—पाञ्चाल्य यज्ञसेन भी धनुर्वेद सीखने की इच्छा से उसी गुरु के पास रहता था ।

पराशर-सतीर्थ्य

पराशर तथा भेलादि अन्य पाच ऋषि अग्निवेश के सतीर्थ्य थे । गुरु आत्रेय से प्राप्त ज्ञान उन्होने बहुधा समान शब्दों मे लिखा है । पराशर तथा अग्निवेश का एक ऐसा वचन हम नीचे उद्धृत करते है—

अग्निवेश

आदिकाले हि अदितिसुतसमौजसोऽतिविमलविपुलप्रभावा व्यपगत—आलस्यपरिग्रहाश्च पुरुषा बभूवुरमितायुष. । भ्रश्यति तु कृत-युगे साम्पन्निकानां शरीरगौरवमासीत् सत्वानाम् गौरवात् श्रमः, श्रमादालस्यम्, आलस्यात् सञ्चयः, सञ्चयात् परिग्रहः, परिग्रहात् लोभः प्रादुर्भूत कृते । चरक सं० विमान अ० ३ ।

पराशर

पुरा खलु—अपरिमित-शक्ति-प्रभा-प्रभाव-वीर्य .. धर्मसत्व-शुद्धतेजसः पुरुषाः बभूवु' । तेषां क्रमाद् अपचीयमानसत्वानाम् उपचीय-मानरजस्तमस्कानां लोभः प्रादुरभवत् । लोभात् परिग्रहम् । परिग्रहात गौरवम् । गौरवाद् आलस्यम् । आलस्यात् तेजोऽन्तर्दधे ।

इन दोनो वाक्यो मे शैलि तथा भाव-साम्य आश्चर्यकर है । हमारे पास आयुर्वेदीय पराशर-तन्त्र इस समय उपलब्ध नही । पराशर का पूर्वोद्धृत वचन पराशरकृत ज्योतिष सहिता का है । वह सहिता भी अभी उपलब्ध नही । यह वचन भट्ट उत्पल (शक ८६८) ने वराहमिहिरकृत बृहत्सहिता की टीका मे उद्धृत किया है ।

विशेषण—चरकसहिता मे अग्निवेश के केवल तीन विशेषण प्रयुक्त हुए है । परन्तु ये विशेषण इतने आवश्यक है कि इन्हे लिखे विना हम नही रह सकते । इन्ही तीन गुणो से अग्निवेश का व्यक्तित्व अद्भुत प्रभावशाली हो गया ।

१. धीमान् —इस गुण ने अग्निवेश को चिर स्मरणीय बना दिया । गुरु उस शिष्य से प्रसन्न होते है जो तीक्ष्ण-बुद्धि हो । शिष्य की प्रखर-बुद्धि से गुरु की विद्या चमक उठती है ।

२. कृताञ्जलि[1]—सम्पूर्ण आर्य-शास्त्र इस विषय मे एकमति है कि शिष्य को परम-विनीत होना चाहिए। अग्निवेश अति विनीत था। वह गुरु के समीप सविनय उपस्थित होता था।

३. यथासमय प्रश्न पूछने वाला—चरकसहिता के अनेक प्रकरणो मे लिखा है—

अग्निवेशो गुरुं काले विनयादिदमुक्तवान्।[2]

अर्थात्—अग्निवेश ने यथासमय विनय-पूर्वक गुरु को यह कहा।

वस्तुत अग्निवेश देख लेता था कि गुरु श्रान्त तथा अन्यविषयासक्त-बुद्धि तो नही। ऐसे समय मे प्रश्न करने से गुरु के अन्तस्तल से ज्ञान के सूक्ष्म तत्वो का भण्डार उमड पडता था। अत यह विशेषण वारम्वार प्रयुक्त हुआ है।

अग्निवेश-तन्त्र

रचना-कौशल मे सर्वोत्तम—गुरु से आयुर्वेद सीखकर अग्निवेश ने तन्त्र रचा। आत्रेय पुनर्वसु के शिष्यो मे अग्निवेश सबसे अधिक कुशाग्र-बुद्धि तथा तन्त्र-रचना कुशल था। चरकसहिता सू० १।१ मे इसका सुन्दर उल्लेख है—

बुद्धेर्विशेषस्तत्रासीन्नोपदेशान्तरं मुनेः।
तन्त्रस्य कर्ता प्रथमं अग्निवेशो यतोऽभवत्।

अर्थात्—मुनि पुनर्वसु के उपदेश मे कोई भेद न था। परन्तु बुद्धि की विशेषता से तन्त्र-कर्ताओ मे अग्निवेश प्रथम रहा।

कायचिकित्सा-प्रधान—आत्रेय-शिष्यो ने गुरु से काय-चिकित्सा का विशिष्ट उपदेश लिया। अत अग्निवेश-तन्त्र अष्टाङ्गात्मक होते हुए भी कायचिकित्सा-प्रधान हुआ।

नागार्जुन-प्रतिसस्कृता सुश्रुतसहिता, उ० १।६ मे लिखा है—

षट्सु कायचिकित्सासु ये चोक्ता परमर्षिभिः।

अर्थात्—[सुश्रुत स० के इस उत्तर तन्त्र मे पृथग्विध रोग कहे जायेगे] जो काय-चिकित्सा के ग्रन्थो मे परमर्षियो ने कहे है।

इस वचन की व्याख्या में डल्हणाचार्य लिखता है—

षट्सु कायचिकित्सासु अग्निवेश - भेड - जतूकर्ण-पराशर-हारीत-क्षारपाणि-प्रोक्तासु।

---

१. चरकसंहिता, लाहौर संस्करण चि० १७।३॥
२. 　,, 　　,, 　　चि० २१।९॥

अर्थात्—अग्निवेशादि [छ आत्रेय-शिष्यो से] प्रोक्त कायचिकित्सा के छ ग्रन्थ है।

इसका अभिप्राय है कि अग्निवेश-तन्त्र कायचिकित्सा-परक था। नागार्जुन द्वारा सौश्रुत-तन्त्र के प्रतिसस्कृत होने के समय मूल अग्निवेश-तन्त्र उपलब्ध था।

वाग्भट के संग्रह तथा हृदय का आधार अग्निवेश-तन्त्र

१. अष्टाङ्गहृदय का कर्ता वाग्भट सूत्रस्थान १।४ मे लिखता है—

तेऽग्निवेशादिकांस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे।
तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः।
क्रियतेऽष्टाङ्गहृदयं नातिसंक्षेपविस्तरम् ॥

अर्थात्—उन आत्रेय आदिको ने अग्निवेश आदि को आयुर्वेद ज्ञान दिया। उन्होने पृथक् तन्त्र रचे। उन अतिविस्तीर्ण अग्निवेशादि के तन्त्रो से यह अनति-सक्षिप्त तथा अनति-विस्तृत अष्टाङ्गहृदय रचा जाता है।

निश्चित है कि अष्टाङ्गहृदय की रचना का आधार अन्य तन्त्र तथा अग्निवेश-तन्त्र भी था।

२. अष्टाङ्गसग्रह उत्तरस्थान, अध्याय ५०, पृ० ४८० पर वाग्भट लिखता है कि ब्रह्मा के लक्षश्लोकात्मक आगम का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके अग्निवेशादि ने अपने तन्त्र रचे—

आयुर्वेदं श्लोकलक्षेण पूर्वं ब्रह्माम्नासीदग्निवेशादयस्तु।
कृत्स्नज्ञेयप्राप्तसाराः स्वतन्त्रास्तस्यैकैकं नैकधाङ्गं वितेनुः॥
समाधिगम्य गुरोरवलोकितात् ....।

इस वचन पर इन्दु अपनी व्याख्या शशिलेखा मे लिखता है—

मया च अग्निवेशादिकृतायुर्वेदाङ्गविभागविनिश्चयो रचितः।

अर्थात्—मैने अग्निवेशादि रचित आयुर्वेदीय तन्त्रो के अनुकूल अङ्गविभाग का विनिश्चय अर्थात् अष्टाङ्गसग्रह रचा है—

अग्निवेश तन्त्र का स्वरूप

यह सर्वमान्य है कि अग्निवेश ने तन्त्र-रचना की। पुरातन सग्रह-ग्रन्थो तथा टीकाओ मे अग्निवेश के ग्रन्थ के लिए तन्त्र शब्द प्रयुक्त हुआ है, परन्तु चरकसंहिता चिकित्सास्थान पृ० ६४० पर चक्रपाणिदत्त लिखता है—

अत्राग्निवेशसंहितायामभिधीयते।

अर्थात—अग्निवेश-सहिता मे यह कहा जाता है।

क्या अग्निवेश की कोई सहिता भी थी। तन्त्र और सहिता मे भेद है।

जेज्जट की टीका में उद्धृत अग्निवेश-तन्त्र के वचन

जेज्जट अपनी टीकामे कही कही अग्निवेश-तन्त्र के वचन उद्धृत करता है। उन वचनो से अग्निवेश-तन्त्र के स्वरूप का कुछ आभास प्राप्त होता है। यथा—

१. अग्निवेशतन्त्रं चरकाचार्येण संस्कृतम्। तथा हि तद्वचः[1]—

धातुमूत्रशकृद्वाहिस्रोतसा व्यापिनो मलाः।
तापयन्तस्तनुं सर्वां तुल्यदूष्यादिवर्धिताः।
बलिनो गुरवः स्तब्धा विशेषेण रसाश्रिताः।
सन्ततं निष्प्रतिद्वन्द्वं ज्वरं कुर्युः सुदुःसहम्।
मलाञ्ज्वरोष्मा धातून्वा स शीघ्रं क्षपयेत्ततः।
सर्वाकारं रसादीनां शुद्ध्याशुद्ध्यापि वा क्रमात्।
वातपित्तकफैः सप्त दश द्वादशवासरान्।
प्रायोऽनुयाति मर्यादां मोक्षाय च वधाय च॥

२. अत्राग्निवेशसंहितायामभिधीयते—

क्वाथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुण्णं श्रपयित्वा जलाढके।
पादशेषेण तेनाथ यवागूरुपकल्पयेत्।
कर्षार्धं वा कणाशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम्।
विनीय पाचयेद् युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम्। इति॥[2]

चक्रपाणिदत्त की टीका मे उद्धृत अग्निवेश-तन्त्र का वचन

३. अग्निवेशे हि श्रूयते—

द्रव्यमापोथितं क्वाथ्यं दत्वा षोडशिकं जलम्।
पादशेषं च कर्तव्यमेष क्वाथविधिः स्मृतः।
चतुर्गुणेनाम्भसा वा द्वितीयः समुदाहृतः। इति चि० ३।१६७

अग्निवेश-तन्त्र के इन वचनो से स्पष्ट है कि चरक से पूर्व भी अग्निवेश का तन्त्र लोकभाषा संस्कृत मे विद्यमान था। वह ब्राह्मण-ग्रन्थो के वर्तमान प्रवचन से पूर्व रचा गया था। पुरातन-परम्परा को असत्य सिद्ध करनेवाले, कल्पित जर्मनभाषामत पर यह कुठाराघात है।

इन वचनो मे वही वैज्ञानिक परिभाषाए वर्ती गई है, जो अपर काल के चरक आदि ने स्वीकार की है। पहले वचन मे पूर्ण विशिष्ट-पद्धति तथा नियमित क्रम का दिग्दर्शन है। अत रे महोदय का मत (पृ० १९५) तथ्य-हीन है।

---

१. चरकसंहिता चिकित्सास्थान, अ० ३, पृ० ८९६, लाहौर संस्करण।
२. ,, ,, ,, ,, ,, ९४०, ,, ,, ।

संख्या २ का पहला श्लोक कुछ पाठान्तर से तत्वचन्द्रिका, पृ०५ पर भी है।

गदनिग्रह में अग्निवेश-तन्त्र से उद्धृत आठ योग

४—११. गदनिग्रह भाग प्रथम मे अग्निवेश तन्त्र से आठ योग उद्धृत किए गए है। इन सब योगो के आरम्भ मे लिखा है—

अग्निवेशात्

अर्थात्—अग्निवेश-तन्त्र से।

१२. वाग्भट अपने अष्टाङ्गसग्रह के नि०, अ० २, पृ० १८ पर अग्निवेश का मत कह कर दो श्लोक उद्धृत करता है। तुलना करो सख्या १ का वचन।

१३-१६ उपरिलिखित वचनो के अतिरिक्त मुखोपाध्याय जी ने व्याख्या कुसुमावलि, निबन्धसग्रह तथा तत्वचन्द्रिका से अग्निवेश के सात अन्य वचन संगृहीत किए है।

२० पालकाप्यकृत हस्ति-आयुर्वेद के चतुर्थस्थान अ० ४ के आरम्भ में गार्ग्य, गौतम, तथा भरद्वाज के साथ अग्निवेश का मत उल्लिखित है—

प्रयोगात् स्नेहान् सप्ताग्निवेश:।

ग्रन्थ

१. **अग्निवेश तन्त्र**—आयुर्वेद का पूर्व लिखित महान् ग्रन्थ।

२. **नाड़ी परीक्षा**—बडोदा पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि वैद्यक प्रकरण सख्या १२४, प्रवेश सख्या १५७६ के अन्तर्गत अग्निवेश का यह ग्रन्थ सन्निविष्ट है।

३. **अग्निवेश्य हस्तिशास्त्र**—मद्रास पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचि सख्या ३७६१ के अन्तर्गत शिवरामभूपति के कल्पनारत्न का उल्लेख है। यह ग्रन्थ हस्तिविद्यापरक है। इस ग्रन्थ में अग्निवेश के हस्तिशास्त्र का उल्लेख है।

एल० राईस द्वारा भण्डारकर कमेमोरेशन वाल्यूम, पृ० २४४, २४५ पर एक शिलालेख का उल्लेख है। उस शिलालेख में गाङ्गराज श्रीपुरुष के गज-शास्त्र का वर्णन है। श्रीपुरुष का राज्यकाल शक ६७२-६६८ अथवा विक्रम संवत् ८०७-८३३ है। शिलालेख के अनुसार श्रीपुरुष का उत्तराधिकारी शिवमार था (विक्रम सं० ८४०)। शिवमार नें भी गजशास्त्र रचा था। सम्भव है कल्पनारत्न का रचयिता शिवरामभूपति तथा शिलालेख वाला राजा शिवमार एक हो।

४. **अग्निवेश रामायण**—न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम पृ० ३० पर अग्निवेश-रामायण का उल्लेख है।

५. अग्निवेश-संहिता[1]—पूर्व पृ० १६७ पर तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के प्रमाण से लिख चुके है कि कृष्ण यजुर्वेद की अग्निवेश-सहिता भी थी। वह इस समय उपलब्ध नही। अग्निवेश कल्प का रचयिता भी अग्निवेश था। इसका एक भाग आग्निवेश्य-गृह्यसूत्र प्रकाशित हो चुका है।

३४. भेल = भेड ॥२॥

वंश—भेल के वंश के विषय मे अभी हम कुछ नही कह सकते।

नाम—पुरातन ग्रन्थो मे भेल तथा भेड दोनो नाम प्रयुक्त हुए है।

काल—अग्निवेश का काल ही भेल का काल था। काश्यप सहिता में अनेक आयुर्वेदीय विचार-परिषदो का वर्णन है। ऐसी ही एक परिषद् मे गार्ग्य, माठर, आत्रेय पुनर्वसु, पाराशर्य तथा कश्यप के साथ भेल भी उपस्थित था।[2] निश्चय है कि भेल इन सब आचार्यो का समकालिक था। भेलसंहिता में वर्णित एक आयुर्वेद-परिषद् मे बडिश, शौनक, खण्डकाप्य, पराशर, भरद्वाज काश्यप तथा भेल उपस्थित थे।[3] इस परिषद् का प्रधान पुनर्वसु आत्रेय था। इससे ज्ञात होता है कि आत्रेय पुनर्वसु तथा भेल, दोनो गुरु-शिष्य साथ-साथ अनेक सम्मेलनो में विद्यमान थे। चरकसहिता सू० १।३१ मे लिखा है कि अग्निवेश तथा ल आदि भेछ· सहपाठियो ने एक काल मे ही तन्त्र-रचना की। जेज्जट, वाग्भट (तीसरी-चौथी शती विक्रम), सुश्रुत-प्रतिसस्कर्ता नागार्जुन आदि पूर्व, पूर्वतर तथा पूर्वतम आचार्य अपने ग्रन्थो मे इस तथ्य की पुष्टि करते है।

गुरु—पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय भेल का गुरु था। अग्निवेशतन्त्र के समान भेलसहिता मे मूल उपदेष्टा पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय है।

भेल-तन्त्र—भेल का तन्त्र कायचिकित्सा-परक था। पूर्व प्रमाणो से निश्चय होता है कि भेल तथा अग्निवेश के तन्त्र समकाल में रचे गए। परन्तु रचना-कौशल में भेलतन्त्र अग्निवेश-तन्त्र के तुल्य न था। अत वाग्भट अष्टाङ्गहृदय, उ० ४०।८८ में लिखता है—

> ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
> भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम् ॥

अर्थात्—यदि ऋषियो के रचे ग्रन्थ पढने मे ही प्रीति है तो चरक तथा सुश्रुत ही क्यो पढे जाते है। [भेड आदि के ग्रन्थ भी ऋषि-प्रणीत है] वे

---

१. देखो पं० भगवद्दत्त जी रचित वैदिक वाङ्मय का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० २०१।

२. काश्यपसंहिता पृ० ११०।　३. भेलसंहिता पृ० ८४।

क्यो नही पढे जाते। निष्कर्ष यह है कि सुभाषित कही से भी ग्रहण करना चाहिए।

स्पष्ट है कि भेड आदि कृत ग्रन्थो की अपेक्षा चरक तथा सुश्रुत तन्त्रो का अधिक आदर था।

भेल संहिता मे वर्णित पुरातन आचार्य—भेलसहिता पृ० ११ पर ब्रह्म-प्रोक्त मन्त्र का उल्लेख है। इससे आगे पृ० १४३, १६३ पर धान्वन्तर-सर्पि के सेवन का विधान है। परिणामत. भेल को तन्त्र रचना के समय से पूर्व धन्वन्तरि का ग्रन्थ रचा जा चुका था। पृ० २१० पर अगस्त्याभयलेह का प्रयोग निर्दिष्ट है। इससे पूर्व, पृ० १८७ पर निम्नलिखित वचन है—

तं तं निहन्ति वै रोगं देवारीन् केशवो यथा।

यहा केशव शब्द से कृष्ण नही अपितु विष्णु अभिप्रेत है।

विचार-परिषदों में उपस्थित ऋषि—चरक संहिता मे वर्णित आयुर्वेदीय विचार-परिषदो का वर्णन कर चुके है। उसी ढग की विचार-परिषदो का वर्णन भेलसहिता मे भी है। इन परिषदो मे अनेक पुरातन ऋषि विद्यमान थे। यथा, क्रमश पृ० २०, पृ० २६, पृ० ८४—

प्रथम सभा	द्वितीय सभा	तृतीय सभा
१. आत्रेय	१. कृष्णात्रेय	१. बडिश
२. (खण्ड) काप्य	२. अनेक ऋषि	२. शौनक
३. मैत्रेय		३. खण्डकाप्य
		४. पराशर
		५. भरद्वाज
		६. काश्यप
		७. पुनर्वसु आत्रेय

भेल के काल में अभ्यास द्वारा शल्य-क्रिया शिक्षण

आज के काल मे वैद्य लोग शल्य-क्रिया विशेषज्ञ नही हो सकते। कारण, उनके लिए शल्य-क्रिया के अभ्यास का समुचित प्रबन्ध नही। एलोपैथिक सिद्धान्तानुसार डाक्टरो को शल्य-क्रिया का अभ्यास करवाने का पूर्ण प्रबन्ध है। अत आयुर्वैदिक ढग से शल्य-क्रिया मे अभ्यस्त वैद्यो का अभाव है। पुरातन काल मे इसका पूर्ण प्रबन्ध था। भेल के एक शब्द से यह तथ्य सामने आ जाता है। भेलसहिता पृ० १८२ पर लिखा है—

शल्यकर्ता प्रयुञ्जीत दृष्टकर्मा चिकित्सितम्।

अर्थात्—दृष्टकर्मा शल्यकर्ता [जिसने साक्षात् क्रिया देखकर शल्यक्रिया

सीखी हो, वह अर्श की शल्य] चिकित्सा करे।

भेल के काल मे आयुर्वेद पूर्ण ऐश्वर्य पर था। उस काल के आर्यों को इन बातो का पूर्ण ज्ञान था। यह असत्य-प्रचार है कि आज मानव-बुद्धि अधिक विकसित हो गई है।

भेलसंहिता के हस्तलेख

१. प्रथम हस्तलेख—तञ्जोर के राजप्रासाद के पुस्तकालय में तैलुगु लिपि में भेलसहिता का एक हस्तलेख विद्यमान है। विद्वान् लोग इसी की प्रतिलिपियाँ मंगा कर समय-समय पर प्रयोग मे लाते रहे है। श्री० आशुतोष मुखोपाध्याय भेलसहिता के मुद्रित ग्रन्थ के अग्रेजी प्राक्कथन में लिखते है—

"सन् १९०५ में डाक्टर हर्नलि ने अपने लिए इस हस्तलेख की एक प्रतिलिपि बनवाई थी।"

इसके आगे वे पुन लिखते है—

This manuscript is taken by Dr. Hoernle to have been written about 1650 A. D.

अर्थात—डा० हर्नलि का मत है कि यह हस्तलेख लगभग सन् १६५० मे लिखा गया था।

२. द्वितीय हस्तलेख—जर्मन विद्वान् आफ्रेख्ट के कैटेलोगस कैटेलोगोरम के अनुसार लाहौर के पं० राधाकृष्ण के पुस्तकालय मे इस ग्रन्थ का एक ग्रन्य कोश था। पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थो के अन्वेषक प० भगवद्दत्तजी ने बताया था कि उन्होने सन् १९१६-१७ के समीप उस घर की पूर्ण छानबीन की थी। वहाँ से पता लगा था कि वह कोश अन्य अनेक हस्तलिखित ग्रन्थो के साथ जर्मनी पहुँच गया था। परन्तु जर्मनी मे भी इस ग्रन्थ का पता नही लगा। उसी सग्रह के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ पण्डितजी ने डा० बालकृष्ण (काश्मीरक) के घर लाहौर मे देखे थे। परन्तु वहाँ भी यह कोश नही था।

३. तृतीय हस्तलेख—भेलसहिता के इस हस्तलेख की सूचना अध्यापक कीथ ने दी है—

Some light has been thrown by the discoveries of manuscripts in East Turkestan on the Bheda-Samhita. A paper manuscript with a fragment of the text, which can be assigned to the ninth century A. D., suggests strongly that the text published from a single Telugu ms. presents a version of the samhita which has

suffered alteration, a chapter on रक्तपित्त in the निदानस्थान having been replaced by one on कास।

अर्थात—पूर्वी पाकिस्तान मे हस्तलेखो की प्राप्ति ने भेड स० पर कुछ प्रकाश डाला है। वहाँ से भेडसहिता के, नवम शती ईसा के समीप के, कागज पर लिख हस्तलेख का कुछ भाग प्राप्त हुआ है। उससे प्रतीत होता है कि मुद्रित ग्रन्थ का पाठ कुछ भिन्न है। निदानस्थान-गत रक्तपित्त का अध्याय मुद्रित पाठ में कास का अध्याय हो गया है।

मुद्रित ग्रन्थ—श्री० आशुतोष मुकर्जी ने तञ्जोर की प्रति से भेडसहिता का अलभ्य ग्रन्थ कलकत्ता यूनिवर्सिटी की ओर से छपवाकर वैद्य-ससार की अनन्य सेवा की। यह सस्करण सन् १६२१ मे मुद्रित हुआ।

इस मुद्रित पाठ मे वेदान्तविशारद अनन्तकृष्ण शास्त्री जी के अनेक प्रस्तावित सशोधन कोष्ठो में प्रदर्शित है। ग्रन्थ के मुद्रित होने के कुछ काल पश्चात् प० भगवद्दत्तजी ने श्री० आशुतोष मुखोपाध्याय जी को लिखा था कि निम्नलिखित नौ ग्रन्थो की सहायता से भेलसहिता के अनेक मुद्रित-पाठ शुद्ध तथा अनेक त्रुटित-पाठ पूर्ण किए जा सकते है—

१. कर्नल बावर का हस्तलेख (नावनीतक आदि) भाग १, २, ३।
२. गदनिग्रह भाग प्रथम, द्वितीय।
३. निबन्धसग्रह डल्हणकृत सुश्रुत टीका।
४. माधवनिदान पर मधुकोश व्याख्या।
५. योगरत्नाकर।
६. वगसेन।
७. योगरत्नसमुच्चय।
८. वृन्दमाधव व्याख्या-कुसुमावलियुक्त।
९. रसरत्नाकर।

श्री० आशुतोष मुखोपाध्याय का उत्तर आने पर प० जी ने भेलसहिता के ऐसे संशोधनो का प्रथम सग्रह मुखोपाध्यायजी को भेज दिया था। दैव-वशात् मुखोपाध्याय जी का निधन हो गया। वह काम वही स्थगित हुआ।

इसके पश्चात् आयुर्वेद के अन्य अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है। यथा—

१०. चरकसहिता पर जेज्जट टीका का एक अश।
११. चिकित्सा कलिका सटीक।
१२. अष्टाङ्गहृदय पर हेमाद्रि टीका।

इन ग्रन्थो में भी भेलसहिता के अनेक वचन उद्धृत है।

इनके अतिरिक्त मद्रास मे दो और ग्रन्थ छपे है, जो इस समय हमारे पास नही है। उनमे भी भेलसहिता के अनेक उद्धरण प्राप्त होते है।

इस ग्रन्थ के भावी सम्पादक को इस सारी सामग्री की सहायता लेनी चाहिए।

३५. पराशर ॥३॥

वंश—पराशर का वश प्रसिद्ध है। पूर्व पृ० १५३ पर पराशर का बंश-वृक्ष लिख चुके है। ब्रह्मा का मानसपुत्र वसिष्ठ था। वही वसिष्ठ अपरजन्म में मैत्रावरुणी हुआ। इस वसिष्ठ का पुत्र शक्ति था। शक्ति के पुत्र-पौत्र अनेक थे। शक्ति के भाई भी होगे। परन्तु उनका विशेष वृत्त अभी हमें नहीं मिला। इस विषय में ताण्ड्य ब्राह्मण ४।७।३ तथा ८।२।४ द्रष्टव्य है। जैमिनीय ब्राह्मण १।१५० का निम्नलिखित वचन भी देखना चाहिए—

वसिष्ठो वै जितो हतपुत्रोऽकामयत बहुप्रजया पशुभिः प्रजायेयेति।

अर्थात्—हतपुत्र तथा [विश्वामित्र] से विजित वसिष्ठ ने कामना की कि मै बहु-प्रजा तथा पशु वाला हो जाऊ।

शक्ति का पुत्र पराशर था। पुराण पाठानुसार पराशर की माता का नाम अदृश्यन्ती था। पराशर के अतिरिक्त शक्ति के दो अन्य पुत्रो का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थो में है—

स एतद् अन्धीगुश् शाक्त्यस् सामापश्यत्। जै० ब्रा० १।१६५॥

अर्थात्—शक्तिपुत्र अन्धीगुः ने अमुक साम देखा।

स्पष्ट है कि शक्ति के एक पुत्र का नाम अन्धीगु. था। एक अन्य पुत्र का नाम गौरीविति था। यथा—

गौरिवितिर्वा एतच् छाक्त्यः। जै० ब्रा० १।२०४॥ ताण्ड्य ब्रा० ११।५।१४॥

इस प्रकार निम्नलिखित वशवृक्ष बनता है—
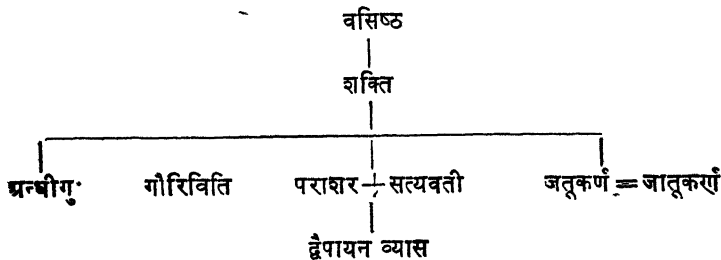
आत्रेय वशियो के समान पराशर वंशियो के भी श्वेतादि भेद हुए। यथा—

गौर पराशर, नील पराशर, कृष्ण पराशर, श्वेत पराशर, श्याम पराशर, धूम्र पराशर,[1] अरुण पराशर[2]।

गिरिन्द्रनाथ स्वीकृत दो पराशर—हि० इ० मे०, भाग तृतीय पृ०-५६६ तथा ५६८ पर गिरिन्द्रनाथ जी कृष्ण द्वैपायन के पिता को वृद्ध पराशर अथवा पराशर प्रथम, तथा पुनर्वसु-शिष्य को पराशर द्वितीय मानते है।

उनका लेख हमारी समझ मे नही आया। भारतीय इतिहास मे शाक्त्य-पराशर ही पुनर्वसु का शिष्य तथा कृष्ण द्वैपायन का पिता था। आर्य वाङ्मय में दो पराशर नही हैं। नाथ जी की भूल का खण्डन आगे ग्रन्थ शीर्षक के नीचे है।

काल—अग्निवेश, भेल तथा पराशर समकालिक थे। पूर्व पृ० १६७ पर लिख चुके है कि चौबीसवे परिवर्त का व्यास ऋक्ष अर्थात् वाल्मीकि था। उसके साथी शालिहोत्र तथा अग्निवेश्य आदि थे। अत अग्निवेश का सहपाठी पराशर चौबीसवें परिवर्त में जीवित था। पालकाप्य मुनि के हस्तिशास्त्र के आरम्भ मे लिखा है कि पराशर ऋषि अग्निवेश के साथ दशरथ-सखा महाराज रोमपाद की सभा मे उपस्थित था। इसके पश्चात् दीर्घ तपस्या तथा विस्तृत अध्ययन से छब्बीसवे परिवर्त का व्यास पराशर बना।[3] बृहद्रथ ने पराशर से वास्तु-शास्त्र सीखा, तथा पराशर इस विद्या मे गर्ग का शिष्य था।[4] पराशर का पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास था। अत भारतयुद्ध से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व तक पराशर जीवित था। पाणिनि मुनि (विक्रम से २८०० वर्ष पूर्व) कृत अष्टाध्यायी ४।१।१०५ के गण मे पराशर का उल्लेख है।

पराशर ने परीक्षित के काल मे विष्णु पुराण रचा। अत वह परीक्षित-काल तक भी जीवित था।

पराशर के काल मे ऋतुक्रम—अद्भुतसागर के कर्ता बल्लालसेन (शके १०८९) ने लिखा है[5]—

तथा च स्वकालिकम् ऋतुक्रममाह पराशर'—

तस्य च श्रविष्ठाद्यात् पौष्णान्तं चरन शिशिरः। वसन्तः पौष्णार्धाद् रोहिण्यन्तम्। सौम्यात् सार्पार्धं ग्रीष्मः। प्रावट् सार्पाद्याद् हस्तान्तम्। चित्राद्याद् इन्द्रार्धं शरत्। हेमन्तो ज्येष्ठाधाद् वैष्णवान्तमम्। इति।

---

१. देखो मत्स्य पु० २०१।३३-३८॥
३. वायु २३।२१३॥ ४ विश्वकर्म प्रकाश १६।११०॥
५. देखो, पृ० १४।

इससे आगे वह वराहमिहिरकृत पञ्चसिद्धान्तिका से वराह-काल का ऋतु-क्रम लिखता है। दोनों की तुलना से पता लगता है कि पराशर-कालिक ऋतु-क्रम वराह-कालिक-क्रम से सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ था।

यदि कोई कहे कि किसी ने पराशर के नाम पर ग्रन्थ प्रसिद्ध कर दिया, तो क्या उसने सब गणनाए करके पुराने ऋतु-क्रम भी अनुमानित किए। यह है महती क्लिष्ट कल्पना तथा महदज्ञान की पराकाष्ठा।

गुरु

१. पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय—पराशर का आयुर्वेद का आचार्य पुनर्वसु अथवा कृष्ण आत्रेय था।

२. गर्ग—विश्वकर्म प्रकाश, १६।११० के अनुसार ऋषि गर्ग से पराशर ने वास्तुशास्त्र सीखा।

शिष्य

१. बृहद्रथ—बृहद्रथ ने आचार्य पराशर से वास्तुशास्त्र सीखा। पराशर ने गोलक्षण का उपदेश भी बृहद्रथ के लिए किया।

२. मैत्रेय—ऋषि पराशर ने अपने शिष्य मैत्रेय को ज्योतिशास्त्र सिखाया। गणक तरङ्गिणी के आरम्भ में उद्धृत पराशर के वचन से यह स्पष्ट हो जाता है—

तथा चाह पराशरः—

मैत्रेयाय मयाप्युक्तं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
शास्त्रमाद्यं तदेवेदं लोके यच्चातिदुर्लभम्॥

३. कौशिक—पराशर का एक शिष्य कौशिक था। ज्योतिष-शास्त्र में उसी के प्रश्न हैं।[1]

ग्रन्थ

१. आयुर्वेदीय पराशरतन्त्र—पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्रवचनानुसार पराशर सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था। चरकसहिता सूत्रस्थान १।३१ के अनुसार अग्निवेश, भेल तथा पराशर ने अपनी २ तन्त्ररचना समकाल में की। पराशरतन्त्र कायचिकित्सा-प्रधान था। वाग्भट ने पराशर-तन्त्र देखा था। पूर्व पृ० १९८ पर पराशर-ज्योतिशास्त्र से उद्धृत एक वचन हम लिख चुके हैं। उस वचन से स्पष्ट है कि पराशर की

---

१. अद्भुतसागर पृ० ५६६।

रचना-शैली अग्निवेश-तन्त्र की समता मे है। पराशर का आयुर्वेदी यतन्त्र इस समय उपलब्ध नही।

गिरिन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय ने सम्भवत तञ्जोर पुस्तकालय के काश्यप-सहिता के हस्तलेख के आधार पर कुछ अत्यावश्यक श्लोक उद्धृत किए है[1]—

ऋग्वेदेनोपवेदाङ्गं कश्यपेन कृतं पुरा।
लक्षग्रन्थसमोपेतं ममेयं समदीप्यताम्॥
आननं दर्पणसाम्य कररेखासमं दृशेत्।
जीवनं वैद्यतत्त्वं च मूलग्रन्थं च चाष्टमम्॥
काश्यपं कौशिकं व्यासं वासिष्ठं कृतसम्भवम्।
पाराशरं भरद्वाजं मार्कण्डेयं महामुनिम्॥

इन श्लोको से स्पष्ट है कि पराशर ऋषि का आयुर्वेदतन्त्र प्रसिद्ध था।

गिरिन्द्रनाथ की भूल का कारण—नाथ जी ने पराशर और वृद्ध पराशर दो आचार्य माने है। पूर्व पृ० २०८ पर इसका उल्लेख हो चुका है। यद्यपि आयुर्वेदीय सग्रह अथवा टीका ग्रन्थो मे वृद्ध पराशर के नाम से उद्धृत वचन हमे नही मिले, तथापि वृद्ध काश्यप, वृद्ध भोज, वृद्ध सुश्रुत तथा वृद्ध वाग्भट के नाम से उद्धृत वचन यत्र-तत्र मिलते है। प्रफुल्लचन्द्र रे[2], हर्नलि[3] तथा गिरिन्द्रनाथ[4] आदि अनेक लेखको को इससे सन्देह हुआ है कि सुश्रुत तथा वृद्ध-सुश्रुत, वाग्भट तथा वृद्धवाग्भट अथवा पराशर तथा वृद्ध पराशर दो-दो व्यक्ति थे। आर्य वाङ्मय को न जानने से यह भ्रान्ति हुई है। पालकाप्य के निम्न-लिखित अध्याय-समाप्ति-वचन हमारे अभिप्राय को स्पष्ट करेगे—

इति श्रीपालकाप्ये हस्त्यायुर्वेद-महाप्रवचने । पृ० ४५।
" " गजायुर्वेदे वृद्धपाठे ....। पृ० १६०।
" " हस्त्यायुर्वेद-महाप्रवचने महापाठे पृ० २२३।
" " " " " पृ० २८६।
" " हस्त्यायुर्वेदे " " पृ० ४७१।
" " " " वृद्धोपदेशे पृ० ७१७।

---

१. हिस्ट्री आफ इण्डियन मेडिसिन, भाग तृतीय, पृ० ५६६।

२. हि० हि० कै०, भाग १, कलकत्ता, सन् १६०४, भूमिका पृ० २६।

३. S. M. A. I. भाग १, अस्थिविद्या, आक्सफोर्ड, सन् १६०७, पृ० १०—१४।

४. हि० इ० मै० भाग ३, पृ० ५६६ – ५६८।

यह पालकाप्य ग्रन्थ द्वादश साहस्री पाठ का है। इसी का एक लघुरूप था। माधवनिदान अन्तर्गत ज्वरनिदान श्लोक १ की विजयरक्षितकृत टीका मे—**उक्तं च पालाकाप्ये** लिखकर कुछ श्लोक उद्धृत है। उन पर लाहौर-सस्करण के सम्पादक प० दीनानाथ शर्मा का टिप्पण है—

पालकाप्यविरचिते हस्त्यायुर्वेदे महारोगस्थाने नवमाध्यामे विषयोऽयं गद्य-रूपेणास्ति।

पूर्व पृ० १६० पर आत्रेय की पाँच संहिताओ का उल्लेख हो चुका है। भरत नाटच-शास्त्र की भी दो सहिताए थी। इसी प्रकार एक एक ग्रन्थकार ने ही दो-दो अथवा तीन-तीन सहिताए लिखी थी। इस तथ्य को न जानकर गिरिन्द्रनाथ आदि ने भूल की है।

पराशर मतानुयायी—टीकाकार जेज्जट चरक, सि० ३।१३–१९ की व्याख्या करते हुए पराशर के अनुयायियो का वचन उद्धृत करने से पूर्व लिखता है—**पाराशर्यास्त्वाहुः** । पृ० १६४३।

जर्मन भाषा-मत पर अशनि प्रहार—जर्मन भाषा मतानुयायियो का यह कथन कि लोकभाषा मे होने से आयुर्वेदादि ग्रन्थो की रचना, ब्राह्मण ग्रन्थो की वैदिक भाषामयी रचना के पश्चात् हुई, नितान्त भ्रान्तिजनक है। पूर्व पृ० १३८ पर लिख चुके है कि ब्राह्मण ग्रन्थ आदि का प्रवचन करने वाले ऋषि व्यास कहाते थे। उन्ही ऋषियो ने आयुर्वेदादि अन्य शास्त्रो की रचना की। ऋषि पराशर, जिसने चौबीसवे परिवर्त मे अपने आयुर्वेदीय तन्त्र की रचना की, छब्बीसवे परिवर्त मे ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रवक्ता होने से व्यास बना।[1] उसके साथी शालिहोत्र तथा अग्निवेश्य आदि थे। अतः जर्मन लेखको का भाषा-मत सर्वथा हेय है।

पराशर-तन्त्र मे आर्या छन्द—पराशर के आयुर्वेदीय तन्त्र मे आर्या छन्द का प्रयोग हुआ है। उसी काल मे वाल्मीकि की प्रसिद्ध रचना भी विभिन्न छन्दो मे हुई। अत. पाश्चात्यो का यह लिखना कि आर्या आदि छन्दो की रचना विक्रम से तीन अथवा चार सौ वर्ष पूर्व आरम्भ हुई, आर्य जाति के अति पुरातन इतिहास को पैरो तले रौदना है। वस्तुत पराशर के काल मे आर्या छन्द पर्याप्त प्रचलित था। अष्टाङ्गसग्रह, सूत्रस्थान, अध्याय १७, पृ० १२७ पर वाग्भट, पराशर के आयुर्वेदीय तन्त्र के आर्या छन्दोबद्ध दो श्लोक उद्धृत करता है—

---

१. षड्विंशे परिवर्ते तु यदा व्यासः पराशरः। वायु २३।२१२॥

पराशरस्तु पठति—

पाकास्त्रयो रसानामम्लोऽम्लं पच्यते कटुः कटुकम् ।
चत्वारोऽन्ये मधुरं सङ्कीर्ण-रसात्तु सङ्कीर्णम् ॥
कटुतिक्तकषायाणां कटुको येषां विपाक इति पक्षः ।
तेषां पित्तविघाते तिक्तकषायौ कथं भवतः ॥

इन दोनो श्लोको की व्याख्या करते हुए इन्दु अपनी टीका मे लिखता है—

पाकास्त्रयो रसानामित्यार्याद्वयं पराशरपठितम् · ·· ।

अर्थात्—रसो के तीन विपाक है इत्यादि दो आर्याछन्द पराशर ने पढे है ।

निश्चय है कि चौबीसवे परिवर्त मे ऋषि पराशर ने लोकभाषा मे अपना आयुर्वेद-तन्त्र रचा । उस तन्त्र मे उसने आर्याछन्द का प्रयोग किया । यह काल उपलब्ध ब्राह्मण ग्रन्थो के काल से बहुत पूर्व का था । अत राथ, वैबर, मैक्स-मूलर, व्हिटने, रैपसन और कीथ आदि के एतद्विषयक लेख सर्वथा भ्रम-मूलक है ।

पराशर के वचन

इस समय पराशर-कृत आयुर्वेदीय तन्त्र के वचनमात्र यत्र तत्र उदधृत मिलते है । यथा—

१ तथा च पराशरः······तथा च तद्ग्रन्थ.—

आहारोऽद्यतनो यश्च श्वो रसत्वं स गच्छति ।
शोणितत्वं तृतीये ऽह्नि चतुर्थे मांसतामपि ॥
मेदस्त्वं पञ्चमे, षष्ठे अस्थित्वं, सप्तमे व्रजेत् ।
मज्जतां, शुक्रतामेति दिवसे त्वष्टमे नृणाम् ।
तस्माद्धि पथ्यापथ्याभ्यामाहाराभ्यां नृणां ध्रुवम् ।
सप्तरात्रेण शुष्यन्ति प्रदुष्यन्ति च धातवः ॥ अ० हृ० शा० ३,६५, स० सु० ।

इनमे से पूर्व के दो श्लोक आयुर्वेदीपिका[1] में किञ्चित् शब्द-भेद से उद्धृत है । गिरिन्द्रनाथ द्वारा उद्धृत यह पाठ अति भ्रष्ट है ।[2]

२. पराशरेऽप्युक्तम्—

रक्तो महांच्छकुनाहृत षाष्टिककलमप्रमोदपतङ्गा, शीतगौरदीर्घशूक-सुगन्धिक पाण्डुतपनीयाः शालय एवंभूताः । मधुरबहुला स्थिराः स्निग्धाः

१ देखो चरक चि० १५।२०–३५ निर्णयसागर सं० तथा लाहौर सं० पृ० ११६१ ।

२. हिस्ट्री आफ इण्डियन मैडिसिन, भाग ३, पृ० ५६६ ।

पित्तानिलप्रशमनाः लघवः संग्राहिकाः शीताः इति । अ० हृ० सू० ६।७, सर्वांग सु० ।

३. ऊचे पराशरोऽप्यर्थममुमेव प्रमाणयन् ।
यथोपन्यासत प्राप्तमादौ दोषभिषग्जितम् ॥
नेतृभङ्गेन दृष्टो हि समं सैन्यपराजय. ।
स्थानतः केचिदिच्छन्ति प्राक् तावच्छ्लेष्मणो वधम् ॥ इत्यादि
अ० सं० सू० पृ० १५८-५९ तथा अ० हृ० सू० १३।१५ ॥

४. पूर्व पृ० २१२ के आरम्भ पर उद्धृत वचन अ० हृ० सू० ६।२१ की हेमाद्रि टीका मे भी उद्धृत है ।

गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मै० भाग ३, पृ० ५६८-६९ पर पराशर के छ अन्य वचन उद्धृत किये है । इन वचनो मे आयुर्वेद-दीपिका से उद्धृत सख्या २ का वचन चरक स० लाहौर स० सि० १।२९-३१ की आ० दी० मे किञ्चित् शब्दभेद से उद्धृत हैं ।

२. हस्ति आयुर्वेद—पराशर के हस्तिविद्या-परक अनेक वचन हेमाद्रि-कृत लक्षणप्रकाशादि ग्रन्थो मे उद्धृत है । पराशर का यह ग्रन्थ स्वतन्त्र था, अथवा उसकी ज्योतिष-सहिता के अन्तर्गत, यह ज्ञात नही हो सका ।

३. गोलक्षण—वराहमिहिर की बृहत्सहिता अध्याय ६१ मे पराशरकृत इस ग्रन्थ का उल्लेख है । इसका उपदेश भी बृहद्रथ के लिए हुआ था ।

४. वृक्षायुर्वेद—पराशर कृत इस ग्रन्थ के अनेक वचन अभी-अभी एक लेख में छपे है ।[1]

५. कृषि शास्त्र—अर्थशास्त्र की गणपति शास्त्रीकृत टीका, प्रथम भाग, पृ० ३२ और २८३ पर पराशर तथा वृद्धपराशर-प्रोक्त कृषिशास्त्र का उल्लेख है ।

गणपति जी ने पुरानी टीकाओ के आधार पर यह टीका रची है । पुरानी टीकाओ मे वृद्ध पराशर प्रयोग देखकर उन्होने ये शब्द लिखे है । वस्तुत पराशर तन्त्र के बृहत्पाठ को वृद्ध-पराशर कहते है ।

इसी प्रकार वृद्ध-अमरकोश भी था । देखो अमर पर टीकासर्वस्व १।१।२७॥

---

१. जर्नल एशि० सो० बंगाल, लेटर्स, भाग १६, संख्या १, सन् १९५०, नित्येन्द्रनाथ सरकार का लेख ।

६. ज्योतिष—पराशर का ज्योतिष शास्त्र सुप्रसिद्ध है। पूर्व पृ० २०६ पर लिख चुके है कि पराशर ज्योति शास्त्र प्रवर्तको मे है।

पराशर की ज्योतिष–संहिता ऋषिपुत्र द्वारा स्मृत है। ऋषिपुत्र को वराहमिहिर बृ० स० ४५।८२ मे उद्धृत करता है। अत ऋषिपुत्र वराहमिहिर (विक्रम प्रथम शती) का पूर्ववर्ती है। बृहत्सहिता ८।१ की विवृति मे भट्ट उत्पल द्वारा उद्धृत ऋषिपुत्र का एक श्लोकार्ध निम्नलिखित है—

तिष्यादि च युगं प्राहुर्वसिष्ठात्रि-पराशरा ।

अत पराशर की ज्योतिष-स० ऋषिपुत्र के ग्रन्थ से पुरानी है।

७. वास्तुशास्त्र—पूर्व लिख चुके है कि विश्वकर्मप्रकाश १६।११० के अनुसार पराशर वास्तुशास्त्र रचयिता था।

८. राजशास्त्र—कौटल्य अपने अर्थशास्त्र मे पराशर का मत बहुधा उद्धृत करता है।

९. पराशर स्मृति—पराशर स्मृति आज कल उपलब्ध है। उसके मूल-स्वरूप मे कुछ भेद होगया है। महाभारत शान्तिपर्व अ० २९६ मे जनक तथा पराशर-सवाद उल्लिखित है। अनुशासनपर्व १४६।३ से भीष्म जी वृद्धावस्था को प्राप्त पराशर के धर्म-कथन का वर्णन करते है। प्रतीत होता है, स्मृति पराशर की अन्तिम रचनाओ मे है।

१०. पुराण—विष्णुपुराण का प्रवक्ता पराशर था। उसने अभिमन्यु-पुत्र कौरव परीक्षित् के काल मे यह प्रवचन किया। यदि यह बात सत्य मानी जाए, तो परीक्षित् के काल तक पराशर जीवित था।

११. पाञ्चरात्र—पाचरात्र की दो पराशर सहिताए उपलब्ध है।

१२. पाराशर्यकल्प—विमान-विद्या का यह हस्तलेख तञ्जोर पुस्तकालय की स० ५५४२४—२७ के अन्तर्गत है। यह ग्रन्थ पराशर अथवा उसके वशज व्यास आदि का हो सकता है।

१३. ऋग्वेद-संहिता—ऋग्वेद का अध्येता पैल था। उसका शिष्य बाष्कल हुआ। बाष्कल के चार शिष्यो मे एक पराशर था। उसने पराश-सहिता का प्रवचन किया। उसका प्रोक्त ब्राह्मण और कल्प भी हो सकता है। वह एक व्यास था।

३६. जतूकर्ण ।।४।।

वंश—जतूकर्ण का वशपरिचय अभी सदिग्ध है। वायुपुराण १।१० के अनुसार जातूकर्ण वसिष्ठ का नप्ता था।

ऋषीणां च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने ॥६॥
तन्नप्त्रे चातियशसे जातूकर्णाय[1] चर्षये ।

इससे इतना स्पष्ट है कि जातूकर्ण वसिष्ठ तथा उसके वशजो का सम्बन्धी था । परन्तु यहा नप्ता शब्द विचारणीय है ।

नप्ता=पौत्र, दौहित्र अथवा प्रपौत्र—सस्कृत वाड्मय मे नप्ता शब्द का प्रयोग उपर्युक्त तीनो अर्थो मे हुआ है । जैन आचार्य हेमचन्द्र अभिधान चिन्तामणि ३।२०८ मे लिखता है—**नप्ता पौत्रः पुत्रपुत्रः** । अर्थात्-नप्ता पोता होता है । इस वचन की स्वोपज्ञ टीका मे उद्धृत शेष-कोश के अनुसार—**नप्ता तु दुहितु' पुत्रे** । अर्थात् नप्ता-शब्द पुत्री के पुत्र के लिए प्रयुक्त होता है । अमरकोश २६।२६ मे नप्त्री का अर्थ पौत्री है । वेद के **क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिः**—मन्त्र मे नप्ता का अर्थ पौत्र प्रतीत होता है । मानवश्रौतसूत्र मे लिखा है—**अमुष्य पौत्रेति पितामहस्य । अमुष्य नप्त्रेति प्रपितामहस्य**[2]—कि अमुक पितामह का पोता तथा अमुक प्रपितामह का नप्ता । श्री० रामचन्द्रजी दीक्षित अपने पुराण इण्डैक्स भाग प्रथम पृ० ४४६ पर वायु पुराण के पूर्वोक्त प्रकरण के अर्थ मे लिखते है—

Jatukarna—III, the grandson's son of वसिष्ठ ।

अर्थात् जातूकर्ण वसिष्ठ का प्रपौत्र था ।

परन्त यह विचारणीय है कि कि पुराण के पूर्वोद्धृत स्थल मे कौन-सा अर्थ यथार्थ बैठेगा ।

नाम—१. चरकसंहिता सू० १ । ३१ मे आत्रेय-शिष्य का नाम जतूकर्ण है—**अग्निवेशश्च भेलश्च जतूकर्णः पराशरः** । परन्तु चरकस०चि० ३। ७१, ७२ की व्याख्या मे जेज्जट पूर्वलिखित आत्रेय-शिष्यो के नाम उद्धृत करते हुए जतूकर्ण के स्थान पर जातूकर्ण नाम लिखता है।

२. सुश्रुतसहिता उ० १।४-७ की व्याख्या मे डल्हणाचार्य आत्रेय-शिष्य जतूकर्ण को जातूकर्ण नाम से स्मरण करता है ।

३. चरकसहिता सू० १।४४ की चक्रपाणि कृत टीका, चि० ३।६३-६७ की जेज्जट-टीका, अष्टा० हृ० सू० १।३ की सर्वाङ्ग सुन्दरा व्याख्या तथा अ०स०उ० पृ० २७० पर जतूकर्ण सहिता का नाम जातूकर्ण स० लिखा है । व्याख्या कुसुमावलि मे जतूकर्ण सहिता के प्रमाण जातूकर्ण नाम से दिए गए है ।

---

१. इसका पाठान्तर जातूकर्ण्याय है । वायु १ । १० ।

२. मैक्समूलरकृत H. A. S. L. लण्डन सं०, पृ० ३८७ पर उद्धृत ।

इसके विपरीत चरकसहिता के अन्य अनेक प्रकरणो की चक्रपाणिदत्त की व्याख्या मे—**जतूकर्णोऽप्युक्तम्**—इत्यादि कहा है।

अत जतूकर्ण तथा जातूकर्ण का भेद विचारणीय है।

जातूकर्ण तथा जातूकर्ण्य—पाणिनि मुनि अपनी अष्टाध्यायी ४।१।१०४ के गर्गादि गण मे जतूकर्ण नाम पढता है। इस गण मे अग्निवेश, अगस्ति, पुलस्ति, अश्मरथ तथा मण्डु आदि शब्द भी पढे गए है। तदनुसार जातूकर्ण्य शब्द गोत्रापत्य प्रत्ययान्त है। परन्तु अनेक पाठो मे जतूकर्ण के स्थान मे ही जातूकर्ण्य पाठ मिलता है—

१. विष्णुपुराण ३।३।१६ मे सत्ताइसवे द्वापर का व्यास जातूकर्ण लिखा है। वायुपुराण २३।२१४ मे सत्ताइसवे परिवर्त का व्यास जातूकर्ण नही अपितु जातूकर्ण्य है।

२. वायुपुराण १०३।६६ मे पराशर से पुराण-परम्परा सीखने वाला शिष्य जातूकर्ण लिखा है, परन्तु ब्रह्माण्ड पुराण ४४।६६ के अनुसार जातूकर्ण्य ने पराशर से पुराण-परम्परा सीखी।

३. बौधायन श्रौत प्रवर ४५ मे वसिष्ठ एकार्षेय-प्रवर की व्याख्या मे लिखा है—**वसिष्ठानेकार्षेयान्व्याख्यास्यामः ··· ···जातूकर्णा इत्यादि।**

इस प्रकरण मे बौधायन मुनि जातूकर्ण नाम पढता है, परन्तु यहाँ जातूकर्ण का पाठान्तर जातूकर्ण्य भी है। मत्स्य २०० । १६ के अनुसार वसिष्ठ गोत्र मे जातूकर्ण्य नाम पढा गया है।

४ वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग प्रथम, अ० ७, पृ० ६२, ६३ पर ऋग्वेदीय बाष्कल ऋषि के चार शिष्यों का वर्णन करते हुए प० भगवद्दत्त जी ने पुराणो के भिन्न भिन्न पाठ उद्धृत किए है। इन पाठो मे एक स्थान पर जातूकर्ण नाम भी उल्लिखित है—

बौद्धाग्निमाठरौ तद्वज्जातूकर्णपराशरौ।[1]

इसके आगे प० जी लिखते है—जातूकर्ण्य पाठ इसलिए ठीक है कि श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्द के वेद-शाखा प्रकरण मे जातूकर्ण्य को ही ऋग्वेदीय आचार्य लिखा है।

अत जतूकर्ण, जतुकर्ण, जातूकर्ण तथा जातूकर्ण्य नामो के यथार्थ पाठो का अन्वेषण आवश्यक है।

---

१. यह पाठ विष्णु पुराण के दयानद कालिज के हस्तलेख संख्या ५९४७ का है।

अष्टाङ्ग संग्रह उ० पृ० ३१३ पर वाग्भट के सप्तवेगान् विषस्याहु इत्यादि वचन की व्याख्या करते हुए इन्दु जातूकर्ण का उल्लेख करता है—**एवं जातूकर्णकश्यपादीनां**········।

ऐतरेय आरण्यक ५।३ मे जातूकर्ण्य का मत उद्धृत है। शाखायन श्रौतसूत्र १।२।१७,३।१६।१४, ३।२०।१९ तथा १६।२९।६ मे जातूकर्ण्य का नाम मिलता है। अन्तिम स्थान मे उसे जल=जड जातूकर्ण्य कहा है। शाखायन गृह्य ४।१०।३ मे भी जातूकर्ण्य को स्मरण किया है। कौषीतकि गृह्य २।५।४ मे जातूकर्ण्य का उल्लेख है। जातूकर्ण्य, जातूकर्ण या जातूकर्णि धर्मसूत्र के प्रमाण बालक्रीडा, प्रथम भाग, पृ० ७ तथा स्मृतिचन्द्रिका आह्निक प्रकाश पृ० ३०२ आदि पर मिलते है। वस्तुतः ये सब स्थल द्रष्टव्य है।

काल—जतूकर्ण, अग्निवेश, भेल तथा शालिहोत्र आदि समकालिक थे। पराशर तथा जतूकर्ण प्राय साथ स्मरण किए गए है। अत जतूकर्ण का काल द्वापर का आरम्भ है।

काणे जी का मत—धर्मशास्त्र के इतिहास पृ० १२० पर श्री वामन पाण्डुरङ्ग काणे लिखते है--

"Apararka quotes a verse of जातूकर्ण्य which refers to the zodiacal sign virgo. This would place the verse जातूकर्ण्य not very much earlier than the 3rd or 4th century A. D."

अर्थात्—अपरार्ककृत टीका मे जातूकर्ण्य का एक श्लोक (पृ० ४२३) पर उद्धृत है। उसमे कन्या राशि का उल्लेख है। अत श्लोकात्मिका स्मृति ईसा की तीसरी अथवा चौथी शती से अधिक पूर्व की नही हो सकती।

आलोचना—संभव है यह श्लोक जातूकर्ण्य के धर्मसूत्र में हो। हारीत तथा देवल के धर्मसूत्रो मे भी श्लोक विद्यमान है। जातूकर्ण्य धर्मसूत्र भारत-युद्धकाल से पूर्व का ग्रन्थ है। राशियो का ज्ञान आर्यो को अति पूर्वकाल मे नही था, यह कोरी गप्प है। जातूकर्ण्य रचित ग्रन्थ बहुत प्राचीन काल के है।

गुरु

१. **पुनर्वसु आत्रेय**—जतूकर्ण का आयुर्वेदोपदेष्टा गुरु पुनर्वसु आत्रेय था।

२. **पराशर**—जातुकर्ण ने ऋषि पराशर से पुराण-परम्परा सीखी।

३. **बाष्कल**—जातूकर्ण्य ने आचार्य बाष्कल से ऋग्वेद की एक सहिता पढी।

सत्ताइसवे द्वापर का व्यास—पूर्व पृ० १३८ पर उद्धृत पुराणो के प्रमाणानुसार

जातूकर्ण्य सत्ताइसवे द्वापर का व्यास था।

आयुर्वेद-कर्ता—पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार जतुकर्ण सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था।

ग्रन्थ

१. जतूकर्ण-संहिता—जतूकर्ण की आयुर्वेदीय सहिता कायचिकित्सा परक थी। यह ग्रन्थ इस समय उपलब्ध नही। इस सहिता के अनेक वचन इतस्तत उद्धृत है। चक्रपाणिदत्त ने जतूकर्णसहिता को स्थान-स्थान पर उद्धृत किया है। गिरिन्द्रनाथजी ने व्याख्याकुसुमावलि, निबन्धसंग्रह, तत्त्वचन्द्रिका तथा व्याख्या मधुकोश से इस सहिता के २४ वचन उद्धृत किए है। इस विषय मे उन्होने आयुर्वेददीपिका का प्रयोग नही किया। वस्तुत आयुर्वेददीपिका मे इस सहिता से उद्धृत वचनो का पर्याप्त भाग सुरक्षित है। स्थानाभाव से हम इस सहिता के केवल कतिपय वचन उद्धृत करते है—

क—नानाश्रुतपरिपूर्णकण्ठः शिष्यो जतूकर्णः प्राञ्जलिरधिगम्योवाच।[1]

यह वचन जतूकर्ण-सहिता के आरम्भ के प्रकरण का प्रतीत होता है।

ख—तथा च जातुकर्णवचः—सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ। ज्वराः पञ्च। रसनाडिस्थितो दोषो सन्ततो निष्प्रतिद्वन्द्वः सप्तदशद्वादशभिर्दिनैः हन्ति विमुञ्चति वा। नक्तं दिने द्विः सन्ततकोऽसृङ्मांसदूष्याद्भवति। सकृदन्येद्युर्मेदस्थः प्रतिद्वन्द्वि। अस्थनि तृतीयकः स्यात्। चतुर्थको मज्जनीति।[2]

ग—तथा जातूकर्णेऽप्युक्तं—

समानैः सर्वभावानां वृद्धिर्ह्रानिर्विपर्ययात्।[3]

घ—यदुक्तं शारीरे जतूकर्णे—ध्रुवाद्यैर्वाऽप्यतीसारे—इति।[4]

ङ—जतूकर्णेनापि स्रावणरसाञ्जनं निशायामेव विहितं। यदुक्तं—

सप्ताहाद्रसाञ्जनं नक्तमिति।[5]

च—यदाह जतूकर्णः—

पक्त्वाथाम्बुशतप्रस्थे दशभागस्थितेन तु।
तैलप्रस्थं पचेत्तेन छागीक्षीरेण संयुतम्॥इति।[6]

शेष वचनो के लिए चरकसहिता पर चक्रपाणिदत्त तथा जेज्जटकी

---

१. चर० सू० १।२॥ २ चर० चि० ३।६३-६७ जेज्जट टीका। ३ चर० सू० १।४४ आ० दी०। ४. चर० स० २।१८-२० आ० दी०। ५. चर० स० १६-१८ आ० दी०। ६. चर० स० ५।६३-७० आ० दी०।

टीकाएं देखिए । स०सु० तथा हेमाद्रि टीकायुत अष्टाङ्ग हृदय निर्णय सागर प्रेस, सन् १६३६ के सस्करण के पृ० ६३, पर जतूकर्ण का एक श्लोक उद्धृत है।

जतूकर्ण संहिता के तीन कोश—चक्रपाणिदत्त द्वारा उदधृत जतूकर्ण सहिता के वचनो से स्पष्ट है कि उसके पास जतूकर्ण-सहिता विद्यमान थी। अन्य टीकाकारो के पास भी यह संहिता थी । चक्रदत्त के टीकाकार निश्चलकर के पास इस सहिता के तीन हस्तलेख विद्यमान थे ।

श्री दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य अपने लेख[1] मे निश्चलकर की रत्नप्रभा के हस्त-लेख से एक उद्धरण प्रस्तुत करते है। इस लेख मे जतूकर्ण सहिता के पूर्व-लिखित तीन हस्तलेखो का वर्णन है—

अत्रार्थे तन्त्रान्तरम्—अग्निक्षारपलाभ्यां द्विमूत्रं चतुर्जलं च घृत-प्रस्थमिति चक्रः। पुराणपुस्तकत्रयेऽपि जतूकर्णे मया नेदं दृष्टं, दृष्टं चाग्निपलाभ्यां द्विमूत्रं चतुर्जलं घृतादिति ।

इस लेख मे निश्चलकर कहता है कि जतूकर्ण संहिता की तीन पुरानी पुस्तको मे [वह पाठ नही मिला]। जो ग्रन्थ अभी लगभग नौ सौ वर्ष पूर्व इतना प्रसिद्ध था, आज उसकी एक भी प्रति हमे सुलभ नही हो सकी।

२. पुराण-प्रवक्ता—वायुपुराण १०३।६६ के अनुसार जातुकर्ण ने पुराण-प्रवचन किया ।

३. धर्मसूत्र—जातूकर्ण्य धर्मसूत्र के अनेक प्रमाण पुरातन टीका-ग्रन्थो म उद्धृत है। जातूकर्ण्य गृह्य आदि के वचन भी मिलते है।

सभवतः उसका पूर्ण कल्पसूत्र था ।

योग—गदनिग्रह भाग प्रथम, पृ० १७ पर जतूकर्ण-सहिता से उद्धृत महा-तिक्त घृत का उल्लेख है।

३७. हारीत ॥५॥

वंश—पं० भगवद्दत्त जी ने भारतवर्ष का इतिहास पृ० ७५ पर चक्रवर्ती सम्राट् मान्धाता का वंशवृक्ष लिखा है। उसके अनुसार हारीत ऋषि मान्धाता से चौथी पीढी मे हुआ—

---

1. New Light on Vaidyaka Literature. इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, भाग २३, पृ० १२३–जून १६४७ ।
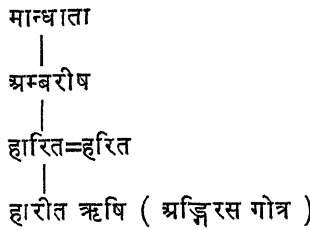
मान्धाता के ये वंशज क्षत्रोपेत द्विजाति कहाए । इस प्रसग मे हरित, हारित तथा हारीत पाठ विचारणीय है ।

काल—आत्रेय-शिष्य हारीत भी अग्निवेशादि का सहपाठी होने से द्वितीय द्वापर के आरम्भ मे विद्यमान था । साख्यकारिका की अतिप्राचीन माठरवृत्ति के अनुसार भार्गव-उलूक-वाल्मीकि-हारीत तथा देवल ने भिक्षु पञ्चशिख से साख्यज्ञान प्राप्त किया । हारीत के आयुर्वेद सहाध्यायी पराशर तथा जतुकर्ण भी थे । पराशर छब्बीसवे परिवर्त का व्यास था, तथा जातूकर्ण सत्ताइसवे परिवर्त का। हारीत का साख्य सहाध्यायी उलूक भी पराशर तथा जातूकर्ण्य का साथी था । अत हारीत बहुत पुराना आचार्य है । वह भारत युद्धसे कुछ पूर्व तक विद्यमान था ।

गुरु

१. **आत्रेय पुनर्वसु**—हारीत ने प्रसिद्ध आचार्य पुनर्वसु आत्रेय से आयुर्वेद सीखा ।

२. **भिक्षु पञ्चशिख**—माठरवृत्ति के अन्त के लेखानुसार हारीत ने भिक्षु पञ्चशिख से साख्य-ज्ञान प्राप्त किया ।

ग्रन्थ

१. **हारीत-संहिता**—पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार हारीत सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था । हारीत की आयुर्वेदीय संहिता कायचिकित्सा-परक थी । इस सहिता के वचन आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे प्रायः उपलब्ध होते है । गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मे, भाग तीन, पृ० ५५१-५५५ पर हारीत के ३४ वचन सकलित किए है । इन वचनो मे आयुर्वेद दीपिका से केवल तीन वचन उद्धृत है, परन्तु चक्रपाणिदत्त ने आ० दी० मे हारीत के अनेक अन्य वचन भी उद्धृत किए है । स्थानाभाव से हम उन्हे यहाँ नही लिखते । हारीत के अधिक वचनो के सग्रह के लिए चरकसहिता पर चक्रपाणिदत्त तथा जेज्जट की टीकाए द्रष्टव्य है ।

मुद्रित हारीत संहिता—एक हारीत सहिता कलकत्ता से मुद्रित हो चुकी

हैं। इसके विषय मे गिरिन्द्रनाथ जी लिखते हैं—

"पुरातन ऋषि हारीत चरक तथा वाग्भट का पूर्ववर्ती है, परन्तु मुद्रित हारीत सहिता मे पृ० ३४९ पर चरक तथा वाग्भट उद्धृत है।"

अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थो में उद्धृत हारीतके कुछ वचन मुद्रित हारीत-सहिता मे उपलब्ध नही होते।

फलतः विद्वानो के मतानुसार मुद्रित हारीत सहिता आत्रेय-शिष्य हारीत ऋषि की रचना नही। अपेक्षित सामग्री के अभाव से हम इस विषय पर पूर्ण विचार नही कर सके। सभवतः हारीत-सहिता के आधार पर किसी अन्य व्यक्ति ने यह संकलन किया हो। वह व्यक्ति वाग्भट आदि का उत्तरवर्ती प्रतीत होता है। अथवा यह ग्रन्थ हारीत का लघुपाठ हो और इसमे चरक तथा वाग्भट के वचन प्रक्षिप्त हो। इस विषय पर विशेष विचार की आवश्यकता है।

गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मे, भाग ३ पृ० ८२० पर हारीत अथवा आत्रेय सहिता के पाँच हस्तलेखो का उल्लेख किया है—इण्डिया आफिस २६४८। A. M पृ० १५९। L. १७७०। बीकानेर हस्तलेख १३९८। C.S.C. १०४।

२. **चिकित्साशास्त्र संग्रह**—यह ग्रन्थ भण्डारकर पुस्तक भण्डार के सन् १९३९ के सूचिपत्र, पृ० १०० पर सख्या ८३ के अन्तर्गत सन्निविष्ट है। हस्तलेख अतिजीर्ण तथा ५९ पत्रात्मक है। इसके अध्यायो के अन्त मे लिखा है—

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यकगुणदोषशास्त्रपठनविधिः नाम प्रथमोऽध्यायः।

इस ग्रन्थ के आरम्भ के श्लोको का कुछ भाग द्रष्टव्य है। यथा—

आत्रेयं बहुशिष्यैस्तु राजितं तपसा व्रतम्।
पप्रच्छ शिष्यो हारीत सर्वज्ञानमिदं महत्॥ इत्यादि।

इस हस्तलेख से मिलता-जुलता एक अन्य हस्तलेख बीकानेर के हस्तलेखो मे सख्या १३९८ के अन्तर्गत है।

३. **याजुष हारीत संहिता**—हारीत शाखाकार था। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य २।१।१८ मे आचार्य हारीत की शाखा मे प्रयुक्त होने वाले एक नियम का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

ऊष्माऽघोषो हारीतस्य।

यह नियम हारीतप्रोक्त याजुष शाखा-विषयक है।

४ **कल्पसूत्र**—हारीत का कल्पसूत्र पूर्ण था। हारीत श्रौत, गृह्य तथा धर्मसूत्र

के वचन अनेक ग्रन्थो मे उद्धृत हैं ।

हारीत धर्मसूत्र के वचन—बौधायन, आपस्तम्ब तथा वसिष्ठ धर्मसूत्रो आदि मे हारीत का मत तथा वचन बहुधा उद्धृत है । यथा—

(क)—महाभारत शान्तिपर्व अ० २९४ मे भीष्मजी हारीत वचन को उद्धृत करते है—**न हिंस्यात्सर्वभूतानि मैत्रायणगतिश्चरेत् ।**

यह पाठ यद्यपि महाभारत के सब पुरातन कोशो मे नही है, तथापि कुछ कोशो मे अवश्य मिलता है । हारीत का यह वचन उसके धर्मसूत्र मे था । देवल और हारीत के धर्मसूत्रो मे साख्य और योग का विषद वर्णन है ।

(ख)—हारीत के धर्मसूत्र का निम्नलिखित वचन कृत्यकल्पतरु, मोक्षकाण्ड, पृ० ५३ पर उद्धृत है—

पुनर्हारीत—अहिंसा नाम सर्वभूतेष्वनभिद्रोहः ।

इस वचन से मिलता-जुलता अहिसा का लक्षण पातञ्जल योगसूत्र २।३० के व्यासभाष्य मे मिलता है । यथा—

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः ।

इन दोनो वचनो का सादृश्य ध्यान रखने योग्य है । हारीत निस्सन्देह बडा पुराना ऋषि था ।

(ग) कृत्यकल्पतरु, गार्हस्थ्यकाण्ड पृ० ३८३ पर उद्धृत हारीत के धर्मसूत्र का निम्नलिखित वचन द्रष्टव्य है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि, इत्याचार्या ।

लगभग यही वचन छान्दोग्य उपनिषद् ७।२६ मे भगवान् सनत्कुमार के उपदेश में मिलता है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धि · · · ।

छान्दोग्य के पाठ से ज्ञात होता है कि यह वचन नारद-सनत्कुमार-संवाद के अन्त मे है । छान्दोग्य उपनिषद् के प्रवचन-कर्ता ने यह सारा सवाद पुरातन आचार्यो से लिया है । उन्ही आचार्यो के ग्रन्थो से हारीत ने यह वचन अपने धर्मसूत्र मे उद्धृत किया । परन्तु विदेशी लेखक ऐसे वचनो को floating matter कह कर सम्पूर्ण आर्य इतिहास की परम्परा का मूलोच्छेद कर देते हैं ।

Floating tradition—भारतीय इतिहास की सम्बद्ध परम्परा को नष्ट करने वाले पाश्चात्य लेखको को उनकी मिथ्या कल्पनाओ के कुपथ्य से एक भयानक ज्वर हो गया है । उस ज्वर की सन्निपातावस्था के प्रलाप मे वे अनेक वचन बोलते चले आ रहे है । उनमे से एक वचन है—floating

tradition अर्थात् किवदन्ती का वचन।

पाश्चात्य लेखको की परिभाषा मे इसका अर्थ है कि प्राचीन ग्रन्थो मे अति पुरातन आचार्यो के नाम मे जो मत अथवा वचन लिखे आ रहे है, उत्तरवर्ती लेखको ने वे वचन किन्ही ग्रन्थो से नही लिए, प्रत्युन किवदन्तियो से लिए है।

आलोचना—शिष्ट-सम्प्रदाय मे विदेशी लेखको की इस कल्पना का कोई प्रमाण नही। उत्तरवर्ती लेखक, पूर्व आचार्यो के ग्रन्थो से वचन उद्धृत करते समय उनके अन्त मे "इति" शब्द का प्रयोग प्राय: करते है। इति शब्द का प्रयोग केवल यह दर्शाने के लिए किया जाता है कि उद्धृत-वचन किसी सुनिश्चित ग्रन्थ से लिया गया है। इसी प्रकार सख्या (ग) के अन्तर्गत आचार्य हारीत ने भी—**आहारशुद्धौ** इत्यादि सुप्रसिद्ध वचन पुराने आचार्यो के ग्रन्थ से उद्धृत किया है।

इस मत का प्रबल खण्डन जर्मन लेखक जोहेन्स मेयर ने भी किया है। वामन पाण्डुरग काणे जी ने इस खण्डन को पढ कर यह स्वीकार किया है कि 'फ्लोटिग ट्रैडिशन' का मत असत्य है। देखो, काणे-कृत, धर्मशास्त्र का इतिहास, भूमिका।

हारीत धर्मसूत्र के दो हस्तलेख

(क) पराशर स्मृति के सम्पादक प० वामनशास्त्री इस्लाम्पुरकर ने हारीत धर्मसूत्र का एक हस्तलेख नासिक मे प्राप्त किया था। जर्मन अध्यापक जूलिअस जालि ने अपने ग्रन्थ "रैखट उण्ट सिट्टे" के पृ० ८-६ पर इसका विवरण दिया है।

(ख) इस धर्मसूत्र का दूसरा हस्तलेख त्रिवन्द्रम पुस्तकालय में सुरक्षित है। यह हस्तलेख पुरातन हस्तलिखित ग्रन्थो के सुप्रसिद्ध सग्रहकर्ता (दो वर्ष पूर्व परलोकगत) श्री राम अनन्तकृष्ण शास्त्री ने खोजा था।

योग—हारीत के १२ योग गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मै, भाग तीन, पृ० ५५६ पर उद्धृत किए है।

३८. क्षारपाणि ॥६॥

आत्रेय पुनर्वसु का छटा शिष्य क्षारपाणि था। आत्रेय से आयुर्वेद सीख कर इसने क्षारपाणितन्त्र की रचना की। यह तन्त्र भी कायचिकित्सापरक था। अनेक टीकाकार इस ग्रन्थ के वचन उद्धृत करते है। पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार क्षारपाणि सर्वलोकचिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था।

काल—चरक-सहिता, अष्टाँगसग्रह तथा अष्टाङ्गहृदय आदि के पूर्वलिखित

प्रमाणो से निश्चय है कि क्षारपाणि ने भी अग्निवेश आदि पाच सहाध्यायियो के साथ ही तन्त्ररचना की। अत अग्निवेश आदि का काल ही क्षारपाणि का काल है।

ग्रन्थ

क्षारपाणि-तन्त्र—इस समय क्षारपाणि तन्त्र उपलब्ध नही। इस तन्त्र के ११ वचन अनेक टीकाग्रन्थो से संगृहीत करके गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मै० भाग ३, पृ० ५६१—६४ पर लिखे है। इन वचनो के अतिरिक्त निम्न-लिखित अन्य ५ वचन हमे उपलब्ध हुए है—

१. उक्तं च क्षारपाणौ—त्रिमासस्य रोमनखान् संहारयेत् इति।[1]

२. क्षारपाणिना सर्वातिसाराणामेव समता पृथगुक्ता, वचनं हि—वातातिसारः सामश्च सशूलः फेनिलस्तनुः।
श्यावः सशब्दो दुर्गन्धो विबद्धोऽल्पाल्प एव च॥
एवं पित्तकफे साममतीसारं विनिर्दिशेत्।[2]

३. अपरं च क्षारपाणीयं वचः—
अस्थीनि संश्रित्य तृतीयकस्तु मेदश्च संश्रित्य च केचिदन्ये।
मज्जानमाश्रित्य चतुर्थकस्तु प्रवर्तते तेन स दुश्चिकित्स्यः॥[3]

४. क्षारपाणिनाप्युक्तम्—
पाचनं पाचयेद्दोषान् सामान् शमनमेव तु।
दीपनं ह्यग्निकृत्त्वामं कदाचित्पाचयेन्न वा॥[4] इति

यह वचन सर्वाङ्गसुन्दरा के तीन हस्तलिखित ग्रन्थो में उपलब्ध नही।

५. तथा च क्षारपाणिः—
अंगुलान्यथ चत्वारि पञ्च षट् सप्त वा तथा।
सप्तांगुलं परं नेत्रं प्रणिधेयं भिषग्विदा।
हिंस्याद्बस्तिं नरं चेह प्रमाणादधिकं ततः॥ इति।[5]

योग—गिरिन्द्रनाथजी ने क्षारपाणि के दो योग उद्धृत किये है।

३८. खरनाद ॥७॥

वंश—बौधायन श्रौ० प्रवर १७ के अनुसार खरणादि भरद्वाज गोत्रा-

---

१. चर० सू० ८। १८ की चक्रपाणिदत्त व्याख्या।

२. चर० चि० १९।११ की चक्रपाणिदत्त व्याख्या।

३. चर० चि० ३। ६३-६७ की जेज्जट व्याख्या।

४. अ० हृ० सू० १४। ६ की सर्वाग सु० व्याख्या।

५ सुश्रुतसहिता चि० ३७। १००, १०१ की डल्हण व्याख्या।

न्तर्गत है।

दो व्याकरणों में खरनादशब्द—आत्रेय-शिष्य छः आचार्यों का वर्णन हो चुका। अब एक अन्य आचार्य खरनाद का वर्णन किया जाता है। पाणिनीय गणपाठ ४।१।९६ मे खरनादिन् शब्द पढा गया है। पाणिनि के उत्तर-कालीन चान्द्रव्याकरण २।४।२० में भी इस शब्द का उल्लेख है। निश्चय है कि आचार्य खरनाद पर्याप्त प्राचीन था। खरनाद की सहिता के पर्याप्त वचन टीकाग्रन्थो मे उद्धृत है।

खरनाद-संहिता का रचना काल—यह सहिता चरक टीका-कार भट्टार हरिश्चन्द्र से पूर्व रची गई थी।

भट्टार हरिश्चन्द्रकृता अथवा प्रतिसंस्कृता—अष्टागसग्रह क०, अ०, ३८, पृ० ३९८ पर इन्दुव्याख्या मे लिखा है—

या च खरणादसंहिता भट्टारहरिश्चन्द्रकृता श्रूयते सा च चरक-प्रतिबिम्बरूपैव लक्ष्यते।

अर्थात्—जो खरणादसहिता भट्टारहरिश्चन्द्रकृता सुनी जाती है, वह चरक का प्रतिबिम्बरूप दिखाई देती है।

वैद्यमण्डल के प्रमुख स्तम्भ आचार्य श्री यादवजी यहा **भट्टारहरिश्चन्द्र-कृता** नही अपितु **भट्टारहरिश्चन्द्रप्रतिसंस्कृता** पाठ उपयुक्त मानते है।

पुरातन व्याकरणो मे पठित खरनादिन् शब्द व्यक्ति-विशेष का नाम प्रतीत होता है। अत इस सहिता का नाम इसके रचयिता खरनाद के नामानुसार रखा गया। यदि सग्रह के पूर्वलिखित वचन में आचार्य यादवजी का पाठ रखा जाये तो स्पष्ट हो जाता है कि चरकसहिता के व्याख्याकार भट्टार हरिश्चन्द्र ने आचार्य खरनाद की सहिता का प्रतिसस्कारमात्र किया। अतः इस प्रतिसस्कृत सहिता मे चरकसहिता का प्रतिबिम्ब है। अष्टाङ्गहृदय सू० ३।१२ की हेमाद्रि व्याख्या में भी चरक तथा खारणादि की एकमति प्रदर्शित की है।

चरक-खारणादि-प्रभृतिभिः शिशिरषट्कमेवाधिकृत्य चयादी-नामुक्तत्वात्।

अष्टाङ्गहृदय सू० ५।६, ७ की हेमाद्रि व्याख्या मे खारणादि का एक वचन उद्धृत है—कालमानं तूक्तं खारणादिना—

वार्षिकं तदहर्वृष्टं भूयिष्ठमाहितं जलम्।
व्युष्टं द्विरात्रं तच्चैव प्रसन्नममृतोपमम्॥

श्रीदास पण्डित अ०हृ० टीका पृ० १५०, १५१ पर इस वचन को हरिश्चन्द्र

का कहता है। स्पष्ट है कि हरिश्चन्द्र ने खारणाद सहिता का प्रतिसंस्कार किया। अतः हेमाद्रि ने जो वचन खारणादि के नाम से उद्धृत किया, उसे श्रीदास पण्डित ने हरिश्चन्द्र का लिखा।

कायचिकित्सापरक सहिता—पूर्व लिख चुके है कि यह संहिता चरक-प्रतिबिम्बरूपिणी है, अत इस सहिता मे कायचिकित्सा की प्रमुखता स्वत सिद्ध है।

खरनाद अथवा खारणादि—टीका ग्रन्थो मे खरनाद तथा खारणादि के वचन मिलते है। यथा—

१. खरनादेनोक्तम्— स्यान्निर्जलं शृतं......।[1]
२. खारणादिः— कषायमधुरो ग्राही ..।[2]
३. खारणादिस्त्वाह— स्वाद्वम्लपाकम् .....।[3]
४ खरनादे तूक्तम्— दध्यादीनां तु ....।[4]

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि खरनाद तथा खारणादि शब्द व्यक्तिवाचक है, परन्तु सख्या ४ के वचन मे खरनाद शब्द खरनाद संहिता के लिए प्रयुक्त हुआ है। ये सब पाठ चिन्त्य है।

खरनादसंहिता का पुनरुद्धार— खरनाद अथवा खारणादि के अनेक वचन भिन्न-भिन्न टीकाग्रन्थो मे सुरक्षित है। इसका सबसे अधिक भाग हेमाद्रि तथा अरुणदत्त ने सुरक्षित किया है। चरकसहिता पर चक्रपाणिदत्त तथा जेज्जट की टीकाओ मे भी खरनाद अथवा खारनादि के वचन उद्धृत है। गिरिन्द्रनाथ जी ने ऐसे ३४ वचन व्याख्या कुसुमावलि, व्याख्या मधुकोश, तत्त्वचन्द्रिका, सर्वाङ्ग-सुन्दरा तथा भावप्रकाश से सगृहीत किए है। यदि सब वचनो को शास्त्र क्रमानुसार तत् तत्प्रसङ्गान्तर्गत एकत्रित किया जाए तो इस सहिता का पर्याप्त अंश सुरक्षित हो सकता है।

योग—गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे० भाग ३, पृ० ७६८ पर खरनाद के तीन योग उद्धृत किए है।

४०. चक्षुष्येण ।।८।।

चक्षुष्य अथवा चक्षुष्येण—टीकाग्रन्थो में चक्षुष्य अथवा चक्षुष्येण के वचन उद्धृत है—

---

१. अ० हृ० सू० ५।७ की सर्वांगसु० व्याख्या।
२ अ० हृ० सू० ६।७ की सर्वांगसु० व्याख्या।
३. अ० हृ० सू० ५।२६ हेमाद्रि व्याख्या।
४. अ० हृ० सू० ५।४१ की सर्वांगसु० व्याख्या।

१ यदाह चक्षुष्य—

क्वाथपाने नव प्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता ।
मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ इति ।[1]

२. तथा च चक्षुष्येणः—

निर्वमेत्तु मुखेनैव नासया न कथञ्चन ।
विलोमतो गतो धूमः कुर्याद्दर्शनविभ्रमम् ॥इति।[2]

३. चक्षुष्येणोऽप्याह—

पटोलमूलं त्रिफला विशाला च पलांशिका ।
कटुका त्रायमाणा च पलार्धा पादनागरा ॥
तस्मात् षड्भागमुत्क्वाथ्य जले दोषहरं पिबेत् ॥इति।[3]

४. उभयमार्गपानहेतुश्चक्षुष्येण दर्शितो यथा—

उरःकण्ठादिरोगेषु मुखेनैव पिबेन्नर ।
शिर कर्णाक्षिनासास्थे नासातो धूममाचरेत् ॥इति।[4]

इन वचनो मे चक्षुष्य अथवा चक्षुष्येण पाठ विचारणीय है ।

चक्षुष्येण अथवा चाक्षुषेण संहिता—चिकित्साकलिका विवृति पृ० ७४ पर चक्षुष्य अथवा चक्षुष्येण की सहिता का नाम भी चक्षुष्येण है—इति चक्षुष्येणात् ।

अष्टाङ्ग सग्रह क०, अ० ८ पृ० ३६९ पर इस सहिता का नाम चाक्षुषेण लिखा है—

चाक्षुषेण संहितायां—पादावशेषं क्वथितं च विद्यादिति ।

पूर्व लिखित दोनो उद्धरणो मे एक ही सहिता के लिए दो भिन्न नामो का प्रयोग हुआ है, अतः दोनो पाठो का मूल कारण विचारणीय है ।

गिरिन्द्रनाथ जी ने व्याख्यामधुकोश तथा चिकित्सा-कलिका विवृत्ति से पूर्वोद्धृत वचनो के अतिरिक्त चक्षुष्येण के १३ वचन उद्धृत किए है ।

अन्य ग्रन्थ

अर्थशास्त्र ?—रघुवश ५।५० की मल्लिनाथ कृत टीका मे निम्नलिखित वचन उद्धृत है—

---

१. सुश्रुतसंहिता चि० ३३।७ की डल्हण व्याख्या ।

२. सु० स० चि० ४०।६–९ की डल्हण टीका ।

३. चर० चि० ७।६४ की चक्रपाणि व्याख्या ।

४ सु० सं० चि० ४०।६–९ की डल्हण टीका ।

अत्र चाक्षुष.—

लक्ष्मीकामो युद्धादन्यत्र करिवधं न कुर्यात्। इयं हि श्रीर्ये करिण इति।

यह अर्थशास्त्र अथवा हस्तिशास्त्र का वचन प्रतीत होता है।

४१. मार्कण्डेय

दीर्घजीवितम मार्कण्डेय ऋषि सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था।[1] पूर्व पृ० २१० पर उद्धृत काश्यप सहिता के वचनानुसार महर्षि मार्कण्डेय की आयुर्वेदीय सहिता पर्याप्त विशाल थी।

काल—पूर्व पृ० १३४ पर वर्णित हिमवत्पार्श्व पर एकत्रित होने वाले ऋषियो मे मार्कण्डेय भी उपस्थित था। फलत द्वितीय द्वापर मे मार्कण्डेय जीवित था। वाल्मीकीय रामायण दाक्षिणात्य पाठ ७१।४ मे लिखा है—मार्कण्डेयः सुदीर्घायु'। अर्थात् मार्कण्डेय ऋषि न केवल दीर्घायु प्रत्युत अति दीर्घायु थे। वही मार्कण्डेय वनवास के दिनो में युधिष्ठिर आदि पाण्डवो से मिले।

आयु—अनेक दीर्घजीवी आयुर्वेदाचार्यों का वर्णन कर चुके, परन्तु मार्कण्डेय की आयु दीर्घतम थी। महाभारत आरण्यक पर्व १८०।५,३९,४० के अनुसार मार्कण्डेय बहुवत्सरजीवी था। यथा—बहुवत्सरजीवी च मार्कण्डेयो महातपाः। अर्थात् महातपस्वी मार्कण्डेय अनेक वर्ष जीनें वाला है। आरण्यक पर्व १८७।५१ मे पुन लिखा है—दीर्घमायुश्च कौन्तेय स्वच्छन्दमरणं तथा। अर्थात् हे कौन्तेय, मार्कण्डेय दीर्घायु और स्वच्छन्द-मरण वर वाले है। मार्कण्डेय ने दीर्घायु प्राप्त करने के लिए उग्र तपस्या की, तथा रसायन सेवन किया। बावर हस्तलेख १५, भाग २, पत्रा १०, अपर भाग के अनुसार अश्वि-निर्दिष्ट अमृत तैल के सेवन से आयुष्काम भगवान् मार्कण्डेय दीर्घायु हुए—

आयुष्कामश्च भगवान् मार्कण्डेयो महानृषि.।
तैलमेतत्प्रयुञ्जानो दीर्घ्यमायुरवाप्तवानिति। ३,४

गुरु

भरद्वाज—चरक सहिता सू० १।२७ के अनुसार मार्कण्डेय ऋषि ने भी भरद्वाज से आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया।

ग्रन्थ

१. मार्कण्डेय संहिता—पूर्व पृ० १०४ पर लिखे शालिहोत्र के वचनानुसार मार्कण्डेय सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-कर्ता था। यह सहिता सम्प्रति

---

१. देखो पूर्व पृ० १०४ पर शालिहोत्र-वचन

उपलब्ध नही, न इसका कोई वचन अथवा योग ।

२. नाड़ी परीक्षा—मद्रास पुस्तकभण्डार मे नाड़ीशास्त्र-सग्रह नामक ग्रथ का एक बृहद् हस्तलेख है। उसके अंतिम श्लोक में लिखा है—**काश्यप, कौशिक, व्यास, वसिष्ठ, कुम्भसम्भव=अगस्त्य, पराशर, भरद्वाज तथा मार्कण्डेय के ग्रन्थों के आधार पर उस ग्रन्थ की रचना हुई है** । इस वचन से निश्चय होता है कि मार्कण्डेय का नाडि-शास्त्र विषयक ग्रन्थ अवश्य था । गिरिन्द्रनाथ जी हि० इ० मे० भाग २, पृ० ५०० पर घोष के प्रमाण से लिखते है—**अहमदाबाद तथा बम्बई के व्यक्तिगत पुस्तकालयों में मार्कण्डेय की नाड़ी परीक्षा रखी हुई है** । इति

३. चित्रसूत्र—विष्णु धर्मोत्तर खण्ड ३ के अनुसार मार्कण्डेय ने महाराज वज्र को चित्रसूत्र का उपदेश किया ।

४. वास्तु शास्त्र—विश्व भारती पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रन्थो की सूचि में सख्या १०८६ के अन्तर्गत मार्कण्डेय का वास्तु शास्त्र विषयक हस्तलेख सन्निविष्ट है । यथा—**मार्कण्डेयमतवास्तुशास्त्रं प्रतिमालक्षणम्** ।

५. पुराण—मार्कण्डेय पुराण प्रसिद्ध है । इस ग्रन्थ का मार्कण्डेय से कितना सम्बन्ध है, यह विचारणीय है ।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे दशमोऽध्यायः ।

एकादश अध्याय

शालाक्य-तन्त्र

४२. निमि ॥१॥

चरकसंहिता सू० ३०।२८ मे आयुर्वेद के अङ्गो का जिस क्रम से वर्णन है, तदनुसार आयुर्वेद का दूसरा अङ्ग शालाक्य है। ऊर्ध्वजत्रुगत रोगो की चिकित्सा मे शलाका=सलाई का प्रयोग होने से इस तन्त्र का नाम शालाक्य है। इस अध्याय मे इस तन्त्र के आचार्यो का वर्णन किया जाता है।

शालाक्य-चिकित्सा-विस्तारक निमि

भरद्वाज तथा पुनर्वसु आदि आचार्यो ने इन्द्र से आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया। अष्टाङ्गसग्रह सू० पृ० २ पर इसका विशद वर्णन है। सग्रह के अनुसार निमि ने भी पुनर्वसु आदि ऋषियो के साथ इन्द्र से आयुर्वेद सीखा। इन्द्र-शिष्य इन आचार्यो ने आयुर्वेद के पृथक्-पृथक् अगो पर अपने तन्त्र रचे। इनमे से निमि ने शालाक्य-तन्त्र का विस्तृत ज्ञान दिया।

आद्य भिषक्—मर्त्यलोक मे शालाक्य का क्रमबद्धज्ञान सर्वप्रथम निमि ने दिया, अत उसे आद्य-भिषक् कहा गया है। यथा—

भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः।[1]

डल्हण इसकी व्याख्या मे लिखता है—**आद्यैः भिषग्भिः विदेहादिभिः।** अर्थात् विदेह आदि आद्य भिषगो ने।

वंश—रामायण[2] तथा पुराणो[3] की वशावलियो के अनुसार महाराज निमि विदेह-राज्य का प्रथम संस्थापक था। निमि का पुत्र मिथि तथा मिथि का जनक था। तत्पश्चात् इस वश मे जनक उपाधि धारण करने वाले अनेक राजा हुए।[4]

---

१. सुश्रुतसंहिता उ० २०।१३॥ २. रामायण पश्चिमोत्तर शाखा बालकाण्ड ६७।३॥ ३. वायु ८९।३॥ ब्रह्माण्ड ३।६४॥ ४. देखो भा० व० इ०, द्वि० सं०, पृ० १९०।

प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मज्झिम निकाय मे मखादेव सुत्तन्त ८३ के अनुसार मखादेव के वश में निमि अन्तिम धार्मिक राजा था। निमि का पुत्र कराल-जनक था। कराल इस वश का अन्तिम पुरुष हुआ।

कठिनाई—पुराण वशावलि तथा मज्झिम-निकाय के वृत्तान्त मे पर्याप्त भेद है। आर्य-परम्परा में निमि वशकर्ता है, परन्तु बौद्ध लेख के अनुसार वह इस वंश के लगभग अन्त मे हुआ।

यह बात हमारी समझ मे नही आती। यदि दो निमि माने जाए तो बौद्ध-परम्परा मे उनके नामो का पार्थक्य-दर्शक कोई विशेषण मिलना चाहिए, परन्तु ऐसा विशेषण हमे दिखाई नही पडा।

निमि, विदेह तथा जनक

आयुर्वेदीय ग्रन्थो के अनेक पाठो के सन्तोलन से ज्ञात होता है कि कही-कही निमि, विदेह तथा जनक, ये तीनो शब्द एक व्यक्ति का बोध कराते है और कही-कही दो भिन्न व्यक्तियो का। नीचे हम ऐसे स्थलो का दिग्दर्शन कराते है।

गिरिन्द्रनाथ के अनुसार निमि, वैदेह, विदेह तथा महाविदेह भिन्न व्यक्ति

गिरिन्द्रनाथजी हि० इ० मे० भाग २, पृ० ३३७ पर लिखते है—

It is highly probable that there were different persons निमि, वैदेह, विदेह and महाविदेह।

आलोचना—नाथजी के अनुसार ये चार व्यक्ति हुए। वस्तुत निमि और विदेह की एकता तथा पार्थक्य विचारणीय है। वैदेह शब्द तद्धितान्त है। यह शब्द सामान्यरूपेण अनेक विदेह राजाओ के लिए प्रयुक्त हुआ है। काश्यप-सहिता तथा चरकसहिता मे निमि के लिए भी वैदेह शब्द प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द विशेषणरूप मे प्रयुक्त हो सकता है, व्यक्ति-विशेष के नाम के रूप मे नही। यद्यपि उत्तरकाल मे विदेह तथा जनक शब्द भी विशेषण बन गए, तथापि इस स्थल पर ये शब्द विचारणीय है। महाविदेह किसी व्यक्ति का नाम नही, अपितु यह प्रयोग विदेह के ग्रन्थ के महापाठ के लिए हुआ है।

निमि तथा विदेह के ऐक्य-प्रदर्शक स्थल

यहा हम ऐसे स्थलों का सग्रह उपस्थित करते है जहा निमि तथा विदेह शब्दो का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिए हुआ है—

१. भावप्रकाश मध्यखण्ड, नेत्ररोगाधिकार, श्लोक १४ मे भावामिश्र विदेह का एक श्लोकार्ध लिखता है—

एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटलान्तरम् । इति विदेहवचनात् ।

अष्टाङ्ग सग्रह उ०, पृ० १०६ पर सम्पादक रुद्रपारशव द्वारा उद्धृत किसी अज्ञातनामा व्याख्या मे यह वचन निमि के नाम से उल्लिखित है। सग्रह की टीका मे इस श्लोकार्ध के पूर्ववर्त्ती तथा उत्तरवर्ती श्लोक भी उद्धृत है। यथा—निमिनाप्युक्तम्—

यदा दोषाः प्रकुपिताः प्राप्य रूपवहे सिरे ।
दृष्टेरभ्यन्तरात् यत्तु पटलं समभिद्रुताः ॥
अभिधानाद्विवृद्धाश्च नीरुजत्वादुपेक्षिताः ।
दृशोः पटलमाश्रित्य नेत्रमध्यानुसारिणः ॥
एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात् पटलान्तरम् ।
शनैरनुसृताश्चैव पुष्यन्ति स्थिरतां गताः ॥
ओषधीरसवीर्याणां मार्गमावृत्य नेत्रयोरिति ।

स्पष्ट है कि भावमिश्र जिसे विदेह-वचन कहता है, अष्टाङ्गसंग्रह मे उद्धृत टीका में उसे निमि का श्लोक कहा है। अत निमि तथा विदेह एक है।

२. गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे० भाग २, पृ० ३५१ पर गदनिग्रह भाग २, पृ० ४५६ के आधार से चूर्णाञ्जन योग का कर्ता निमि को लिखा है। इससे आगे पृ० ३५४,५५ पर गिरिन्द्रनाथ जी ने यह सारा योग उद्धृत किया है। इसका अन्तिम वचन द्रष्टव्य है—

शस्तं सर्वाक्षिरोगेषु विदेहपतिनिर्मितम् ।

इस वचन में चूर्णाञ्जन का कर्ता विदेहपति लिखा है। अत स्पष्ट है कि यहा निमि को विदेहपति कहा है।

३. सुश्रुतसहिता उ० १।५ में लिखा है—

शालाक्यतन्त्राभिहिता विदेहाधिपकीर्तिताः ॥

इसकी व्याख्या में डल्हण लिखता है—

विदेहाधिपकीर्तिता इति निमिप्रणीताः षट्सप्ततिः नेत्ररोगाः ।

यहा डल्हण विदेहाधिप को निमि कहता है।

चक्रपाणिदत्त का पाठ—चरकसहिता चि० २६।१२६-३१ की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—नेत्ररोगाणां षटसप्ततिः प्राह विदेहः ।

अर्थात्—नेत्ररोग ७६ है यह विदेह ने कहा है।

डल्हण के अनुसार जो निमि का मत है, चक्रपाणि उसे विदेह-मत लिखता है।

इन सब पाठो मे निमि तथा विदेह को एक माना है, तथा निमि के लिए विदेहाधिपति शब्द प्रयुक्त हुआ है ।

निमि वैदेह है

१. चरक संहिता सू० २६।५ मे निमि को वैदेह कहा है— **निमिश्च राजा वैदेह.** ··· ।

२. काश्यप संहिता सि० पृ० ११६ पर लिखा है—**वैदेहो निमिः** ।

इन दोनो स्थलो मे निमि को वैदेह कहा है ।

जनक भी विदेहाधिपति तथा वैदेह कहाता था ।

१. अष्टाङ्गसंग्रह उ० पृ० १२६ पर इन्दु अपनी व्याख्या मे लिखता है—**विदेहाधिपतिः जनकः** । पृ० ३१४ पर वह पुन लिखता है—**विदेहपतिना जनकेन** ।

२. पूर्व पृ० २३२ पर उद्धृत डल्हरण के टीकांश के आगे लिखा है—**अस्याग्रे केचित्—**

> विदेहाधिपतिः श्रीमान् जनको नाम विश्रुतः ।
> आलम्भयज्ञप्रवणः सोऽयजत् ब्राह्मणैर्वृतः ॥
> तस्य यागप्रवृत्तस्य कुपितो भगवान् रविः ।
> दृष्टिं प्रणाशयामास सोऽनुतेपे महत्तपः ।
> दीप्तांशुः तपसा तेन तोषितः प्रददौ पुनः ।
> चक्षुर्वेदं प्रसन्नात्मा सर्वभूतानुकम्पया ॥

इति पाठं पठन्ति व्याख्यानयन्ति च । तं च बृहत्पञ्जिकाकारो न पठति, तस्मान्मयापि न पठतो न व्याख्यातश्च । सुश्रु० उ० १।४-७ की व्याख्या ।

अर्थात्—कुछ लोग [पूर्व पृ० २३२ पर उद्धृत सुश्रुतसंहिता के विदेहाधिपकीर्तिताः आदि] पाठ के आगे [निम्नलिखित] श्लोक पढते है, तथा इसकी व्याख्या करते है । बृहत्पञ्जिकाकार न यह पाठ लिखता है, न इसकी व्याख्या करता है । अतः मैने [डल्हण ने] भी न यह पाठ पढा है और न इसकी व्याख्या की है ।

सुश्रुतसंहिता के इस पाठ मे लिखा है—**विदेहाधिपतिः श्रीमान्**, विश्रुत जनक नाम वाला [राजा है] । उसने रवि=भास्कर से चक्षुर्वेद प्राप्त किया ।

पूर्व पृ० ६२ पर उद्धृत ब्रह्मवैवर्त के वचनानुसार जनक भास्कर का शिष्य था । अत. सुश्रुतसंहिता का उपरिलिखित पाठ विचारणीय है । इसके

अनुसार विदेहाधिपति जनक था, परन्तु डल्हण के अनुसार विदेहाधिपति निमि था। क्या जनक तथा निमि एक थे ?

३. चरकसहिता शा० ६।२१ मे अनेक सूत्रकार ऋषियो के मत-प्रदर्शन करते हुए लिखा है—**इन्द्रियाणीति जनको वैदेहः** । यहा जनक को वैदेह कहा है ।

४. काश्यपसहिता सि०, पृ० ११६ पर लिखा है · · **वैदेहो जनकः** ।

पूर्व उद्धृत चारो स्थलो मे जनक को क्रमश विदेहपति, विदेहाधिप तथा वैदेह कहा हैं ।

निमि तथा जनक दो व्यक्ति हैं

पूर्व पृ. १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचन मे जनक तथा निमि दो पृथक पृथक् व्यक्तियो को आयुर्वेद कर्ता कहा है । यथा—

हारीत· क्षारपाणिश्च निमिश्च वदतां वरः ।
जनकश्चैव राजर्षिः तथैव हि वि नग्नजित् ।

इस पाठ मे निमि तथा जनक को स्पष्टतया पृथक् माना है । पूर्व लिखित सारे पाठो से स्पष्ट है कि विदेह तथा वैदेह शब्द निमि और जनक के लिए ही प्रयुक्त हुए है। विदेह अथवा वैदेह कोई व्यक्ति विशेष नही । अत. विचारणीय पक्ष यह है कि क्या निमि तथा जनक पृथक् थे, अथवा जनक शब्द भी निमि का विशेषण है ।

क्या आयुर्वेदीय ग्रन्थों का जनक, कराल था

महाभारत शान्तिपर्व ३०२।७,१० मे कराल-जनक प्रयोग पाया जाता है । विचारणीय है कि क्या आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे भी जनक शब्द का प्रयोग कराल के लिए हुआ है । अस्तु इतना निश्चित है कि निमि का शिष्य कराल था ।

काल—निमि, आत्रेय पुनर्वसु, धन्वन्तरि, भरद्वाज, काश्यप, कश्यप तथा आलम्बायन आदि समकालिक थे । इन सब ऋषियो ने एक साथ इन्द्र से आयुर्वेदोपदेश ग्रहण किया ।[1] काश्यपसहिता सू०,पृ० २७ पर वर्णित वादसभा में वार्योविद, काङ्कायन, दारुवाह तथा हिरण्याक्ष के साथ निमि भी उपस्थित था । चरकसहिता २६।३–७ मे वर्णित चैत्ररथ वन मे होने वाली वाद-सभा में पुनर्वसु आत्रेय, भद्रकाप्य, शाकुन्तेय, हिरण्याक्ष, वार्योविद तथा काङ्कायन आदि के साथ राजा वैदेह निमि भी उपस्थित था । इस प्रसङ्ग मे इन सबको **श्रुतवयोवृद्धाः महर्षयः** कहा है । स्पष्ट है कि इस समय निमि राज्य त्याग

---

१. अष्टाङ्गसंग्रह सू० पृ० २ ।

चुका था, तथा वह वयोवृद्ध अर्थात् बडी आयु वाला था। बौद्ध जातकग्रन्थ के अनुसार कलिङ्गराज करण्डु, गाधार नग्नजित् (भारत युद्ध से २०० वर्ष पूर्व) तथा निमि वैदेह समकालिक थे। रामायण उत्तरका० सर्ग ५५ में वसिष्ठ-शाप से निमि के देह त्यागने का वर्णन है।

स्थान—निमि ने वैजयन्त नामक नगर की स्थापना की। यह नगर हिमवत्पार्श्व के निकट था।[1]

गुरु

१. **इन्द्र**—पूर्व पृ० २३० पर लिख चुके है कि निमि ने इन्द्र से आयुर्वेद सीखा।

२. **धन्वन्तरि द्वितीय**—सुश्रुतसहिता सू १।३ की निबन्धसग्रह व्याख्या के अनुसार निमि का गुरु सुश्रुत-गुरु धन्वन्तरि था।

३. **भास्कर**—पूर्व पृ. ६२ पर लिख चुके है कि जनक का गुरु भास्कर था।

शिष्य

कराल—अष्टाङ्गसग्रह वर्णित आयुर्वेदोपदेश-परम्परा के अनुसार निमि तथा पुनर्वसु आदि महर्षियो ने अपने शिष्यो को आयुर्वेद सिखाया। उस प्रकरण से ज्ञान होता है कि निमि का शिष्य कराल था।

ग्रन्थ

१. **निमि अथवा विदेह तन्त्र**—मर्त्यलोक मे शालाक्य के विस्तार का श्रेय निमि को है। वाग्भट अपने सग्रह मे लिखता है कि निमि ने अपना तन्त्र रचा। इसमे ऊर्ध्वजत्रुगत रोगो की चिकित्सा का विशद वर्णन था। अष्टाग-हृदय सू० १।४ की व्याख्या मे अरुणदत्त लिखता है—

ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा च जनकप्रणीतात् तन्त्रात् यथा अवगम्यते न तथा सुश्रुतप्रणीतात्।

अर्थात्—जनक रचित [शालाक्य] तन्त्र से ऊर्ध्वाङ्ग चिकित्सा का जैसा ज्ञान होता है वैसा सुश्रुत रचित [शल्यतन्त्र] से नही।

आयुर्वेदीय तन्त्रो, सग्रह ग्रन्थो तथा टीकाओ मे निमि वा जनक के शाला-क्यतन्त्र को प्रमाण माना है। यह तन्त्र इस समय उपलब्ध नही, परन्तु इसके वचन, योग तथा मत स्थान-स्थान पर उद्धृत है। पूर्व लिख चुके है कि निमि ने राज्य-त्याग के उपरान्त तन्त्र रचना की। अनेक स्थानो में उसे भगवान्

---

१. रामायण उत्तर ५५।६, १२॥

तथा मुनि कहा है। चरक-सहिता शा० ६।२१ मे जनक वैदेह को सूत्रकार ऋषि कहा है।

चरक तथा सुश्रुत के शालाक्य-प्रकरण का आधार

सुश्रुत सहिता मे शालाक्य-प्रकरण का वर्णन करने के लिए विदेहाधिप के तन्त्र का प्रामाण्य माना है। चरक सहिता चि० २६।१३० मे कराल के अनुसार नेत्ररोगसंख्या ९६ कही है। अष्टाङ्गहृदय की रचना यद्यपि भिन्न-भिन्न तन्त्रो के आधार पर हुई है, परन्तु शालाक्य-वर्णन मे वहा भी जनक-तन्त्र प्रमाणभूत है।

२. **महाविदेह**—विदेहतन्त्र के अतिरिक्त व्याख्या कुसुमावलि पृ० ५८८ पर दो श्लोक तथा पृ० ५९० पर आठ श्लोक महाविदेह से उद्धृत है।

३. **वैद्य-सन्देह-भञ्जन**—पूर्व पृ० ९२ पर लिखे ब्रह्मवैवर्त के वचनानुसार जनक ने भास्कर की सहिता पढ कर वैद्यसन्देह-भञ्जन नामक ग्रन्थ रचा।

वचन तथा योग—व्याख्या कुसुमावलि, निबन्ध सग्रह, व्याख्या मधुकोश, तत्त्व चन्द्रिका, भावप्रकाश, नावनीतक तथा गदनिग्रह मे उद्धृत विदेह, महाबिदेह निमि तथा जनक के ११६ वचन तथा ७ योग गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग २ मे लिखे है। इनके अतिरिक्त १२ अन्य वचन तथा योग हमने ढूढे है। स्थानाभाव से केवल उनके उपलब्धि-स्थान लिखते है—

१. चरक० शा० ६।२१॥ २ चरक० चि० २६।११९-१२३ की च० पा० व्या०। ३. चरक० चि० २६।१२९-३१ की चक्रपा० व्या०। ४. चरक० चि० २६।१३४-४३ च० पा० व्या०। ५. अ० सं० उ०, पृ० १०९। ६. अ० सं० उ०, पृ १२३। ७. अ० सं० सू०, पृ० ७१। ८. अ० हृ० उ० ११।२७॥ ९. अ० हृ० उ०, २२।८१-८३॥ १०. अ० हृ० उ० ३०।३१॥ ११. सुश्रु० उ० १८।१२ नि० सं० व्या०। १२. सुश्रु० उ० २०।१४ नि० सं० व्या।

४३. कृष्णात्रेय ॥२॥

शालाक्य-तन्त्र-कर्ता—भिषगाचार्य कृष्ण = पुनर्वसु आत्रेय का विस्तृत-वृत्त पूर्व पृ० १७१-१९१ तक कर चुके है। व्याख्या-कुसुमावलि पृ० ६०० के एक वचन से स्पष्ट है कि कृष्ण आत्रेय की शालाक्य-तन्त्र पर एक स्वतन्त्र रचना उपलब्ध थी। यथा—शालाक्भिस्तु प्रतिदोषं पठितानि द्रव्याणि। तथा च कृष्णात्रेयः—अथ द्रव्यप्रविभाग एष वातघ्नैर्भेषजैः सिद्ध····· इति।

कृष्ण = पुनर्वसु आत्रेय कायचिकित्सा का आचार्य था, परन्तु उसकी शालाक्य-तन्त्रीय रचना कृष्णात्रेय नाम से प्रसिद्ध थी।

चान्द्रभागी—पूर्व पृ० १७२ पर पुनर्वसु के चान्द्रभागी नाम की कुछ

विवेचना की गई है। इस विषय पर अमर-कोष के टीकासर्वस्व १।१०।३४ मे सर्वानन्द का लेख द्रष्टव्य है—

चान्द्रभागाया अपत्यं चान्द्रभागेय इति । चान्द्रभागी नद्याम् ।

यहा टीकासर्वस्व मे शब्दार्णव कोश का पाठ उद्धृत है। तदनुसार चन्द्रभागा नदी को चान्द्रभागा भी कहते है। उस नदी के तट का वासी चान्द्रभागी था। अष्टाध्यायी ४।१।११३ पर काशिका वृत्ति का इस विषय का पाठ त्रुटित है।

४४. कराल ॥३॥

वंश—कराल विदेहो का वशज था।

नाम—महाभारत शान्तिपर्व मे कराल को विदेहो की सामान्य उपाधि जनक से स्मरण किया है। पूर्व पृ० १०४, १०५ पर उद्धृत शालिहोत्र वचन मे भी कराल के लिए जनक शब्द का प्रयोग हुआ प्रतीत होता है।

गिरिन्द्रनाथ की भूल—गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७७१ पर कराल भट्ट का उल्लेख किया है। सम्पूर्ण आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे कराल भट्ट नाम कही नही पाया जाता। गिरिन्द्रनाथ जी निबन्धसग्रह उ० १।४-७ से निम्नलिखित भ्रष्ट पाठ उद्धृत करते है—

निमिप्रणीताः षट्सप्ततिर्नेत्ररोगाः। करालभट्ट-शौनकादिप्रणीताः।

गिरिन्द्रनाथ जी ने इस भ्रष्ट पाठ के आधार पर कराल का नाम कराल भट्ट स्वीकार किया है। वस्तुत भट्ट शब्द भद्र शब्द का अशुद्ध पाठ है। आचार्य भद्रशौनक भी शालाक्य तन्त्रकार था, अत कराल से अगला नाम भद्रशौनक है। इस विषय में सुश्रुतसंहिता निर्णयसागर सस्करण, तृतीयावृत्तिः (पृ० ५९५) का निम्नलिखित पाठ द्रष्टव्य है—

निमिप्रणीताः षट्सप्ततिर्नेत्ररोगाः न कराल-भद्रशौनकादिप्रणीताः।

इस पाठ में स्पष्टतया कराल तथा भद्रशौनक नाम वाले दो आचार्यों को स्मरण किया है। अत. शुद्ध नाम कराल है।

गुरु

निमि—अष्टाङ्गसग्रह सू०, पृ० २ के वचन से निमि कराल का गुरु प्रतीत होता है।

शालाक्य तन्त्रकार—सुश्रुतसहिता उ० १।४–७ की व्याख्या में कराल को शालाक्य तन्त्रकार कहा गया है।

चरकसंहिता के अक्षिरोग-प्रकरण का आधार कराल-तन्त्र

चरकसहिता कायचिकित्सा-परक तन्त्र है। उसमे ऊर्ध्वजत्रु रोगो का थोड़ा

सा वर्णन मिलता है। इनका सविस्तर वर्णन शालाक्य तन्त्रान्तर्गत है। काय-चिकित्सा अथवा शल्यचिकित्सा वाले आचार्यों ने इस विषय को परतन्त्र विषय कहकर अपने ग्रन्थों में सम्मिलित किया है। चरक ने अक्षिरोगों के विषय में कराल के षण्णवति नेत्ररोग सिद्धान्त का आश्रय लिया है। यथा[1]—

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपातान्नेत्रामया. षण्णवतिस्तु भेदात् ॥१३०॥
पराधिकारे तु न विस्तरोक्तिः शस्तेति तेनात्र न नः प्रयासः ॥१३१॥

अर्थात्—नेत्ररोगों के ९६ भेद हैं। परन्तु दूसरे तन्त्र के विषय में विस्तृत कथन उचित नहीं, अत इस विषय में हमारा अधिक यत्न नहीं।

उपरि लिखित वचन की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—

नेत्राणां षट्सप्तति. विदेह प्राह। करालस्तु षण्णवतिम् ।- अशीति सात्यकिः प्राह। तेषु करालमतेनैवैतदभिधानम्।

अर्थात्—विदेह ने ७६ नेत्ररोग कहे हैं, कराल ने ९६, सात्यकि ने ८०। यहाँ [चरकसंहिता में] कराल के मत से यह कहा है [कि नेत्ररोग ९६ हैं]।

ग्रन्थ

कराल का शास्त्र—यह निश्चित है कि कराल का आयुर्वेदीय तन्त्र था। अनेक संहिताकार तथा टीकाकार कराल के इस तन्त्र से परिचित थे।

वचन—चरकसंहिता चि० २६।१२९-३१ की व्याख्या में चक्रपाणिदत्त लिखता है—उक्तं च तत्र—

विंशतिः सप्त वर्त्मस्था नव संधौ प्रकीर्तिताः।
त्रयोदश तु शुक्लस्थाः षड्रोगाः कृष्णभागजाः।
विंशतिः पञ्च दृष्टिस्थाः षोडशैव च सर्वगा ॥ इति ॥

प्रतीत होता है चक्रपाणिदत्त के पास कराल-तन्त्र विद्यमान था। यह वचन कराल के तन्त्र से उद्धृत है। इसके अतिरिक्त कराल के तीन अन्य वचन गिरिन्द्रनाथजी ने हि० इ० मे० भाग तीन, पृ० ७७१ पर उद्धृत किए हैं।

४५. भद्रशौनक ॥४॥

वंश—शौनक शब्द तद्धितान्त है। अत इस वंश के मूल पुरुष का नाम शुनक था। शौनक अनेक हुए हैं। यथा—अतिधन्वा शौनक[2], कापेय शौनक[3], इसी प्रकार शालाक्य तन्त्रकार शौनक का नाम भद्र है।

---

१. चरकसंहिता चि० अ० २६।

२. छान्दोग्य उपनिषद् १।९।३॥ ३. छान्दोग्य उपनिषद् ४।३।५॥

भद्रशौनक तथा शौनक—आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे अनेक स्थल ऐसे है, जिनसे भद्रशौनक तथा शौनक दो व्यक्ति प्रतीत होते है। कुछ स्थल ऐसे भी है जिन से ज्ञात होता है कि शौनक तथा भद्रशौनक एक ही व्यक्ति के नाम है। हम दोनो प्रकार के स्थलों का निदर्शन करते है। अन्तिम निर्णय के लिए अनेक स्थलो के शुद्ध पाठो की आवश्यकता है। यद्यपि योग्य सम्पादको ने संस्कृत के अनेक ग्रन्थो का यत्नपूर्वक सम्पादन किया है, तथापि अनेक पाठो का पूर्ण शुद्ध रूप निश्चित न हो सकने से ऐतहासिक क्रम विच्छिन्न हो जाता है।

शौनक तथा भद्रशौनक के ऐक्य-प्रदर्शक स्थल

१. अग्निवेश तथा भेल एक गुरु के शिष्य थे। उन दोनो के तन्त्रो मे बहुधा समानभाव प्रतिबिम्बत है। ऐसे एक स्थल की तुलना से ज्ञात होता है कि शौनक तथा भद्रशौनक एक ही व्यक्ति का नाम था।

चरकसहिता शा० ६।२१ मे अनेक सूत्रकार ऋषियो के विप्रतिवादो के वर्णन मे भद्रशौनक का निम्नलिखित मत उद्धृत है —

(क) पक्वाशयगुदमिति भद्रशौनको मारुताधिष्ठानत्वात्।

भेलसहिना पृ० ८१ पर यही मत शौनक का कहा है। यथा—

(ख) पश्वा (क्व) दुगु (गु) द इति शौनकः, तदाश्रितत्वाद्वायोः।

भेलसहिता के इस पाठ मे कोष्ठान्तर्गत शोधन अनन्तकृष्ण शास्त्री द्वारा प्रस्तावित हैं। चरकसंहिता के उपरिलिखित पाठ से तुलना करने पर भेल-संहिता का यह त्रुटित पाठ अधिक शुद्ध हो सकता है। अग्निवेश तथा भेल दोनों सहाध्यायियो ने एक ही भाव लगभग समान शब्दो मे प्रकट किया है। यथा—पक्वाशयगुद इति ....। इन दोनो ग्रन्थो के पाठो से निश्चय है कि अग्निवेश तथा भेल इस स्थल मे शौनक तथा भद्रशौनक को अभिन्न मानते है।

२. भेलसहिता पृ० १५ के निम्नलिखित दो पाठो मे शौनक तथा भद्र-शौनक नामो का प्रयोग एक ही व्यक्ति के लिए हुआ है—

(क) सिध्यति प्रतिकुर्वाण (इत्याख्यद्भ) द्रशौनकः।

(ख) न त्वेतां बुद्धिमात्रेयः शौनकस्यानुमन्यते।

ये दोनो वाक्य एक ही प्रकरण मे स्वल्प अन्तर पर लिखे गए है। संख्या (क) के वचन मे (इत्याख्यद्भ) द्रशौनक पाठ शोधनीय है, परन्तु शौनक शब्द के साथ द्र शब्द के उल्लेख से निश्चय होता है कि मूलपाठ भद्रशौनक ही है। इस पाठ मे जिसे भद्रशौनक कहा है कुछ पक्तियो के पश्चात् उसी को शौनक कहा है। अधिक से अधिक यह सम्भावना हो सकती है कि (क) भाग

में जिसे भद्रशौनक कहा है, (ख) भाग में उसी के आधे नाम शौनक का प्रयोग हुआ।

३. पूर्व पृष्ठ १३५ पर चरक-सहिता-वर्णित हिमवत्पार्श्व पर होने वाले ऋषि सम्मेलन मे उपस्थित कुछ ऋषियो की सूचि लिख चुके है। उस सूचि मे केवल शौनक नाम है, भद्रशौनक नही। प्रकरणान्त के आदि शब्द से यदि भद्रशौनक का ग्रहण माना जाए तो दो व्यक्ति बन सकेंगे अन्यथा एक।

शौनक तथा भद्रशौनक का पार्थक्य-प्रदर्शक स्थल

चरकसहिता सि० ११। ५ तथा ६ के एक ही प्रकरण में शौनक और भद्रशौनक नामक दो व्यक्तियों के मत पृथक्-पृथक दर्शाए है—

(क) कफपित्तहरं बरं फलेष्वथ जीमूतकमाह शौनकः।

(ख) तदसाध्विति भद्रशौनकः कटुकं चातिबलघ्नमित्यपि।

(क) भाग मे शौनक जीमूतक फल को श्रेष्ठ बताता है, परन्तु (ख) भाग में भद्रशौनक कटुक फल को श्रेष्ठ समझता है।

इन दोनो प्रकार के स्थलो को ध्यान मे रखकर अन्वेषण करना चाहिए कि शौनक तथा भद्र शौनक एक व्यक्ति है अथवा भिन्न-भिन्न।

काल—पूर्व पृ० १३५ पर सख्या ४७ अन्तर्गत लिख चुके है कि चरक-सहिता वर्णित हिमवत्पार्श्व पर होने वाले ऋषि सम्मेलन मे शौनक उपस्थित था। पूर्व पृ० १८८ पर वर्णित तृतीय-सभा मे भृगु, कौशिक, काप्य, पुलस्त्य आदि के साथ शौनक भी उपस्थित था। फलत शौनक इन ऋषियो का समकालिक था।

चरक संहिता का शौनक विषयक पाठ हिरण्याक्ष कुशिक नही हो सकता ? चरकसहिता सू० अ० २५ मे आत्रेय पुनर्वसु अन्य महर्षियो के साथ "यज्ज.-पुरुषीय" विषय पर विचार-विनिमय करते है। इस स्थल पर अन्य सब ऋषि क्रमशः अपने मत बताते है। श्लोक १४,१५ में हिरण्याक्ष अपना मत कहता है। श्लोक १६ में अन्य ऋषि का मत दर्शाया है। इस श्लोक में हिरण्याक्ष को कुशिक लिखा है—तदुक्तवन्तं कुशिकं आह तन्नेति कौशिकः। यह पाठ ठीक नही। हिरण्याक्ष कौशिक था—

१. चरकसहिता सूत्रस्थान २६।३ तथा ८ में हिरण्याक्ष को कौशिक लिखा है—हिरण्याक्षश्च कौशिकः। हिरण्याक्षः कौशिकः।

२. आर्य इतिहास मे यह सर्वमान्य है कि गाधि का पिता कुशिक था। उसके वंशज कौशिक कहाए। अतः हिरण्याक्ष को कौशिक कहा जा सकता है। हिरण्याक्ष का अन्य नाम कुशिक था इसके लिए प्रमाण चाहिए।

३. चरकसहिता[1] सू० २५।१६ मे कौशिक शब्द का पाठान्तर शौनकः उपलब्ध होता है। इस पाठान्तर से ज्ञात होता है कि श्लोक १६ की पूर्वोद्धृत पक्ति का पाठ विचारणीय हो गया है।

शौनक पाठ उपयुक्त है—फलत मूलपाठ ऐसा चाहिए—

तदुक्तवन्तं कौशिकं आह तन्नेति शौनकः।

शौनक सूत्रकार—चरकसहिता शारीर स्थान ६।२१ में शौनक को सूत्रकार कहा है।

शौनक तन्त्रकार—अष्टाङ्गहृदय कल्पस्थान ६।१५ की सर्वाङ्गसुन्दरा व्याख्या मे लिखा है—शौनकाख्यस्तु तन्त्रकृदधीते—एव पठति। इस वचन में शौनक को तन्त्रकार कहा है।

भद्रशौनक शालाक्य तन्त्रकार—निबन्धसग्रह उ० १।४-७ में भद्रशौनक को शालाक्य-तन्त्रकार कहा है। देखो पूर्व पृ० २३७।

शौनक तथा भद्रशौनक के वचन

हि० इ० मे० भाग २, पृ० ४७४ ४७५ पर गिरिन्द्रनाथजी ने भद्रशौनक के चार तथा शौनक का एक वचन उद्धृत किया है। नाथजी ने शौनक का वचन वृन्दमाधव पृ० ६६४ मे उद्धृत किया है। अष्टाङ्गहृदय कल्पसिद्धिस्थान ६।१५-२१ मे भी यही उद्धृत है। अष्टाङ्गसग्रह कल्प पृ०३७० पर इस वचन का कुछ भाग उद्धृत करते हुए वाग्भट लिखता है—अन्ये पुनः पठन्ति। स्पष्ट है कि सग्रहकार ने किसी पूर्ववर्ती तन्त्र मे शौनक का यह वचन लिया है। इन पाच वचनो के अतिरिक्त चरकसहिता सू० ४।८ की चक्रपाणि व्याख्या में शौनक का एक अन्य वचन है—

अत्र शौनकवचनं तु—

द्रव्यादापोथितात्तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात्।
कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः॥ इति।

इसके अतिरिक्त अष्टाङ्गहृदय नि० १।२३ की हेमाद्रि व्याख्या में एक अन्य वचन शौनक के नाम से उद्धृत है, परन्तु इस वचन की टिप्पणी मे "शौनक" का पाठान्तर "गौतम" है। पूर्व पृ० ८१ पर हम अष्टाङ्गसग्रह नि० पृ० १० के प्रमाण से यह वचन गौतम के नाम से लिख चुके हैं।

सुश्रुतसंहिता शा० ३।३२ मे लिखा है—गर्भस्य खलु सम्भवतः पूर्वं शिरः सम्भवतीत्याह शौनकः। शिरोमूलत्वात् प्रधानेन्द्रियाणाम्।

---

१. देखो लाहौर संस्करण।

सुश्रुतसहिता के इस पाठ मे यह मत शौनक का कहा है परन्तु चरकसहिता शा० ६।२१ के अनुसार यह मत कुमारशिरा भरद्वाज का है। इस प्रकार के स्थल विचारणीय है।

ग्रन्थ

१. **भद्रशौनक-तन्त्र**—अष्टाङ्गहृदय सि० १।२०,२१ की चक्रपाणि व्याख्या में उद्धृत निम्नलिखित वचन से स्पष्ट है कि भद्रशौनक का आयुर्वेदीय ग्रन्थ था—**यत्तु भद्रशौनके संसृष्टभक्तः** ··।

२. **शौनक-तन्त्र**—पूर्व पृ० २४१ पर सर्वाङ्गसुन्दरा के प्रमाण से लिख चुके है कि शौनक तन्त्रकार था, अत शौनक-तन्त्र उस समय उपलब्ध था।

३. **यमलजननशान्ति**—मद्रास पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थो की सख्या १४४४० के अन्तर्गत शौनक का यह ग्रन्थ उल्लिखित है।

४. **कृष्णचतुर्दशीजननशान्ति**—मद्रास पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थ संख्या १४४४२ मे शौनक का यह ग्रन्थ सन्निविष्ट है।

५. **ग्रहजननशान्ति**—पूर्वोक्त पुस्तक भण्डार की हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या १४४७६ तथा ३२६७ के अन्तर्गत शौनक के इस ग्रन्थ का उल्लेख है।

६. **बृहद्देवता**—शौनककृत बृहद्देवता सम्प्रति उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद की १० अनुक्रमणियो का कर्ता भी शौनक था।

७. **कल्पसूत्र**—शौनक का कल्पसूत्र भी था।

पूर्व लिख चुके है कि शौनक अनेक थे। अत यह विचारणीय है कि ये सब ग्रन्थ किस-किस शौनक के है।

४६. काङ्कायन ॥५॥

अष्टाङ्गहृदय के सम्पादक श्री हरिशास्त्री वाग्भटविमर्श शीर्षक भूमिकात्मक लेख के पृ० १७ पर काङ्कायन की गणना शालाक्य तन्त्रकारो में करते है।

सुश्रुतसहिता १।३ मे धन्वन्तरि से शल्य विद्या सीखने वाले आठ शिष्यो के नामो के पश्चात् प्रभृति शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसकी व्याख्या करते हुए डल्हण अपने से पूर्ववर्ती टीकाकारो का मत उद्धृत करते हुए लिखता है—**प्रभृति शब्देन भोजादय । अन्ये तु··· प्रभृतिग्रहणान्निमि-काङ्कायन गार्ग्य-गालवाः······**। स्पष्ट है कि डल्हण, प्रभृति शब्द से भोज आदि को धन्वन्तरि शिष्य समझता है परन्तु अन्य आचार्य निमि, काङ्कायन-गार्ग्य तथा गालव को धन्वन्तरि से शल्य सीखने वाले समझते हैं। निमि आदि के शल्याचार्य होने का कोई अन्य प्रमाण अभी नही मिला। अपितु निमि का शालाक्याचार्य होना पूर्ण प्रमाणित है। निमि के साथी काङ्कायन आदि भी शालाक्य

तन्त्रकार प्रतीत होते हैं। सम्भवत डल्हण भी उन्हे शल्य-तन्त्र सीखने वाले नहीं समझता। अत उसने भोज के साथ उनका नाम ग्रहण नही किया।

काङ्कायन के उपलब्ध-वचनो तथा योगो में से कोई एक भी ऊर्ध्वजत्रु रोग विषयक नही। अतः डल्हण द्वारा उद्धृत अन्य आचार्यो का मत चिंत्य है।

काल—चरक वर्णित हिमवत्पार्श्व पर होने वाले ऋषि-सम्मेलन मे काङ्कायन उपस्थित था। अत काङ्कायन उस सम्मेलन में उपस्थित भृगु, अङ्गिरा आदि ऋषियो का समकालिक था। पालकाप्य हस्ति-शास्त्र १।१ के अनुसार काङ्कायन दशरथ-सखा रोमपाद की सभा मे उपस्थित था।

स्थान

बाह्लिक देश—काङ्कायन बाह्लीकदेशीय था। चरकसहिता सूत्र २६।५ में लिखा है—**काङ्कायनश्च बाह्लीकः।**

बाह्लीक भिषग्वर—बाह्लीक देश के भिषजो मे काङ्कायन श्रेष्ठ था। यथा—**बाह्लीकभिषजां वरः।**[1]

शिष्य—गदनिग्रह भाग १, पृ० १०३ के निम्नलिखित वचन से ज्ञात होता है कि काङ्कायन के अनेक शिष्य थे—

काङ्कायनेन शिष्येभ्यः शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना।

वचन—काङ्कायन के तीन वचन गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे० भाग २, पृ० ४३३ पर उद्धृत किए है। इनके अतिरिक्त काश्यपसहिता पृष्ठ २६ पर एक अन्य वचन उल्लिखित है—

त्रयो रोगाः साध्ययाप्यासाध्या इति काङ्कायनः।

सूत्रकार—चरकसहिता शा० ६।२१ मे काङ्कायन को सूत्रकार कहा है।

मन्त्रद्रष्टा—अथर्ववेद काण्ड ६ की अनुक्रमणी के अनुसार काङ्कायन भिषक् आथर्वण मन्त्रो का द्रष्टा था।

योग—काङ्कायन के चार योग हि. इ. मे. भाग २, पृ. ४६५, ६६ पर उद्धृत है।

४७. गार्ग्य ॥६॥

वंश—गार्ग्य पद गोत्र प्रत्ययान्त है। तदनुसार इसके मूल पुरुष का नाम गर्ग था।

नाम—गार्ग्य नाम के गोत्र प्रत्ययान्त होने से आयुर्वेदाचार्य गार्ग्य का वास्तविक नाम ज्ञातव्य है। शतपथ १४।१।१ मे दृप्तबालाकि गार्ग्य, हरिवश

---

१. चरकसंहिता सू० २६।५॥

पृ० ५७ पर शैशिरायण गार्ग्य, प्रश्नोपनिषद् ४।१ मे सौर्यायणि गार्ग्य, तथा वायुपुराण ३४।६३ में ऊर्ध्ववेणीकृत गार्ग्य का उल्लेख है। गार्ग्य पद के साथ प्रयुक्त इन विभिन्न विशेषणो से स्पष्ट है कि वे विभिन्न व्यक्ति थे।

काल—हिमवत्पार्श्व के ऋषि सम्मेलन मे भृगु आदि ऋषियो के साथ एक गार्ग्य भी उपस्थित था। पालकाप्य ऋषि के हस्त्यायुर्वेद १।१ के अनुसार गार्ग्य ऋषि दशरथ-सखा रोमपाद की सभा मे उपस्थित था। अतः गार्ग्य महर्षि भृगु, अगिरा तथा काङ्कायन आदि ऋषियो का समकालिक था। डल्हण द्वारा उद्धृत पुरातन आचार्यो के मतानुसार निमि, काङ्कायन तथा गालव ऋषि गार्ग्य के समकालिक थे। पाणिनीय व्याकरण मे दो स्थानो पर गार्ग्य तथा गालव का साथ-साथ निर्देश मिलता है। यदि वैयाकरण गार्ग्य तथा आयुर्वेदाचार्य गार्ग्य एक सिद्ध हो जाए तो गार्ग्य तथा गालव पाणिनि के पूर्ववर्ती थे।

गुरु

धन्वन्तरि— सुश्रुतसहिता सू० १।१ की व्याख्या मे डल्हण द्वारा उद्धृत पुरातन आचार्यों क मतानुसार गा र्ग्य ने धन्वन्तरि से शल्य शास्त्र सीखा।

वचन

१. काश्यपसहिता पृ० १०६ पर गार्ग्य का एक वचन उद्धृत है—

(जन्मप्रभृति बालानां) बस्तिकर्मोपकल्पयेत् ॥११॥
इत्याह गार्ग्यः ....　 ..　.　।

२ पालकाप्य के हस्त्यायुर्वेद पृ० ५८१ पर गार्ग्य का एक अन्य वचन उद्धृत है—

तत्र शुक्रमस्तिष्कव्यपेता गार्ग्यः प्रोवाच।

ग्रन्थ

१. **शालाक्य-तन्त्र**—अष्टाङ्गहृदय के सम्पादक श्री हरिशास्त्री पराडकर के मत में गार्ग्य का एक शालाक्यतन्त्र था।

२ **व्याकरण**—अष्टाध्यायी तथा प्रातिशाख्य मे उदधृत गार्ग्य के मत से ज्ञात होता है कि गार्ग्य का व्याकरण सर्वांगपूर्ण था।[1]

३. **निरुक्त**—यास्क अपने निरुक्त मे तीन स्थानो पर गार्ग्य का मत उद्धृत करता है।[2]

---

१. व्या० शा० इ०, पृ० १०६।

२. १।१२॥ १।३॥ १३।३१॥

४. सामवेद का पदपाठ—सामवेद का पदपाठ गार्ग्यकृत माना जाता है। निरुक्त के टीकाकार दुर्ग तथा स्कन्द का भी यह मत है। व्याकरण के इतिहास के प्रसिद्ध लेखक श्री प० युधिष्ठिर जी मीमासक ने अपने इतिहास के पृ० १०७ पर यह मत पुष्ट प्रमाणो से सिद्ध किया है।

५. तक्ष शास्त्र—पूर्व पृ० ७६ पर करविन्द स्वामी का एक वचन लिख चुके है। उसके अनुसार गार्ग्य तक्ष शास्त्र रचयिता था।

६. वास्तु शास्त्र—मद्रास पुस्तक भण्डार की हस्तलिखित ग्रन्थ सख्या १३०६१–६८ के अन्तर्गत सनत्कुमार के वास्तु शास्त्र का उल्लेख है। उसमे उद्धृत निम्नलिखित वचन मे ज्ञात होता है कि गार्ग्य का वास्तुशास्त्र भी था। यथा—

गौतमश्चैव गार्ग्यश्च भार्गवाङ्गिरसावुभौ।

४८. गालव ॥७॥

शालाक्याचार्य—हरिशास्त्री जी पराडकर ने अष्टाङ्गहृदय की भूमिका पृ० १७ पर गालव के शालाक्य-तन्त्र का उल्लेख किया है, परन्तु डल्हण द्वारा उद्धृत अन्य आचार्यो के मतानुसार गालव भी शल्य तन्त्र मे धन्वन्तरि का शिष्य था। फलत यह विचारणीय है कि निमि के साथी गालव का शालाक्य-तन्त्र था अथवा शल्य तन्त्र, अथवा दोनो तन्त्र।

काल—चरक वर्णित हिमवत्पार्श्व पर होने वाले ऋषि सम्मेलन मे गालव उपस्थित था, अतः पूर्व पृ० १३५ पर वर्णित ५१ ऋषियो का समकालिक वह अवश्य था।

ग्रन्थ

१. आयुर्वेद—पूर्व पृ० १०४ पर उल्लिखित शालिहोत्र वचनानुसार गालव सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद–कर्ता था।

२. संहिता—शैशिरि–शिक्षा के प्रारम्भ में गालव को शौनक का शिष्य तथा शाखा–प्रवर्तक कहा है।

३. ब्राह्मण—गालव–प्रोक्त कोई ब्राह्मण ग्रन्थ भी था।

४. क्रमपाठ—महाभारत शान्तिपव ३४२।१०३ के अनुसार पाञ्चाल बाभ्रव्य गालव ऋग्वेद के क्रमपाठ का प्रवक्ता था। ऋक्प्रातिशाख्य ११।६५ में इसे प्रथम क्रमप्रवक्ता लिखा है।

५. शिक्षा—महाभारत शान्तिपर्व ३४२।१०४ के अनुसार गालव ने शिक्षा का प्रणयन किया था।

६. निरुक्त—यास्क ने निरुक्त ४।३ मे गालव का निर्वचन-विषयक

एक पाठ उद्धृत किया है। उससे ज्ञात होता है कि गालव ने कोई निरुक्त रचा था।

७. **दैवत ग्रन्थ**—बृहद्दवता १।२४ मे गालव को पुराण–कवि कहा है। इससे आगे ५।३९।।, ६।४३ तथा ७।३८ से ऋचाओ के देवता-विषयक गालव के मतो का उल्लेख है।

८. **कामसूत्र**—वात्स्यायन कामसूत्र १।१।१० मे लिखा है कि पाञ्चाल बाभ्रव्य ने सात अधिकरणो मे काम शास्त्र का सक्षेप किया।

९. **व्याकरण**—गालव–रचित व्याकरण भी था। इसके विस्तृत वृत्त के लिए देखो प० युधिष्ठिर जी मीमांसककृत व्या० शा० इ० पृ० १०९।

४९. सात्यकि ।।८।।

वंश—सात्यकि शब्द तद्धितान्त है। सत्यक का पुत्र होने से वह सात्यकि कहाया। इसका वश वृष्णि था।

सात्यकि सम्बन्ध मे श्रीकृष्ण का भाई था। वह सफल सेनापति, कवि तथा इङ्गितज्ञ था। आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे उदधृत उसके कुछ वचनो से ज्ञात होता है कि वह शालाक्याचार्य था।

नाम—सात्यकि का मूल नाम युयुधान था, परन्तु आयुर्वेदीय ग्रन्थो तथा महाभारत के अनेक स्थलो मे उसके लिए सात्यकि नाम प्रयुक्त हुआ है।

गुरु

अर्जुन—सात्यकि ने पाण्डव अर्जुन से धनुर्विद्या का विशेष अभ्यास किया था। अर्जुन सात्यकि को अपना सखा तथा प्रिय शिष्य कहता था।

वचन

गिरिन्द्रनाथ जी ने सात्यकि के वशादि के विषय में कुछ नही लिखा, परन्तु हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७७६, ७७ पर सात्यकि के ११ वचन उद्धृत किए है। इनके अतिरिक्त चरकसहिता चि० २६।१२९–३१ की चक्रपाणि व्याख्या मे सात्यकि का मत उद्धृत है। यथा—

अशीतिं सात्यकिः प्राह।

ग्रन्थ

१. **शालाक्य–तन्त्र**—चक्रपाणिदत्त ने चरकसहिता चि० २६।१२९–३१ की व्याख्या मे विदेह तथा कराल के अक्षि-रोग–परक मत के साथ सात्यकि का मत भी उद्धृत किया है। इससे निश्चय है कि सात्यकि ने शालाक्य–तन्त्र रचा। सुश्रुतसहिता उ० ७।२५ की व्याख्या करते हुए दृष्टि-विज्ञानीय अध्याय मे निबन्धसग्रहकार लिखता है—**सात्यकि प्रभृतीनाम**। इससे स्पष्ट है

कि उस समय शालाक्य–तन्त्रकारो मे सात्यकि का भी प्रमुख स्थान था।

गिरिन्द्रनाथ जी द्वारा उद्धृत भ्रष्ट पाठ से उत्पन्न भूल

हि० इ० मे० भाग ३, पृ० ७७६ पर निबन्धसग्रह से उद्धृत सख्या २ के सात्यकि के वचन मे नाथ जी ने डल्हण की टीका का कुछ अश भी सात्यकि का वचन समझ लिया है। नाथ जी उद्धृत करते हैं—

तथा च रागकथनप्रस्तावे सात्यकि:—

पित्तरक्ताहिता पीताः चित्रिताः सन्निपातजाः। एक एव असौ परिम्लायी रोगोऽराग प्राप्तः सन् तिमिराख्यः। . . . भवन्ति तदा याप्यानि।

परन्तु सुश्रुतसहिता निर्णयसागर सस्करण, तृतीयावृत्ति, पृ० ६०७ पर निम्नलिखित पाठ है—

तथा च रागकथनप्रस्तावे सात्यकि :—

पित्तरक्तोत्थिता पीताश्चित्रिताः सन्निपातजाः इति। एक एवासौ परिम्लायी .. . . . .।

इस पाठ से स्पष्ट हो जाता है कि सात्यकि का वचन इति पर्यन्त है। उससे आगे का पाठ निबंधसग्रह टीका का है।

यह अध्याय इस सक्षिप्त वर्णन के साथ यही समाप्त होता है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे एकादशोऽध्यायः।

द्वादश अध्याय

मर्त्यलोक में शल्यचिकित्सा का प्रसार

धन्वन्तरि के सात प्रमुख शिष्य

५०. सुश्रुत ॥१॥

गत दो अध्यायो मे मर्त्यलोक मे काय-चिकित्सा तथा शालाक्य-तन्त्र की परम्परा का उल्लेख कर चुके। इस अध्याय मे शल्य-चिकित्सा के मर्त्यलोक मे प्रसार का इतिवृत्त लिखते है। मर्त्यलोक के सर्वप्रथम शल्योपदेष्टा दिवोदास धन्वन्तरि का वर्णन पूर्व पृ० १६०-१७० तक हो चुका। अब उसके सात प्रधान शिष्यो का वर्णन करेंगे। वर्तमान काल मे धन्वन्तरि के सातो शिष्यो मे से केवल सुश्रुत का तन्त्र उपलब्ध है। अन्य सहाध्यायियो ने सुश्रुत को अपना प्रतिनिधि बनाया था, अत सर्वप्रथम सुश्रुत का वर्णन किया जाता है।

वश—पूर्व पृ० १२६ पर लिख चुके है कि सुश्रुत महर्षि-विश्वामित्र का पुत्र था।

१ सुश्रुतसहिता के अनुसार सुश्रुत का पिता विश्वामित्र था। यथा—

(क) विश्वामित्रसुतं शिष्यमृषिं सुश्रुतमन्वशात्। चि० २।३ ॥

(ख) विश्वामित्रसुत. श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति । उ० ६६।४॥

२. महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय ४ मे विश्वामित्र के पुत्रो में सुश्रुत का नाम है—

(ग) श्यामायनोऽथ गार्ग्यश्च जाबालिः सुश्रुतस्तथा।
विश्वामित्रात्मजा सर्वे मुनयो ब्रह्मवादिनः॥

इनमे से कई पुत्र दत्तक प्रतीत होते है।

३. सुश्रुतसहिता के टीकाकार चक्रदत्त ने भी अपनी भानुमति टीका मे सुश्रुत को विश्वामित्र-पुत्र कहा है।

सुश्रुत ऋषि था

पूर्व पृ० १२६ पर लिख चुके है कि विश्वामित्र के मधुच्छन्दा आदि पुत्र ऋषि थे। उपरिलिखित (क) भाग के वाक्य मे सुश्रुत को ऋषि कहा है।

(ख) भाग के वाक्य मे श्रीमान् शब्द की टीका करता हुआ डल्हण लिखता है—

श्रीमानिति राजश्रिया ब्राह्मया वा अलंकृतः। ननु विश्वामित्रो गाधि-राजः तत्सुतत्वेन राजश्रिया योगो युक्तः, कथं ब्राह्मया श्रियेति ? सत्यं विश्वामित्रस्य ब्राह्मण्यं तपसा...।

टीकाकार के इस वचन से दो परिणाम निकलते है । यथा—

१. सुश्रुत ऋषि था । २. वह गाधिराज विश्वामित्र का पुत्र था ।

रे महोदय का भ्रम—श्री प्रफुल्लचन्द्र जी रे ने हिस्ट्री आफ हिन्दू कैमिस्ट्री भाग १, भूमिका पृ० २६ पर लिखा है—

It is not however easy to establish any connection between these names (Vishvamitra, Katyayana) and our present author (Sushruta)

अर्थात्—[विश्वामित्र तथा कात्यायन] के नामो के साथ वर्तमान लेखक [सुश्रुत] का कोई सम्बन्ध स्थापित करना सरल नही ।

फलत रे महोदय सुश्रुत को विश्वामित्र का पुत्र नही मानते ।

राजगुरु हेमराज जी का सन्देह—श्री राजगुरु जी भी काश्यपसंहिता उपोद्घात् पृ० ६३ पर लिखते है—

रामाय धनुर्विद्योपदेष्टा विश्वामित्रो महर्षिरन्य एव प्राचीनतरः स्यात् ...कोऽयं विश्वामित्र इति सम्यक् न परिचीयते ।

अर्थात्—राम को धनुर्विद्या सिखाने वाला महर्षि विश्वामित्र कोई अन्य ही प्राचीनतर है । सुश्रुत-पिता विश्वासित्र कौन है। यह ठीक ज्ञात नही होता।

आलोचना—प्रफुल्लचन्द्र जी को सुश्रुत के विश्वामित्र-पुत्र होने में ही सन्देह है, तथा राजगुरु जी को राम के समकालिक गाधिराज विश्वामित्र को सुश्रुत का पिता मानने में अडचन है ।

वस्तुत पाश्चात्यो के एतद्विषयक भ्रान्त मतो के प्रचार से ये सन्देह उत्पन्न हुए है । विश्वामित्र दीर्घायु था । डल्हण के पूर्वलिखित वचन मे सुश्रुत के पिता विश्वामित्र को गाधिराज कहा है, अतः निश्चित ही राम को धनुर्विद्यो-पदेष्टा विश्वामित्र सुश्रुत का पिता था । गाधिराज-विश्वामित्र का पुत्र होने से ही सुश्रुत को ऋषि कहा है ।

शालिहोत्र और सुश्रुत—काश्यपसहिता उपोद्घात पृ० ६९ पर राजगुरु हेमराज जी अपने पुस्तक सग्रह के हेमाद्रिकृत लक्षण-प्रकाश के अश्वप्रकरण में उद्धृत शालिहोत्र के वचनो के आधार पर लिखते है कि सुश्रुत, ऋषि शालि-होत्र का पुत्र था । यथा—

(क) शालिहोत्रं ऋषिश्रेष्ठं सुश्रुतः परिपृच्छति ।
एवं पृष्ठस्तु पुत्रेण शालिहोत्रो ऽभ्यभाषत ।
(ख) शालिहोत्रमपृच्छन्त पुत्राः सुश्रुतसङ्गता. ।
व्याख्यातं शालिहोत्रेण पुत्राय परिपृच्छते ।

शालिहोत्र सहिता के आरम्भ मे लिखा है—

कृताग्निहोत्रमासीनं शालिहोत्रं महामुनिम् ।
सुश्रुतः श्रुतसम्पन्नः पप्रच्छ पितरं स्तुतम् ।।२।।

इस वचन मे भी सुश्रुत को शालिहोत्र का पुत्र कहा है ।

एतद्विषयक सम्भावनाएं—

१ कदाचित् दो सुश्रुत थे, तथा सहिताकार सुश्रुत के लिए वैश्वामित्रि विशेषण प्रयुक्त हुआ है ।

२ सम्भवत सहिताकार वैश्वामित्रि सुश्रुत को शालिहोत्र ने अपना लिया हो, जैसे शुन शेप को विश्वामित्र ने अपनाया था ।

३. भेलसहिता पृ० ३९ का निम्नलिखित पाठ विचारणीय है—

सुश्रोता नाम मेधावी चान्द्रभागमुवाच ह ।

अर्थात्—सुश्रोता नाम वाला बुद्धिमान्, चान्द्रभाग को बोला । सम्भवतः एक ही काल में सुश्रोता तथा सुश्रुत दो व्यक्ति थे, अथवा कही-कही सुश्रोता शब्द का भ्रष्ट पाठ सुश्रुत हो गया हो ।

काल—अष्टाङ्गसग्रह सू० पृ० २ पर वाग्भट लिखता है कि धन्वन्तरि तथा आत्रेय आदि ने एक-साथ इन्द्र से आयुर्वेद सीखा । तदनु अग्निवेश, सुश्रुत आदि ने गुरुओ से ज्ञान प्राप्त करके अपनी तन्त्र रचना की । सहिताकार सुश्रुत का काल-निर्णय करने के लिए हम कुछ युक्तियो का क्रमशः उल्लेख करते हैं । यथा—

१. वाग्भट—अष्टाङ्गसग्रह सू० पृ० १५२ पर सुश्रुत का एक वचन है, अतः निश्चय ही सुश्रुत ऋषि, वाग्भट का पूर्ववर्ती था, तथा अग्निवेश आदि का समकालिक था ।

२. नागार्जुन—सुश्रुत का काल-निर्णय करने के समय पाश्चात्यो की निराधार कल्पनाओ का खण्डन करने के लिए सुश्रुतसहिता के प्रतिसस्कर्ता नागार्जुन का काल जानना आवश्यक है ।

बौद्धपरम्परा के अनुसार तुरुष्क-राज कनिष्क, भदन्त अश्वघोष तथा नागार्जुन समकालिक थे । वे प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् वसुबन्धु से कई सौ वर्ष पहले थे । भारतीय इतिहासानुसार आचार्य वसुबन्धु विक्रम की लगभग प्रथम शती

मे था। पाश्चात्य लेखको और उनके अनुयायियो ने इस सत्य कालगणना में बडी गडबड उत्पन्न की है। यह निश्चित है कि नागार्जुन शक-प्रवर्तक विक्रम से कई सौ वर्ष पहले हो चुका था। तिब्बती आचार्य लामा तारानाथ के अनुसार नागार्जुन की आयु ५२६ अथवा ५७१ वर्ष की हुई।[1] वह २०० वर्ष मध्यदेश मे, २०० वर्ष दक्षिण मे तथा १२६ वर्ष श्रीपर्वत पर रहा। रसायनज्ञ नागार्जुन की इतनी आयु होना साधारण बात है। इतने लम्बे काल मे उसने सुश्रुतसंहिता का प्रतिसस्कार कब किया, यह अभी अज्ञात है।

३. मुनि कात्यायन (२८०० विक्रम पूर्व) अष्टाध्यायी पर वार्तिक २।१। १७० मे लिखता है—**कुतपवासा. सौश्रुताः कुतपसौश्रुताः।**

निश्चय है कि ऋषि सुश्रुत वार्तिककार कात्यायन से पूर्व हो चुका था।

४. पाणिनि मुनि (२८०० वि० पूर्व) अष्टाध्यायी ६।२।३६ के गण मे **सौश्रुतपार्थिवाः** पाठ पढता है। स्पष्ट है कि पाणिनि के काल में सुश्रुत की सन्तति अथवा उसके शिष्य विद्यमान थे। फलत सुश्रुत अवश्य ही पाणिनि का पूर्ववर्ती था।

५. सुश्रुतसहिता के टीकाकार डल्हण ने इस सहिता के आर्ष तथा अनार्ष पाठो का विचार किया है। यथा—

कार्तिककुण्डस्तु अमुं योगमन्यथा पठति व्याख्यानयति च। स च ग्रन्थगौरवभयान्न लिखितः। केचिदेनमनार्षं वदन्ति, तन्न सुकीर-सुधीर आदिभिष्टीकाकृद्भिरार्षत्वेन वर्णितत्वात्। उ० ५८।५८-६४॥

स्पष्ट है कि सुश्रुतकार ऋषि था। महाभारत के ३०० वर्ष उत्तर तक ऋषिकाल रहा। अतः ऋषि सुश्रुत उस काल के पश्चात् नही हो सकता।

हर्नलि-मत खण्डन

रुडल्फ हर्नलि ने अपनी आस्टिओलोजि (अस्थिशास्त्र), भाग १, पृ० ७-८ पर लिखा है—

In the latter university (Takshashila), in the time of Buddha or shortly before it, the leading Professor of Medicine was Atreya. He, accordingly, should have flourished at some time in the sixth century B. C .... The probability, therefore, appears to be that Sushruta was a rather younger contemporary of Atreya, or, let us say, a contemporary of Atreya's pupil Agnivesha.

---

१ I. H. Q. भाग २८, संख्या १, मार्च १९५२, पृ० ४४।

अर्थात्—बुद्ध के समय मे अथवा उससे कुछ ही पूर्व तक्षशिला के विश्व-विद्यालय मे प्रसिद्ध वैद्य आत्रेय था। वह छटी शती ईसा-पूर्व हुआ। अत सुश्रुत उसका कनिष्ठ-समकालिक अथवा आत्रेय-शिष्य अग्निवेश का सम-कालिक था।

आलोचना—पूर्व पृ० १८१-१८२ पर लिख चुके है कि अग्निवेश का गुरु आत्रेय पुनर्वसु, तक्षशिला का वैद्याचार्य आत्रेय नही था। अत सुश्रुत तथा आत्रेय को छटी शती ईसा-पूर्व रखना भारी भूल है। हर्नलि जी को न अग्नि-वेश का काल ज्ञात था, न आत्रेय का, पुन: सुश्रुत का काल वे कैसे जानते। इतिहास न जानने के कारण उन्होने सुश्रुत के पिता ऋषि विश्वामित्र के विषय में एक शब्द भी नही लिखा।

जोसेफ नीधम का लेख—देहली मे ५-७ नवम्बर सन् १९५० को एक सभा जुटी। उसमे भारत के वैज्ञानिक ग्रन्थो के तिथि-क्रम पर कुछ विचार प्रकट किए गए। इन विचारो के प्रकट करने वाले वक्ताओ मे से अधिकाश वक्ता भारतीय तिथि-क्रम से अपरिचित थे। उनमे से कई एक ने पाश्चात्य-लेखको के मनमाने तिथि-क्रम को ठीक मान लिया हुआ था। उस सभा मे अनेक वक्ताओ ने वर्तमान सुश्रुत-पाठ को ईसा की छटी तथा सातवी शताब्दी का बताया। डाक्टर जोसेफ नीधम को यह भी चुभा। उन्होने इङ्गलैड के नेचर (Nature) पत्र, भाग १६८ जुलाई १४, सन् १९५१ पृ० ६४ पर एक लेख लिखा। उसमे उन्होने वर्तमान सुश्रुत-सहिता का काल ईसा की ग्यारहवी शती माना है।

आलोचना—गप्प की कोई सीमा होती है। सुश्रुत-सहिता के वर्तमान पाठ पर गयदास और जेज्जट आदि की टीकाए थी। जेज्जट विक्रम की चतुर्थ शती मे था। उसकी स्वीकृत सुश्रुत-सहिता को ११वी शती ईसा मे रखना महा पक्षपात और पराकाष्ठा का अज्ञान है। इस विषय का विशद वर्णन आगे काल शीर्षक के अन्तर्गत है।

गुरु

१. धन्वन्तरि—पूर्व पृ० १६६ पर लिख चुके है कि काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि ने सुश्रुत को आयुर्वेदोपदेश दिया।

शिष्य—काशिका ६।२।३७ मे लिखा है—**सौश्रुतपार्थवा: सुश्रुतस्य पृथोश्च छात्रा:।** स्पष्ट है कि सुश्रुत ने जिन शिष्यो को पढाया वे सौश्रुत कहाए।

ग्रन्थ

१. सुश्रुतसंहिता—धन्वन्तरि से प्राप्त शल्यमूलक आयुर्वेद ज्ञान सुश्रुत ने

तन्त्र-रूप में उपनिबद्ध किया। वह तन्त्र सुश्रुतसहिता के नाम से सम्प्रति उपलब्ध है।

क्या सुश्रुतसंहिता के उत्तर तन्त्र का रचयिता कोई अन्य व्यक्ति था ?

अनेक लेखको का मत है कि सुश्रुतसहिता का उत्तर तन्त्र किसी अन्य लेखक द्वारा लिखा गया। इस विषय की अनेक युक्तियो को न लिख केवल कुछ मतो का दिग्दर्शन कराके उनकी आलोचना करेंगे।

१. हर्नलि—विदेशी विद्वान् रुडल्फ हर्नलि ने अपनी आस्टिओलोजि की भूमिका पृ० ५ पर लिखा है—

Hence after some time an anonymous writer composed a Supplement (Uttara tantra) which treated of all the subjects unnoticed by Sushruta.

अर्थात्—कुछ समय पश्चात् एक अज्ञात लेखक ने उत्तरतन्त्र रचा। उसमें सुश्रुत द्वारा अनुल्लिखित सब विषयो का वर्णन है।

२ राजगुरु जी—राजगुरु श्री हेमराज जी काश्यपसहिता उपोद्घात पृ० ११२ पर लिखते हैं—

तेन सुश्रुतस्य वंश्येन साम्प्रदायिकेन वा सौश्रुताचार्येण सुश्रुतस्य पूर्वतन्त्रं संस्कृतमुत्तरतन्त्रं निघण्टुभागश्च योजिते, इत्यनुमीयते।

अर्थात्—अत [पूर्व पृष्ठ पर लिखे सुश्रुतसहिता के हस्तलेख मे] किसी सुश्रुत के वशज अथवा सुश्रुत मतानुयायी सौश्रुताचार्य ने सुश्रुत के पूर्वतन्त्र का सस्कार किया तथा उत्तरतन्त्र और निघण्टु भाग युक्त किए, यह अनुमान किया जाता है।

आलोचना—वस्तुत ऋषि सुश्रुत ने ही उत्तरतन्त्र की रचना की। आचार्यवर श्री यादव जी ने सुश्रुतसहिता निर्णयसागर-सस्करण, तृतीयावृत्ति भूमिका पृ० २० पर अनेक सबल युक्तियो से इस मत को उपपादित किया है। एतद्विषयक एक युक्ति का उल्लेख हम नीचे करते हैं—

पूर्वपक्षी कहते हैं कि सुश्रुतसहिता के उत्तरतन्त्र के आरम्भ में ऊर्ध्वजत्रु रोगो के प्रकरण मे विदेहादि का प्रामाण्य माना है, तथा कुमारतन्त्र में पार्वतक, जीवक आदि का। अतः यह तन्त्र सुश्रुतरचित नही।

उत्तरपक्ष—प्राचीन परम्परा के अनुसार शालाक्य तथा कौमारभृत्य को परतन्त्र विषय समझ ऐसा उल्लेख किया है। पूर्व पृ० २३८ पर चरकसहिता में उल्लिखित एक ऐसे प्रकरण का वर्णन कर चुके हैं।

स्मरण रहे उत्तरतन्त्र को भी अनेक आचार्य अपनी-अपनी मूल-संहिताओं में स्वयं लिखते थे। यथा—

(क) अष्टाङ्ग हृदय मे।

(ख) अष्टाङ्ग संग्रह मे।

(ग) वृद्ध जीवकीय-तन्त्र मे खिलस्थान के रूप मे।

सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कार—उपलब्ध सुश्रुतसंहिता के प्रारम्भ में निबन्धकार डल्हण लिखता है—**प्रतिसंस्कर्ताऽपि नागार्जुन एव।**

अर्थात्—नागार्जुन ने सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कार किया।

राजगुरुजी का मत—पण्डितवर श्री हेमराज जी काश्यपसंहिता उपो० पृ० १११ पर नागार्जुन द्वारा सुश्रुतसंहिता के प्रतिसंस्कार करने पर संदेह प्रकट करते है।

आलोचना—डल्हण के लेख के अतिरिक्त सुश्रुतसंहिता नि० ३।१३ का पाठ इस मत को अधिक पुष्ट करता है कि नागार्जुन ने सुश्रुतसंहिता का प्रतिसंस्कार किया। यथा—

सुश्रुतसंहिता नि० ३।१२ की गयदास-विरचित न्यायचन्द्रिका व्याख्या मे लिखा है—

नागार्जुनस्तु पठति—"शर्करा सिकता मेहो भस्माख्योऽश्मरिवैकृतम।" इति।

यह पाठ मूल सुश्रुतसंहिता श्लोक संख्या १३ का पूर्व-भाग है। यथा—

भवन्ति चात्र—

शर्करा सिकता मेहो भस्माख्योऽश्मरिवैकृतम्॥

फलत यह निश्चय है कि वर्तमान सुश्रुतसंहिता मे प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन के वचन भी यत्र तत्र है।

सुश्रुतसंहिता का महापाठ

२. **वृद्धसुश्रुत**—आचार्य सुश्रुत के तन्त्र का वृद्ध-पाठ वृद्धसुश्रुत[1] कहाया। पूर्व पृ० २१० पर पालकाप्यकृत हस्तिशास्त्र के उद्धरणो से यह विषय पर्याप्त स्पष्ट कर चुके है। राजगुरु श्री हेमराज जी ने काश्यपसंहिता उपोद्घात पृ० ११२ पर अपने पुस्तकालय के सुश्रुतसंहिता के एक हस्तलेख का कुछ पाठ उद्धृत किया है। यथा—

---

१ देखो सुश्रुतसं० की नि० सं० व्या०, चि० ३१।८॥ चि० ३७।२३-२६॥ उ० २४।१६, १७॥

१. सुश्रुते शल्यतन्त्रे इति।
२. इति सौश्रुते महोत्तरतन्त्रे चतुःषष्टितमोऽध्यायः।
३. सौश्रुत्यां संहितायां महोत्तराया निघण्टु समाप्तः इति।

इस पाठ से प्रतीत होता है कि उत्तरतन्त्र के वृद्ध-पाठ को महोत्तरतन्त्र कहा है, तथा सुश्रुत की वृद्धपाठ वाली सहिता को महोत्तरा। इस हस्तलेख का पूर्ण अन्वेषण अभीष्ट है।

क्या सुश्रुत तथा वृद्धसुश्रुत दो आचार्य थे ?

हर्नेलि[1] तथा गिरिन्द्रनाथ जी[2] ने लिखा है कि सुश्रुतसहिता के पच स्थानो के रचयिता की उत्तरतन्त्र के रचयिता से पृथक्ता स्पष्ट करने के लिए सुश्रुत तथा वृद्धसुश्रुत नाम प्रयुक्त हुए है।

आलोचना—दोनो विद्वानो की यह युक्ति पगु है। हम स्पष्ट कर चुके है कि वृद्धसुश्रुत किसी आचार्य का नाम नही अपितु सहिता का नाम है।

३ **लघुसुश्रुत**—हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०१ पर गिरिन्द्रनाथ जी ने लघुसुश्रुत के एक हस्तलेख का उल्लेख किया है।[3]

सम्भवतः सुश्रुतसहिता के तीन पाठ थे। **सुश्रुत, वृद्धसुश्रुत** तथा **लघुसुश्रुत**। वृद्धसुश्रुत का पाठ अधिक था, सुश्रुत का सक्षिप्त। लघुसुश्रुत का पाठ कदाचित् अत्यधिक सक्षिप्त हो। अत· टीकाकारो द्वारा उद्धृत वृद्धसुश्रुत के अनेक पाठ वर्तमान सुश्रुतसहिता मे नही मिलते। तथा भिन्न-भिन्न टीकाकारो ने भिन्न-भिन्न पाठो को अपनाया अथवा अनेक पाठों का सम्मिश्रण कर दिया। इसकी पुष्टी अधोलिखित पक्तियो मे होगी।

सुश्रुतसंहिता के जेज्जटमतानुसारी पाठ का हस्तलेख

श्री प० भगवद्दत्त जी ने बताया है कि उन्होने पजाब यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी लाहौर को सुश्रुतसंहिता का एक ऐसा हस्तलेख दिलाया था, जिसके अन्त में लिखा था—**इति जेज्जटमतानुसारी सुश्रुतसंहिता पाठः।**

इसी प्रकार डल्हण अपनी टीका मे अनेक स्थानो पर लिखता है—अमुक टीकाकार ने अमुक पाठ स्वीकार किया है, अमुक ने नही। एसा ही एक पाठ पूर्व पृ० २३३ पर उद्धृत कर चुके है, उसे बृहत्पञ्जिकाकार ने नही पढा, अत डल्हण ने भी नही पढ़ा। यह पाठभेद सुश्रुत की भिन्न-भिन्न सहिताओ तथा

---

१. आस्टिओलोजि, भूमिका पृ० ५।
२. हि० इ० मे० भाग ३, पृ० ५७२
३. Pheh २।

किञ्चित् लेखक-प्रमाद के कारण है।

५१. औपधेनव ॥२॥

नाम—औपधेनव शब्द तद्धितान्त है। तदनुसार उपधेनु का पुत्र औपधेनव है, यथा उपमन्यु का पुत्र औपमन्यव था।

काल—सुश्रुत का काल ही औपधेनव का काल था।

गुरु

धन्वन्तरि—सुश्रुतसंहिता सू० १।३ के अनुसार धन्वन्तरि का एक शिष्य औपधेनव था। वह सुश्रुत का सहाध्यायी था। उसने धन्वन्तरि से शल्यमूलक अष्टाङ्ग आयुर्वेद सीखा।

ग्रन्थ

औपधेनव तन्त्र—सुश्रुतसंहिता सू० ४।९ में औपधेनव शल्यतन्त्र का उल्लेख है—

औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम्।
शेषाणां शल्यतन्त्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत् ॥९॥

इस वचन की टीका में डल्हणाचार्य लिखता है—

शेषाणां करवीर्य-गोपुररक्षित-प्रभृतिप्रणीतशल्यतन्त्राणां, प्रत्यये तु प्रत्ययो न भवति, कस्मात्? तेषां तन्त्राणा एतन्मूलत्वात्। अन्ये तु शेषाणां करवीर्यादिप्रणीतानां शल्यतन्त्राणां मध्ये औपधेनवादि तन्त्राणि सुव्याख्यातत्वेन मूलानि प्रधानानीति व्याख्यानयन्ति।

अर्थात्—धन्वन्तरि के सब शिष्यों में सुश्रुत, औपधेनव, औरभ्र तथा पौष्कलावत के शल्यतन्त्र प्रधान थे। सम्प्रति औपधेनव तन्त्र उपलब्ध नहीं। इस तन्त्र के वचन तथा योग भी हमारी दृष्टि में नहीं आए।

५२. औरभ्र ॥३॥

नाम—औरभ्र का नाम धन्वन्तरि के शिष्यों में है। यह शब्द तद्धितान्त है। इसका मूल शब्द उरभ्र है। सुश्रुतसंहिता के पूर्व उद्धृत वचन में औरभ्र शब्द तन्त्रवाचक है, परन्तु सुश्रुतसंहिता १।३ में औरभ्र शब्द व्यक्तिवाचक है। अष्टाङ्गसंग्रह उत्तरस्थान, पृ० २६९ पर इन्दुटीका में उद्धृत एक पुरातन टीका में से आचार्य उरभ्र के नाम से १० श्लोक उद्धृत हैं। उरभ्र के तन्त्र को भी औरभ्र कह सकते हैं। विचारणीय है कि शल्यतन्त्रकार औरभ्र तथा उरभ्र का परस्पर क्या सम्बन्ध है।

काल—सुश्रुत आदि का सतीर्थ्य होने से औरभ्र भी उनका समकालिक था।

ग्रन्थ

औरभ्र तन्त्र—सुश्रुत सहिता ४।६ के पूर्वलिखित वचनानुसार औरभ्र का शल्यतन्त्र प्रमुख माना जाता था।

वचन—गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग ३, सन् १९२६, में औरभ्र का कोई वचन उद्धृत नही किया। अष्टाङ्गसग्रह सन् १९२४ मे छप चुका था। हम पूर्व लिख चुके है कि इन्दु टीका मे उद्धृत किसी अन्य टीका मे से उरभ्र के १० वचन उद्धृत है, परन्तु गिरिन्द्रनाथ जी ने इस ओर ध्यान नही दिया।

५३. पौष्कलावत ॥४॥

नाम—पौष्कलावत शब्द तद्धितान्त है, तदनुसार मूल-पुरुष का नाम पुष्कलावत था। सुश्रुतसहिता तृतीयावृत्ति, निर्णयसागर सस्करण सू० १।३ मे पौष्कलावत को धन्वन्तरि-शिष्य कहा है। चिकित्साकलिका विवृति पृ० ११७ के एक वचन मे पौष्कलावत को नही अपितु पुष्कलावत को शल्यतन्त्रकार कहा है। यथा—

सुश्रुताद्याः सुश्रुत आदौ येषां औपधेनव–औरभ्र–पुष्कलावतादीनां शल्यतन्त्रविदां ते तथा। आगमैककृतिन. आगमे वैद्यकशास्त्रे त एव एककृतिनः पण्डिता इति।

तत्त्वचन्द्रिका, आयुर्वेददीपिका तथा अष्टाङ्गसंग्रह मे भी पुष्कलावत के नाम से कुछ वचन उद्धृत है। अत यह विचारणीय है कि प्रसिद्ध धन्वन्तरि–शिष्य तथा शल्यतन्त्रकार का नाम पौष्कलावत था अथवा पुष्कलावत।

काल—सुश्रुत आदि पुष्कलावत के सतीर्थ्य थे, अत वे सब समकालिक थे।

गुरु

धन्वन्तरि—पुष्कलावत भी धन्वन्तरि का अन्यतम शिष्य था।

ग्रन्थ

शल्यतन्त्र—पूर्व पृ० २५६ पर उद्धृत सुश्रुतसहिता के वचन से स्पष्ट है कि पुष्कलावत का शल्यतन्त्र अतिप्रसिद्ध था, तथा धन्वन्तरि के करवीर्यादि तीन अन्य शिष्यो ने सुश्रुत तथा पुष्कलावत आदि के तन्त्रो के आधार पर अपने तन्त्र रचे।

वचन—पुष्कलावत का एक वचन अष्टाङ्गसग्रह उ० पृ० २१८ पर उद्धृत है—

पुष्कलावतस्तु पठति।

इसकी टीका मे इन्दु लिखता है—

पुष्कलावतनामा ऋषिस्तु पठति—

तमसापि हितो ह्यष्मा रोमकूपैरनावृतैः ।
लेपाद्धिनैव निर्याति रात्रौ नालेपयेदतः ॥

इस वचन के अतिरिक्त हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०४ पर पुष्कलावत के पाच वचन उद्धृत है।

५४. करवीर्य ॥५॥

काल—करवीर्य भी सुश्रुत आदि का समकालिक था।

गुरु

धन्वन्तरि—करवीर्य ने शल्यशास्त्र का ज्ञान आचार्य दिवोदास धन्वन्तरि से प्राप्त किया।

ग्रन्थ

करवीर्य तन्त्र—करवीर्य शल्यतन्त्रकार था। सुश्रुतसहिता सू० ४।६ की टीका मे डल्हरण लिखता है—

शेषाणां करवीर्य-गोपुररक्षितप्रभृतिप्रणीतशल्यतन्त्राणाम् ।

अर्थात्—[सुश्रुत आदि के तन्त्रो के अतिरिक्त] शेष करवीर्य, गोपुर-रक्षित आदि द्वारा बनाए हुये शल्यतन्त्रो का [मूल आधार सुश्रुत आदि के शल्यतन्त्र थे।]

करवीर्य का शल्यतन्त्र सुश्रुत आदि के शल्यतन्त्र के समान अति प्रसिद्ध नही था।

वचन—व्याख्या मधुकोश मे से करवीर्य का एक वचन गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०६ पर लिखा है।

५५. गोपुररक्षित ॥६॥

नाम—सुश्रुतसहिता सू० १।३ की व्याख्या मे डल्हरण लिखता है—

अन्ये तु गोपुररक्षितौ इति नामद्वयं मन्यन्ते ।

अर्थात्—अन्य पुरातन आचार्य दो नाम मानते है, गोपुर तथा रक्षित।

तत्त्वचन्द्रिका पृ० ३० पर लिखा है—

यदाह गोपुररक्षितः ।

यहा गोपुररक्षित शब्द एक वचन मे प्रयुक्त हुआ है। यदि ये दो नाम होते तो यहाँ द्विवचन का प्रयोग होता, अत निश्चय ही यह एक व्यक्ति का नाम है।

काल—गोपुररक्षित भी सुश्रुत आदि का समकालिक था।

गुरु

धन्वन्तरि—गोपुररक्षित दिवोदास धन्वन्तरि का शिष्य था।

ग्रन्थ

गोपुररक्षित-तन्त्र—गोपुररक्षित ने शल्यतन्त्र की रचना की। डल्हण के पूर्वलिखित वचन से स्पष्ट है कि गोपुररक्षित का शल्यतन्त्र सुश्रुत के शल्य-तन्त्र के समान विख्यात नही था।

वचन—गोपुररक्षित का एक वचन हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०७ पर गिरिन्द्रनाथ ने उद्धृत किया है।

५६. वैतरण ॥७॥

काल—वैतरण सुश्रुत आदि का समकालिक था।

गुरु

धन्वन्तरि—वैतरण को शल्य-शास्त्र का उपदेश काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि ने दिया। काश्यपसंहिता के उपोद्घात पृ० ६१ पर श्रीराजगुरु जी ने अपने सग्रह के ताडपत्र के सुश्रुत ग्रन्थ का एक पाठ लिखा है—

औपधेनव-वैतरण-औरभ्र।

ग्रन्थ

वैतरण-तन्त्र—वैतरण का शल्यतन्त्र सुव्याख्यात न होने के कारण अति प्रसिद्ध न हो सका।

वचन—१-३. निबन्ध-सग्रह, तत्त्वचन्द्रिक, तथा चक्रदत्त से वैतरण के तीन वचन हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ६०७ पर उद्धृत हुए हैं।

४ व्याख्या-कुसुमावलि पृ० ४२६ पर (**वैकारण**) तन्त्र का एक वचन उद्धृत है। यथा —

वैकारणेऽप्युक्तम्—

शुष्कमूलकुलत्थादियूषा क्षारोत्तरा हिताः।
कुल्कं निम्बपत्रं च वार्ताकं चाशने हितम्॥ इति।

सम्भवत मुद्रित वैकारण शब्द वैतरण का भ्रष्ट पाठ है।

५ अष्टाङ्गहृदय बस्तिकल्प, अ० ४।७३ की हेमाद्रि टीका में तन्त्रान्त-रोक्त कुछ बस्तिया लिखी है। उनमे से एक के अन्त में लिखा है—

बस्तिर्वैतरणोक्तो गुणगणयुक्तः स्वविख्यातः।

६ भण्डारकर अनुसन्धान सस्था, पूना की वैद्यक हस्तलिखित ग्रथो की सूची मे सख्या २६३ के अन्तर्गत व्याख्याकुसुमावली का एक हस्तलेख पृ० ३६९,७० पर सन्निविष्ट है। वहा पृ० ३७० पर उसके हस्तलेख का जो पाठ उद्धृत है, उसमे लिखा है—

एवं वैतरणेऽपि ।··· ····· ······ ··· · । वैतरणे अम्ली ·· ।

व्याख्याकुसुमावली का यह हस्तलेख अत्युपयोगी है।

५७. भोज ॥८॥

वंश—यादवो की एक उपजाति भोज है। इसका राज्य भारत के अनेक भागो मे था । कुन्ति देश मे भी भोज राज्य करते थे, अत: उस देश का नाम कुन्तिभोज हुआ। पाण्डव-माता कुन्ति इसी प्रदेश की थी, अत. उसका नाम कुन्ति हुआ। आयुर्वेदाचार्य भी अपनी उपजाति के कारण भोज कहाता था। हि० इ० मेडिसिन के तीनो भागो मे आचार्य भोज का वर्णन नही। सम्भवत गिरिन्द्रनाथ जी अगले अप्रकाशित भागो मे भोज को रखना चाहते हो, परन्तु नियमानुसार भोज का स्थान शल्यतन्त्रकारो मे होना चाहिए।

नाम—शल्यतन्त्राचार्य भोज का वास्तविक नाम अन्वेषणीय है।

काल—भोज भी भारतयुद्ध से प्राचीन आचार्य है। अष्टाङ्गसंग्रह उ० पृ० २७० पर इन्दु द्वारा उद्धृत एक पुरातन टीका मे भोज का मत उद्धृत है। सुश्रुत-सहिता के टीकाकार डल्हण तथा गयदास ने स्थान-स्थान पर भोज को उद्धृत किया है, अत उनके काल मे भोज का शल्यतन्त्र उपलब्ध था।

ग्रन्थ

भोजतन्त्र—भोज का शल्यतन्त्र पर्याप्त प्रसिद्ध था। सुश्रुत-सहिता उ० ३६।६६ की व्याख्या मे डल्हण लिखता है—**इदानीं भोज-भालुकि** · ।

अर्थात्—अब भोज, भालुकि तथा पुष्कलावत आदि शल्यतन्त्रज्ञो की सम्मत्यनुसार।

इस वचन मे भोज को शल्यतन्त्र-ज्ञाता कहा है।

सुश्रुत-सहिता सू० ८।३ की निबन्ध-सग्रह व्याख्या में भोज-प्रोक्त अनेक शल्य-यन्त्रो का वर्णन है।

स्पष्ट है कि भोज का शल्यतन्त्र डल्हण आदि टीकाकारो को उपलब्ध था।

वचन—सुश्रुत-सहिता टीका, चरक-सहिता टीका, अष्टाङ्गसग्रह तथा मधुकोश व्याख्या में भोज के अनेक वचन मिलते है।

५८ भालुकि ॥९॥

काल—भालुकि का काल भोज तथा पुष्कलावत का काल है। सुश्रुत-सहिता उ० ३६।६६ मे आचार्य डल्हण भोज तथा पुष्कलावत का स्मरण करता है।

ग्रन्थ

शल्यतन्त्र—सुश्रुत-सहिता के उपरिलिखित वचन में भालुकि को शल्य-तन्त्रज्ञ कहा है। हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ५२६ के गिरिन्द्रनाथ के लेख का अनुवाद यहाँ देते है, 'भालुकि के शल्यतन्त्रकार होने की सम्भावना है क्योकि उसके शल्यतन्त्रपरक वचन उपलब्ध होते है। यथा—

इदानीं भोज-भालुकि-पुष्कलवाणादीनां शल्यतन्त्रविदां मतेन।

यहाँ पुष्कलवाण शब्द पुष्कलावत शब्द का भ्रष्ट पाठ है। स्पष्ट ही भोज-भालुकि तथा पुष्कलावत को शल्यतन्त्रज्ञ कहा है।

वचन—चक्रपाणिदत्त तथा जेज्जट की चरक-सहिता की टीकाओ में भालुकि के दो-दो वचन उद्धृत है। इनके अतिरिक्त हि० इ० म०, भाग ३, पृ० ५२६-३३ तक भालुकि के ११ वचन उद्धृत है।

५६. दारुक

वंश—आयुर्वेदीय प्रकरणो में उद्धृत दारुक श्रीकृष्ण का प्रिय मित्र तथा सिद्धहस्त रथवान् प्रतीत होता है। अभी तक कोई अन्य दारुक दिखाई नही पडा। दारुक तथा सात्यकि आदि साथी थे, अत यह दारुक महाभारत का दारुक प्रतीन होता है।

राजगुरुजी का सन्देह—काश्यप-सहिता पृ० ६६ पर राजगुरु जी लिखते है। क्या यह दारुक भी नामसाम्य से दारुवाह है ? वस्तुत दारुक तथा दारुवाह भिन्न व्यक्ति है। इनमें से दारुवाह का वर्णन आगे करेंगे।

ग्रन्थ

आयुर्वेदावतार—अष्टाङ्गहृदय सू० ५।५५-५६ की सर्वाङ्ग-सुन्दरा व्याख्या मे इसका उल्लेख है। यथा—**पानकस्तु आयुर्वेदावतारेऽधिजगे**। यहाँ पानक का पाठान्तर दारक लिखा है। परन्तु इसका शुद्ध पाठ दारुक है। इस शुद्ध पाठानुसार दारुक ने आयुर्वेदावतार लिखा।

वचन—दारुक के तीन वचन उपलब्ध होते है। यथा—अष्टाङ्गहृदय सू० ५।५५-५६, शा० ३।८१ की सर्वाङ्गसुन्दरा व्याख्या तथा चरक-सहिता चि० ३।१६७-६६ की चक्रपाणि व्याख्या।

सर्वाङ्गसुन्दरा शा० ३।८१ मे उद्धृत वचन का प्रारम्भ निम्नलिखित है—**तथा च चरकः**। यहाँ चरक पद के दो पाठान्तर है। दारुक तथा दारक। वस्तुतः शुद्ध पाठ दारुक है।

६०. कपिलबल ॥१०॥

वंश—चरक-सहिता के अन्तिम स्थानो का सस्कर्ता दृढबल था। दृढबल

का पिता कपिलबल था। चरक-संहिता चि० ३०।२९० में दृढबल को कापिल-बल कहा है।

स्थान—चरक-संहिता सि० १२।६६ मे लिखा है कि दृढबल का जन्म पञ्चनद मे हुआ। इससे निश्चय है कि कपिलबल पञ्चनद मे रहता था।

आचार्य—वाग्भट अष्टाङ्गसंग्रह सू० पृ० १५२ पर कपिलबल का मत उद्धृत करता है। इस वचन की व्याख्या शशिलेखा मे कपिलबल को आचार्य कहा है। अष्टाङ्ग-हृदय की भूमिका पृ० १६ पर कपिलबल को शल्यतन्त्रकर्त्ता कहा है। इसके लिए सुदृढ प्रमाण की आवश्यकता है।

काल—आचार्य कपिलबल का समय निश्चित करने से पूर्व दृढबल के समय पर विचार करना आवश्यक है।

हर्नलि की मिथ्या कल्पना—अपनी आस्टिओलोजि की भूमिका पृ० १६ पर हर्नलि ने लिखा है—

Accordingly it is probable that all these three [Madhava, Dridhabala and Vagbhata II] medical writers come in the period from the seventh to the ninth century.

अर्थात्—माधव, दृढबल तथा द्वितीय वाग्भट सातवी से नवम शताब्दी मे हुए है।

भारतीय ऐतिहासिक तिथि-क्रम को ठीक करने वाले प० भगवद्दत्त जी "भारतवर्ष का इतिहास" पृ० १५७ पर हर्नलि के इस कल्पित तिथि-क्रम को काटने के लिए निम्नलिखित अकाट्य तर्क उपस्थित करते है—

आयुर्वेदीय चरक-संहिता का प्रसिद्ध टीकाकार भट्टार हरिश्चन्द्र महाराज साहसाक, गुप्त चन्द्रगुप्त (प्रथम शती विक्रम) का समकालीन था। माधवनिदान मधुकोश व्याख्या १८।६ के अनुसार हरिश्चन्द्र ने चिकित्सा-स्थान के चौबीसवे अध्याय पर अपनी व्याख्या लिखी। चरक-संहिता के चिकित्सा-स्थान के ये अन्तिम अध्याय दृढबल के पूरित किए हुए है। माधव-निदानके इस प्रमाण से ज्ञात होता है कि दृढबल चरक-संहिता के इन भागोंका पुनरुद्धार भट्टार हरिश्चन्द्र से पूर्व कर चुका था। अत दृढबल हरिश्चन्द्र का पूर्ववर्ती था, अतः हर्नलि की कल्पना निराधार है।

ग्रन्थ

कपिलबल तन्त्र—आयुर्वेददीपिका सू० ७।४६-५० की व्याख्या में उद्धृत वचन से ज्ञात होता है कि कपिलबल का आयुर्वेदीयतन्त्र था। यथा—कपिलबलेऽपि

पठ्यते ।

वचन—हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७८६,८७ पर कपिलबल के पाच वचन उद्धृत हे ।

अन्तत. यह सुनिश्चित है कि दृढबल का पिता कपिलबल भी भट्टार हरिश्चन्द्र का पूर्ववर्ती हुआ। अष्टाङ्गसग्रह सूत्रस्थान पृ० १५२ पर वाग्भट, आचार्य कपिलबल का मत उद्धृत करता है—**कपिलबलत्वेषां स्वलक्षणानि रसतो निर्दिदेश ।**

स्पष्ट है कि कपिलबल वाग्भट का पूर्ववर्ती था। परिणामत· ये पिता-पुत्र गुप्तकाल से पूर्वकाल के वैद्य थे।

इससे आगे वाग्भट सुश्रुत का पाठ पढता है। इस सुश्रुत-पाठ के विषय मे इन्दु लिखता है—

यथा सुश्रुतः कपिलबलमतमेव विशेषयति।

अर्थात्—सुश्रुत कपिलबल के मत को ही विशेष मानता है। यदि यह सकेत ठीक है, तो निश्चय ही कपिलबल सुश्रुत-प्रतिसस्कर्ता नागार्जुन का पूर्ववर्ती था। लगभग यही बात अन्य प्रमाणो से पहले सिद्ध कर चुके हे।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे द्वादशोऽध्यायः।

त्रयोदश अध्याय

मर्त्यलोक में कौमारभृत्य चिकित्सा का विस्तार
प्रजापति कश्यप का सुविख्यात शिष्य

६१. भार्गव जीवक=वृद्ध जीवक ॥१॥

अष्टाग आयुर्वेद के प्रथम तीन अगो के आचार्यो का वर्णन हो चुका। अब "कौमारभृत्य" की आचार्य-परम्परा का उल्लेख किया जाता है। इस तन्त्र के अधिक आचार्यो का इतिवृत्त नही मिल सका। अत उपलब्ध आचार्यो का सक्षिप्त वर्णन करते है। कौमारभृत्य के सुप्रसिद्ध आचार्य जोवक ने इस तन्त्र का विशिष्ट ज्ञान प्रजापति कश्यप से उपलब्ध किया। अत सर्वप्रथम जीवक का वर्णन प्रस्तुत करते है।

वंश—पूर्व पृ० १२८ पर वल्मीक=च्यवन के वशजो मे ऋचीक का नाम तथा वशवृक्ष लिख चुके है। काश्यप सहिता पृ० १६१ पर जीवक को ऋचीक-पुत्र कहा है। यथा—

जीवको निर्गततमा ऋचीकतनयः शुचिः।

स्पष्ट है कि जीवक का पिता ऋचीक था। पूर्व उद्धृत पौराणिक वशावलि के अनुसार ऋचीक भृगुवशी था। काश्यप सहिता पृ० १४८, १७७, २०६, २४६ तथा ३०१ पर जीवक को **भार्गव** कहा है। अत निश्चय ही जीवक भृगुवशी च्यवन के वशज ऋचीक का पुत्र था।

श्री राजगुरु जी का विमर्श—काश्यप सहिता उपो० पृ० ४० पर विद्वद्वर राजगुरु जी लिखते है—**अस्य वृद्धजीवकस्य पिता कतमोऽयं ऋचीक इति निश्चेतुं न शक्यते।**

अर्थात्—इस वृद्धजीवक का पिता यह कौन सा ऋचीक है, यह निश्चय नही कर सकते।

हम ऊपर लिख चुके है कि ऋचीक, भार्गव च्यवन का वशज था। किसी अन्य ऋचीक का नाम हमारी दृष्टि मे अभी तक नही पडा।

भार्गव जावक बुद्ध का वैद्य जीवक नहीं—अनेक विद्वान् बिम्बिसारपुत्र प्रसिद्ध बौद्ध-वैद्य जीवक को काश्यप-शिष्य जीवक समझते है। वस्तुत इन दोनो आचार्यो का ऐक्य कभी सिद्ध नही हो सकता। इस विषय मे अगले हेतु द्रष्टव्य है—

१ वृद्धजीवकीय तन्त्र के रचयिता जीवक का पिता ऋषि ऋचक था।

बौद्ध-वैद्य जीवक महाराज बिम्बिसार से किसी वेश्या मे उत्पन्न हुआ था।

२ सस्कृत ग्रन्थ "मूल सर्वास्तिवाद-विनयवस्तु" के अन्तर्गत चीवरवस्तु पृ० २५ के अनुसार राजकुमार अभय से पालित होने के कारण बुद्ध के वैद्य जीवक का नाम कुमारभृत था—

अभयेन च राजकुमारेण भृत इति जीवक. कुमारभृतो जीवक. कुमारभृत इति संज्ञा संवृत्ता।

स्पष्ट है कि बौद्ध जीवक कौमारभृत्य तन्त्र का रचयिता होने के कारण कुमारभृत नही कहाया।

३. सस्कृतग्रन्थ "मूलसर्वास्तिवाद-विनयवस्तु" के अन्तर्गत चीवरवस्तु पृ० २६ पर बौद्ध जीवक को तक्षशिलाचार्य आत्रेय का शिष्य कहा है, परन्तु कौमारभृत्य तन्त्र का रचयिता जीवक प्रजापति कश्यप का शिष्य था।

४ काश्यपसहिता के सुयोग्य सम्पादक राजगुरु हेमराज जी लिखते है कि उपलब्ध काश्यपसहिता मे कही भी बौद्ध छाया नही मिलती। यदि यह तन्त्र बौद्ध-वैद्य की रचना होती, तो इसमे बौद्ध मत की छाया का होना आवश्यक था।

कौमारभृत्याचार्य जीवक का जैन राजकुमार जीवक से कोई सम्बन्ध नहीं।

श्री राजगुरु जी काश्यपसहिता, उपोद्घात पृ० ४३ पर लिखते है—जैन इतिहास मे जीवन्धर जीव स्वामी अपर नाम जीवक एक प्रसिद्ध पुरुष था। गद्य चिन्तामणि आदि मे उसका इतिहास उपलब्ध होता है। उसे किसी गन्धर्व ने विषहर मन्त्र सिखाया था।

इस जैन राजकुमार जीवक को काश्यप-शिष्य जीवक समझना उचित नही। काश्यप सहिता पृ० ४४ पर उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के काल-विभाग को देख इस तन्त्र की रचना जैन राजकुमार जीवक द्वारा नही माननी चाहिए। जैन विद्वानो ने उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी का ज्ञान अति प्राचीन आर्ष-ग्रन्थो से लिया है।

जीवक तथा वृद्ध जीवक—काश्यप सहिता पृ० १६१ पर वर्णित वृत्त से

ज्ञात होता है—महर्षि कश्यप ने पितामह [ब्रह्मा] की आज्ञानुसार ज्ञानचक्षु द्वारा देख कर तप से यह कुमारतन्त्र रचा। निर्गततम, पवित्र, ऋचीक-पुत्र जीवक ने यह महान् तन्त्र ग्रहण किया तथा इसका सक्षेप किया। परन्तु बालक द्वारा उपदिष्ट समझ, मुनियो ने इस तन्त्र का स्वागत नही किया। तदनन्तर पाच वर्ष का जीवक सब ऋषियो के सामने कनखल स्थान पर गङ्गाह्लद मे निमग्न हुआ। क्षण भर मे वह श्वेत-केश तथा श्मश्रु-युक्त होकर बाहर निकला। यह देख ऋषि लोग अति विस्मित हुए। उस बच्चे का नाम वृद्ध-जीवक रखा गया। बौद्ध जीवक के साथ किसी ऐसी घटना का सम्बन्ध नही।

काल—पूर्व पृ० १२८ के च्यवन के वशवृक्ष पर दृष्टि डालने से पता लग जायगा कि जीवक जमदग्नि का समकालिक, अत. त्रेता के लगभग अन्त मे था।

ग्रन्थ

वृद्ध जीवकीय तन्त्र—उपलब्ध काश्यप सहिता अथवा वृद्ध जीवकीय तन्त्र प्रजापति कश्यप के उपदेश रूप मे जीवक को प्राप्त हुआ। यह तन्त्र वात्स्य से प्रतिसस्कृत हुआ। सुश्रुत सहिता १।४–७ की व्याख्या मे आचार्य डल्हण कौमारभृत्य के आचार्यो मे जीवक का नाम स्मरण करता है। यथा—

ये च विस्तरतो दृष्टा इति पार्वतक-जीवक-बन्धक-प्रभृतिभिः कुमारा-बाधहेतवः स्कन्दग्रहप्रभृतयः।

इस तन्त्र मे अनेक अद्भुत बातें है। उनमे से कुछ एक का वर्णन पूर्व पृ० ६९-७० पर हो चुका।

६२. पार्वतक

पार्वतक शब्द तद्धितान्त है। तदनुसार इसके मूल पुरुष का नाम पर्वतक होगा। नारद का भागिनेय पर्वत था। उसका पार्वतक से कोई सम्बन्ध था या नही, यह अज्ञात है। पार्वतक का विशेष वृत्त ज्ञात नही हो सका। पूर्व उद्धृत डल्हण के वचन से केवल इतना ज्ञात हो सका है कि पार्वतक कौमारभृत्याचार्य था। पर्वतक नाम भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। एक पर्वतक राजा मुद्रा-राक्षस नाटक मे वर्णित है।

६३. बन्धक

पूर्वोद्धृत डल्हण के वचनानुसार बन्धक भी कौमारभृत्याचार्य था।

६४. रावण

वंश—रावण का वश अभी अन्वेषणीय है। गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग २, पृ० ४२५ पर कुमारतन्त्र के कर्ता रावण तथा प्रसिद्ध लङ्केश्वर

रावण को एक ही माना है। परन्तु सस्कृत वाड्मय मे वैदिक ग्रन्थो के भाष्यकर्ता पण्डित रावण का भी उल्लेख है। उसका रावण-भाष्य भी उपलब्ध है। यह रावण लङ्केश्वर रावण की अपेक्षा बहुत अर्वाचीन है, अत विचारणीय है कि कुमारतन्त्र का रचयिता रावण कौन था।

देश—बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार रावण रामठ देश का रक्षक=वैद्य था। रामठ देश पजाब के उत्तर पश्चिम मे है।

कौमारभृत्याचार्य—यह निश्चित है कि रावण कौमारभृत्याचार्य था। तत्त्वचन्द्रिका पृ० ३३८ पर रावणकृत कुमारतन्त्र का उल्लेख है यथा—

इदानीं प्रसिद्धफलं रावणकृतकुमारतन्त्रमाह ओं नारायणाय नम ।

इसके अतिरिक्त रावणकृत कुमारतन्त्र सम्बन्धी अनेक उपलब्ध हस्तलेखो से भी स्पष्ट है कि रावण कौमारभृत्याचार्य था।

ग्रन्थ

१. **रावणकृत बालतन्त्र**—इण्डिया आफिस के हस्तलेख सख्या २६८२ के अन्तर्गत रावणकृत बालतन्त्र का उल्लेख है।

२. **रावण बालतन्त्र**—तञ्जोर पुस्तक भण्डार के हस्तलिखित ग्रन्थो का सूचिपत्र भाग १६, स० ११०७८ के अन्तर्गत रावण बालतन्त्र सन्निविष्ट है।

रावणकुमारतन्त्र का उल्लेख त्रैमासिक पत्र इण्डियन कलकचर, भाग ७, पृ० २६९—२८६ तक देखने योग्य है।

३. **बालचिकित्सा**—मद्रास पुस्तक भण्डार की हस्तलेख सख्या १३१७५ के अन्तर्गत बालचिकित्सा का उल्लेख है। इस हस्तलेख मे लिखा है—**रावणमते बालचिकित्सा कथ्यते**। स्पष्ट है कि यह बालचिकित्सा रावण-लिखित है।

४. **नाडी-परीक्षा**—रावण का यह ग्रन्थ सन् १९१२ मे आचार्य यादव जी त्रिकमजी द्वारा आयुर्वेदीय ग्रन्थमाला मे प्रकाशित हुआ था।

५. **अर्कप्रकाश**—रावणलिखित यह ग्रथ प्रकाशित हो चुका है। इसके अन्त मे लिखा है कि यह लङ्केश्वर रावण की कृति है।

६. **उड्डेशतन्त्र**—दशाध्यायात्मक यह ग्रथ भी रावणकृत है। यह विचारणीय है कि ये सब ग्रथ किस रावण के रचे हुए है।

चतुर्दश अध्याय

भूतविद्या

भूतविद्या आयुर्वेद का अन्यतम अङ्ग है। कायचिकित्सा आदि अङ्गो के तन्त्र उपलब्ध है। शालाक्य, अगद तथा रसायन आदि के तन्त्र उपलब्ध नही, पर उद्धरणो से इनका न्यूनाधिक इतिवृत्त ज्ञात हो जाता है, पर भूतविद्या का तनिक इतिवृत्त भी ज्ञात नही। तथापि इस विषय का यत्किचित् बोध आवश्यक है।

भूतविद्या का अस्तित्व

क—पूर्व पृ० १८६ पर अष्टाङ्गसग्रह के प्रमाण से लिख चुके है कि पितामह ब्रह्मा के अष्टाङ्ग आयुर्वेद का ज्ञान परमर्षियो ने प्राप्त किया। अष्टागो मे एक भूतविद्या है, अत स्पष्ट है कि सर्गादि से ब्रह्मा के उपदेश मे भूतविद्या का पूर्ण ज्ञान था।

ख—पूर्व पृ० ११२ पर छान्दोग्य उपनिषद् का प्रमाण उद्धृत है। तदनुसार नारद भगवान् सनत्कुमार से कहता है—मै भूतविद्या भी जानता हू। नारद-सनत्कुमार का यह सवाद त्रेता के आरम्भ का प्रतीत होता है।

ग—भेलसहिता पृष्ट १२० पर भूतवैद्यो का उल्लेख है। निश्चित है कि उस काल मे भूतचिकित्सा करने वाले विशेष वैद्य थे।

घ—स्कन्दपुराण प्रभासक्षेत्र ८।६-९ मे भूततन्त्र का उल्लेख है।

इन सब प्रमाणो से स्पष्ट है कि कभी भूतविद्या पूर्ण विकसित थी। आगे इसके स्वरूप के विषय मे कुछ विचार करेगे।

भूतविद्या का स्वरूप

यह एक आवश्यक तथा गम्भीर विषय है। निम्नलिखित वचन से इस पर कुछ प्रकाश पडेगा। यथा—

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि सः स्मृतः।[1]

---

१. महाभारत, शान्तिपर्व २८०।२० की नीलकण्ठकृत टीका मे उद्धृत।

अर्थात्—तन्मात्राओ का भूत-सृष्टि से सम्बन्ध है।

चरकसहिता चि० ६।१७ मे भूतोन्माद का निम्नलिखित लक्षण द्रष्टव्य है। यथा—

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।
उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थात्—एक भूतो से होने वाला उन्माद है। सूक्ष्मरूप मे विद्यमान तन्मात्राओ पर विशेष प्रभाव होने से शरीर मे दोष उत्पन्न होकर यह उन्माद होता है।

चरक-सहिता चि० ६।१८ मे बताया है कि सूर्य आदि देव पुरुष पर अपना प्रभुत्व स्थापित करते है—

अदूषयन्तः पुरुषस्य देहं देवादयः स्वैस्तु गुणप्रभावैः ।
विशन्त्यदृश्यास्तरसा यथैव छायातपौ दर्पणसूर्यकान्तौ ॥

अर्थात्—जिस प्रकार छाया दर्पण मे तथा आतप=धूप, सूर्य-कान्तमणि मे प्रविष्ट होते है, उसी प्रकार इन देव आदियो का प्रभाव अति सूक्ष्मता से अदृश्य रूप मे वेगपूर्वक होता है।

चरक-सहिता नि० ७।१३ के निम्नलिखित वचन से ज्ञात होता है कि देव आदि किस कारण से मनुष्य मे प्रवेश करते है—

प्रज्ञापराधात् ह्ययं देवर्षि-पितृ-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-पिशाच-गुरु-वृद्ध-सिद्ध-आचार्य-पूज्यान् अवमत्य अहितान्याचरति अन्यद्वा किंचिदेवंविधं कर्म अप्रशस्तम आरभते। तम् आत्मना अपहृतम् उपघ्नन्तो देवादयः कुर्वन्ति अनुत्तमम् ।

अर्थात्—बुद्धि दोष से कोई पुरुष देवर्षि ···आदियो का तिरस्कार करके अर्थात् महान् प्राकृतिक नियमो का उल्लघन करके अकल्याणकारी कर्म करता है · तो देव आदियो से उस पुरुष का अहित होता है। नियमो के उल्लघन का फल रोगरूप मे उसे मिलता है।

वस्तुत यदि ऊपर के सारे प्रकरण को सम्बद्ध किया जाए तो स्पष्ट होता है कि पञ्चतन्मात्राओ के कार्य सूक्ष्म तत्त्व भूत कहाते है। प्राकृतिक नियमो के उल्लघन से विशेष नक्षत्रो अर्थात् सूर्य चन्द्र आदि देवो का सूक्ष्म प्रभाव मनुष्य मे व्याप्त तन्मात्राओ पर पडता है। उस समय अनेक रोग उत्पन्न होते है।

हमारे शास्त्रो मे आचार के अनेक नियमो का वर्णन करते हुए लिखा है—

१. नग्न स्नान न करे।

२. अमुक दिशा की ओर मूत्र तथा पुरीषोत्सर्ग न करे।

३. इन्द्रधनुष किसी को न दिखाए।

४. उत्तर की ओर सिर करके न सोए।

इस प्रकार के आचार के नियमो के उल्लघन से ग्रह-नक्षत्र आदि का सूक्ष्म प्रभाव तन्मात्राओ पर पडता है। इसी को लक्ष्य करके चरक-सहिता नि० ७।१३ के वचन मे लिखा है—प्रज्ञापराध से, देवो का अपमान करने से देव मनुष्यो पर क्रुद्ध होते है। यदि वर्तमान काल मे ऐटम बम्ब का सूक्ष्म प्रभाव सुदूरवर्ती अणुओ तक भी पहुँचता है तो शरीर की क्रियाविशेष का प्रकृति के विशेष देवो, ग्रह आदि से सम्बन्ध होने पर विशेष रोगोत्पत्ति होना आश्चर्यकर नही। प्रतीत होता है इन रोगो का अधिक सम्बन्ध मन तथा सूक्ष्म तन्मात्राओ से है। अतएव इनकी निवृत्ति भी जप आदि से कही है। यथा—

भूतं जयेदहिंसेच्छुं जपहोमबलिव्रतैः।
तपश्शीलसमाधानज्ञानदानदयादिभि ॥अष्टा० सं० उ०, पृ० ६६॥

इन सूक्ष्म प्रभावो के ज्ञान के लिए महती खोज आवश्यक है। एतद्विषयक निम्नलिखित कुछ श्लोक भी द्रष्टव्य है—

हिंसाविहारा ये केचिद्देवभावमुपाश्रिता ॥२६॥
भूतानीति कृता संज्ञा तेषां संज्ञाप्रवक्तृभिः।
ग्रहसंज्ञानि भूतानि यस्माद्वेत्त्यनया भिषक् ॥२७॥
विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते।
तेषां शान्त्यर्थमन्विच्छन् वैद्यस्तु सुसमाहितः ॥२८॥
जपैः सनियमैर्होमैरारभेत चिकित्सितुम्। सुश्रुत, उ०अ० ६०।

वर्तमान काल मे भूत, चुडैल आदि की झाड-फूंक आदि से चिकित्सा, मुसलमान फकीरो के जादू-टोने तथा धागे भूतविद्या का विकृतरूप प्रतीत होता है।

एलोपैथी मे इस विद्या का सर्वथा अभाव है। सत्त्व आदि गुणो के ज्ञान के विना इस विद्या का ज्ञान असम्भव है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे चतुर्दशोऽध्यायः।

पञ्चदश अध्याय

अगदतन्त्र

९५ आलम्बायन

अगद शब्द का सामान्य अर्थ है—**गदस्याभावः अगदः**—अर्थात् रोगरहित होना। परन्तु आयुर्वेद मे यह पारिभाषिक शब्द हो गया है। आचार्य डल्हण इसकी व्याख्या करते हुए लिखता है—**अगदो विषप्रतिकारस्तदर्थं तन्त्रम् अगदतन्त्रं**। अर्थात्—विविध विषो की शान्ति का उपाय बताने वाला तन्त्र अगदतन्त्र कहाता है।

अगदतन्त्र के तीन आचार्यो (वृद्ध काश्यप=काश्यप, उशना तथा बृहस्पति) का वर्णन पूर्व अध्यायो मे कर चुके है। प्रस्तुत प्रकरण मे अगदतन्त्राचार्य आलम्बायन का वर्णन करते है। वस्तुत अगदतन्त्र अर्थशास्त्र का एक भाग है।

वंश—यजुर्वेद के चरक चरण का एक शाखाकार आलम्बि था। उसका पुत्र अथवा उसके कुल मे आलम्बायन हुआ। महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय ४९ मे इन्द्रसखा आलम्बायन का नाम है। नही कह सकते यह आलम्बायन कौन था।

काल—आलम्बायन का काल भारतयुद्ध से कुछ पूर्व का होना चाहिए।

ग्रन्थ

आलम्बायनतन्त्र—सुश्रुतसहिता के कल्पस्थान की डल्हण-व्याख्या मे स्थान-स्थान पर आलम्बायन के वचन उद्धृत है। यह प्रकरण अगदतन्त्रपरक है। इससे निश्चय होता है कि आलम्बायन अगदतन्त्राचार्य था।

वचन—डल्हणकृत निबन्ध-सग्रह मे आलम्बायन के अनेक वचन मिलते है। इनके अतिरिक्त हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७६० पर आलम्बायन के चार वचन उद्धृत है। अष्टाङ्गसग्रह उ० की इन्दुटीका पृ० ३१४ पर विषप्रकरण मे आलम्बायन का एक अन्य वचन उद्धृत है।

६६. दारुवाह=नग्नजित्

वंश—गान्धार के राजवश मे नग्नजित्=दारुवाह का जन्म हुआ था।[1]

नाम—आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे दारुवाह तथा नग्निजत् दो नाम दृष्टि मे पडते है।

अष्टाङ्गसग्रह उ०, पृ० ३१४ पर नग्नजित् का मत उद्धृत है। यथा—

सप्तमे मरणं वेग इति नग्नजितो मतम् ॥

इस वचन की व्याख्या मे इन्दु लिखता है।

नग्नजितो दारुवाहिनः अपि अत्र ·····सप्तवेगा इति मतम् ।

इन्दु के इस वचन से स्पष्ट है कि नग्नजित् को दारुवाह भी कहते थे।

भेलसहिता पृ० ३० पर नग्नजित् को **राजर्षि** तथा **पार्थिवर्षि** कहा है। काश्यपसहिता पृ० २६ पर दारुवाह को **राजर्षि** कहा है, अत दोनो के एक होने मे कोई सन्देह नही।

स्थान—नग्नजित्=दारुवाह गान्धारराज था। भेलसहिता पृ० ३० पर इसका उल्लेख है।

शतपथ ब्राह्मण ८।१।४।१० मे लिखा है—**नग्नजिद्वा गान्धारः ।**

ऐतरेय ब्राह्मण ३८।८ के **नग्नजिते गान्धाराय,** पाठ से भी स्पष्ट है कि नग्नजित् गान्धारवासी था।

महाभारत आदिपर्व ६३।१०७ मे भी नग्नजित् को गान्धारी कहा है।

काल—नग्नजित् निमि आदि का समकालिक था।

गुरु

१. **पुनर्वसु आत्रेय**—भेलसहिता पृ० ३० के पाठानुसार दारुवाह ने आत्रेय पुनर्वसु से विषयोग सीखे।

२. **प्रजापति कश्यप**—काश्यपसहिता पृ० २१ पर लिखा है कि दारुवाह ने वृद्धजीवक को कश्यप से वेदना की व्याख्या कराने के लिए प्रेरित किया। स्पष्ट है कि अप्रत्यक्ष रूप से दारुवाह ने कश्यप से भी आयुर्वेद सीखा।

ग्रन्थ

१. **दारुवाहतन्त्र**—चरक सहिता चि० ३। ६३–६७ की जेज्जट टीका मे लिखा है—

दारुवाहे च पठ्यन्ते ।

अर्थात्—दारुवाह के तन्त्र मे (ज्वरविषयक) श्लोक पढे जाते हैं।

---

१. **भेलसंहिता पृ० ३० ।**

स्पष्ट है कि दारुवाह का आयुर्वेदीय तन्त्र विद्यमान था।

भेलसहिता के अनुसार नग्नजित् ने पुनर्वसु से विषयोग सीखे। अष्टाङ्ग-सग्रह उ० पृ० ३१४ के नग्नजित् के वचन से नग्नजित् के अगदतन्त्र का होना सिद्ध होता है।

पूर्व पृ० १०४ पर उद्धृत शालिहोत्र वचनानुसार (वि) नग्नजित् सर्वलोक-चिकित्सक तथा आयुर्वेद-प्रवर्तक था। जेज्जटटीका आदि मे उद्धृत दारुवाह के वचनो से उसका आयुर्वेदज्ञ होना सिद्ध होता है।

वचन—दारुवाह के सात वचन निम्नलिखित स्थानो मे क्रमश उपलब्ध होते है। यथा—काश्यपसहिता पृ० २६, चरक स० चि० ३। ६३—६७ की जेज्जट व्याख्या, चरक स० चि० ३।७४ की चक्रपाणिव्याख्या, अष्टाङ्गसग्रह उ० पृ० ३१३—१४, अष्टाङ्गहृदय सू० ५।२०, शा० १।५, शा० ३।६२, तथा ६३ की सर्वाङ्गसुन्दरा टीका।

२. **वास्तुशास्त्र**—मत्स्यपुराण अध्याय २५२ के अनुसार नग्नजित् वास्तु-शास्त्रोपदेशक था।

६७. आस्तीक

वंश—महाभारत आदिपर्व मे आस्तीक की जन्मकथा वर्णित है। इसका जन्म नागवश मे हुआ था। इसका पिता जरत्कारु तथा माता मनसादेवी थी।

ग्रंथ

आस्तीकतन्त्र—चि० क० पृ० ७६ पर आस्तीकके अगदतन्त्र का वर्णन है।

योग—चिकित्साकलिका मे लिखा है—आस्तीकनाम अगदम्। यह योग आस्तीक का था।

६८. तार्क्ष्य तन्त्र

इस तन्त्र का अस्तित्व चरक चि० २३।२५०-५३ की जेज्जट टीका से ज्ञात होता है। वहाँ लिखा है—**अन्या अपि तार्क्ष्यतन्त्र आम्नाताः।**

६९. विषतन्त्र

अष्टाङ्ग हृ० सू० ७।२२-२६ की हेमाद्रि-व्याख्या मे विषतन्त्र के अनेक-श्लोक उद्धृत है। तन्त्रकर्ता का नाम वहा नही लिखा।

७०. अगदराजतन्त्र

वैद्यक-विषयक सनामकरण विरचित अगदराजतन्त्र रा० एशियाटिक सो० बङ्गाल, कलकत्ता के सूचीपत्र मे सख्या ४५६२ के अन्तर्गत सन्निविष्ट है।

इति कविराजसूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे पञ्चदशोऽध्याय

षोडश अध्याय

रसायनतन्त्र

रसतन्त्र का महत्त्व—पूर्व लिख चुके है कि आयु के पालक वेद का नाम आयुर्वेद है । आयुर्वेद का अतितरा प्रभावोत्पादक अङ्ग रसतन्त्र है । आयुर्वेद के इस अङ्ग मे अनेक आयुष्य योग उल्लिखित है । रसायनतन्त्र की व्याख्या करते हुए सुश्रुतसहिता सू० १।७ मे लिखा है—

रसायनतन्त्रं नाम वयःस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापरहणसमर्थं च ।

इस वचन की व्याख्या मे डल्हण लिखता है—

वयःस्थापनं वर्षशतमायुःस्थापनम् । आयुष्करं शताधिकमपि करोति ॥

अर्थात्-सौ वर्ष की आयु देने वाला अथवा सौ वर्ष से भी अधिक आयु देने वाला ।

हम अनेक दीर्घायु महर्षियो का वृत्त लिख चुके है । वे योगबल तथा रसायनबल से अति दीर्घायु हुए । इस प्रकार आयुर्वेद शब्द को सार्थक प्रमाणित करने मे रसतन्त्र अत्यधिक महत्त्व रखता है ।

रसतन्त्र-कर्ता कुछ अतिदीर्घायु आचार्यो का वर्णन पूर्व कर चुके है । शिव रसतन्त्र का प्रधान आचार्य था । भृगु, अगस्त्य तथा वसिष्ठ भी रसतन्त्राचार्य थे । इन सब आचार्यो के क्रमबद्ध रसतन्त्र-विषयक इतिहास के लिए पृथक् ग्रथ की आवश्यकता है । इस अध्याय मे कुछ एक आचार्यो का सक्षिप्त वर्णन करेगे । अगस्त्य आदि के पश्चात् आचार्य माण्डव्य का रसतन्त्र मे विशेष स्थान है । अत उनका वर्णन करते है ।

७१. माण्डव्य

वंश—अष्टाध्यायी ४।१।१०५ के गर्गादि गण मे मण्डू शब्द पढा गया है । मण्डू का गोत्रापत्य माण्डव्य कहाया ।

काल—पालकाप्यकृत हस्त्यायुर्वेद १।१।२७ के अनुसार दशरथसखा रोमपाद के दरबार मे ऋषि माण्डव्य उपस्थित था । कौषीतकि गृह्य २।५ मे माण्डव्य का नाम स्मरण किया है । महाभारत आदिपर्व १०७ मे भी माण्डव्य

का वर्णन है। कौटल्य अर्थशास्त्र ४।८ मे माण्डव्य विषयक एक घटना वर्णित है। यही घटना बृहस्पति के निम्नलिखित वचन से स्पष्ट हो जायगी। यथा—

चौरो ऽचोरो साध्वसाधु जायेत व्यवहारतः।
युक्तिं विना विचारेण माण्डव्यश्चौरतां गतः॥

अर्थात् युक्तरहित न्याय से साधु माण्डव्य चोर बना दिया गया।

वस्तुत. यह अन्वेषणीय है कि विभिन्न स्थानो पर वर्णित माण्डव्य एक है अथवा पृथक् पृथक्।

आयु—माण्डव्य अति दीर्घायु था।

पतञ्जलि का योगसूत्र है—

जन्मौषधिमन्त्रतपःसमाधिजाः सिद्धयः। ४।१॥

इस सूत्र के ओषधि शब्द पर व्यासभाष्य मे लिखा है।

ओषधिभिरसुरभवनेषु रसायनेन इत्येवमादिः।

इस वचन पर वाचस्पति मिश्र की टीका से ज्ञात होता है कि माण्डव्य मुनि रसायन प्रयोग से दीर्घायु हुआ। यथा—

मनुष्यो हि कुतश्चिन्निमित्तादसुरभवनमुपसंप्राप्त कमनीयाभिरसुर-कन्याभिरुपनीतं रसायनमुपयुज्याजरामरणत्वमन्याश्च सिद्धिरासादयति। इहैव वा रसायनोपयोगेन—यथा माण्डव्यो मुनी रसोपयोगाद् विन्ध्य-वासी इति।

व्यास मुनि के वचन मे असुरभवनो मे ओषधि के प्रयोग का अभिप्राय असुर गुरु उशना द्वारा ओषधि रस से निर्मित सुधा प्रतीत होता है। रसायन का प्रयोग पारद योगो के लिए हुआ प्रतीत होता है।

यह निश्चित है कि माण्डव्य रसायन सेवन से दीर्घायु हुआ।

गुरु

वसिष्ठ—पूर्व पृ० ६४ पर लिख चुके है कि वसिष्ठ ने अपने शिष्य माण्डव्य को ज्योतिष शास्त्र सिखाया।

ग्रंथ

१. **रसतन्त्र**—रसरत्न समुच्चय मे माण्डव्य को रससिद्धि-प्रदायक कहा है। नागार्जुन ने अपने रसरत्नाकर मे माण्डव्य को रसतन्त्रकार कहा है। एक अन्य स्थान पर नागार्जुन कहता है—

शास्त्रं वसिष्ठ-माण्डव्यं गुरुपार्श्वे यथाश्रुतम्।
तदहं संप्रवक्ष्यामि साधनञ्च यथाविधि॥

अर्थात्—वसिष्ठ तथा माण्डव्य का शास्त्र गुरु से जैसा सुना है उसे यथा-

विधि कहूगा ।

वचन—माण्डव्य का कोई वचन तथा योग नही मिला ।

७२. व्याडि

वंश—व्याडि शब्द तद्धितान्त है, तदनुसार व्याडि के पिता का नाम व्यड था । मत्स्यपुराण १६।५।२५ मे दाक्षि को अगिरा वश का कहा है । न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि के लेखानुसार **'व्याडि दाक्षायण'** का जन्म ब्राह्मणकुल में हुआ था । दाक्षी और दाक्षायण नामो से इस वश के मूल-पुरुष का नाम दक्ष प्रतीत होता है । कोशग्रथो में व्याडि का एक विशेषण नन्दिनी-सुत है । इससे ज्ञात होता है कि व्याडि की माता का नाम नन्दिनी था । श्री प० युधिष्ठिर जी मीमासक व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० १६५ पर लिखते है कि नन्दिनी सुत आदि विशेषण किसी अर्वाचीन व्याडि के है, इस व्याडि के नही । उनके अनुसार रसतन्त्रकार व्याडि की माता का नाम नन्दिनी नही हो सकता । पाणिनी ने ४।१।८० के क्रौडयादि गण मे व्याडि का निर्देश किया है । उसके अनुसार व्याडि की किसी भगिनी का नाम व्याडया प्रतीत होता है । इसका अन्यत्र उल्लेख नही । व्याडि पाणिनी का मामा था । एतद्विषयक विशेषवृत्त के लिए देखो व्याकरण शा० इ० पृ० १३१ ।

पर्याय—व्याडि को दाक्षि तथा दाक्षायण भी कहते थे ।

काल—व्याडि का काल भारतयुद्ध पश्चात् २००–३०० वर्षों के मध्य है । गृहपति शौनक ने अपने ऋक्प्रातिशाख्य मे अनेक स्थानो पर व्याडि का उल्लेख किया है । ऋक्प्रातिशाख्य का प्रवचन भारतयुद्ध के लगभग २५० वर्ष के पश्चात् महाराज अधिसीम कृष्ण के काल मे हुआ था ।

स्थान—पुरुषोत्तमदेव आदि ने व्याडि का एक विशेषण विन्ध्यस्थ=विन्ध्य-वासी=विन्ध्यनिवासी लिखा है । तदनुसार किसी काल में वह विन्ध्य पर्वत का निवासी था । काशिका २।४।६० मे किसी दाक्षि पिता तथा दाक्षायण पुत्र का उल्लेख है । इससे आगे काशिका ४।१।१६० मे दाक्षि को प्राग्देशीय लिखा है । अभिनव शाकटायन व्याकरण २।४।११७ की चिन्तामणि वृत्ति मे अगवग प्राग्देशवासियो के साथ दाक्षि पद पढा है । दाक्षि या दाक्षायणो का कुल बहुत विस्तृत और समृद्ध था । काशिका मे दाक्षि पूर्वपद नामक अनेक ग्रामो का उल्लेख मिलता है ।

ग्रन्थ

१. **रसतन्त्र**—वाग्भट के रसरत्नसमुच्चय के आरम्भ मे स्मृत २७ रसाचार्यों में व्याडि का नाम है । महाराज समुद्रगुप्त के कृष्णचरित की कथा प्रस्ताव-

नान्तर्गत मुनिकवि-कीर्तन में व्याडि को रसाचार्य कहा है। यथा—

रसाचार्यः कविर्व्याडिः शब्दब्रह्मैकवाङ्मुनिः।
दाक्षीपुत्रवचोव्याख्यापटुर्मीमांसकाग्रणीः ॥१६॥

पार्वतीपुत्र नित्यनाथ सिद्ध विरचित रसरत्न के वादिखण्ड, उपदेश १, श्लोक ६६–७० मे उल्लिखित रसाचार्यों के नामो में व्यालाचार्य का नाम स्मरण किया गया है। 'ड' 'ल' के अभेद से सम्भव है यहाँ शुद्धपाठ व्याड्याचार्य हो। रामराजा के रसरत्नप्रदीप मे भी व्याडि का उल्लेख है। निश्चय ही आचार्य व्याडि रस=पारद शास्त्र का प्रमुख आचार्य था। अल्बेरूनि ने अपनी पुस्तक के भाग १, अध्याय १७, पृ० १८९ पर एक रसज्ञ व्याडि का उल्लेख किया है। अल्बेरूनि के अनुसार वह व्याडि विक्रमसमकालिक था।

२. **मीमांसा**—कृष्णचरित मे व्याडि को मीमासकाग्रणी लिखा है।

३. **संग्रह**—दाक्षायण व्याडि ने व्याकरण के सग्रह ग्रथ की रचना की। भरत नाट्यशास्त्र ६।९ मे सग्रह का निम्नलिखित लक्षण उपलब्ध है—

विस्तरेणोपदिष्टानाम् अर्थानां सूत्रभाष्ययोः।
निबन्धो यः समासेन संग्रहं तं विदुर्बुधाः॥

चरकसहिता मे प्रकरण-समाप्ति पर लिखे गए सग्रह श्लोको पर यह लक्षण यथारूप घटता है, परन्तु कैय्यट आदि के अनुसार व्याडि का सग्रह ग्रन्थ एक लाख श्लोको मे था। क्या वह समासरूप मे था ? यहाँ यह लक्षण चिंत्य है।

४. **व्याकरण**—व्याडि का एक व्याकरण शास्त्र भी था।

५. **परिभाषापाठ**—अनेक प्रमाणो से स्पष्ट है कि व्याडि ने परिभाषापाठ की रचना की।

६. **लिङ्गानुशासन**—व्याडिकृत लिङ्गानुशासन का उल्लेख मिलता है।

७. **बलचरित**—महाराज समुद्रगुप्त के पूर्वोद्धृत वचनानुसार व्याडि ने महाभारत से भी अधिक प्रसिद्ध **'बलचरित'** नामक महाकाव्य लिखा।

८. **विकृतिवल्ली**—विकृतिवल्ली सज्ञक ऋग्वेद का एक परिशिष्ट उपलब्ध होता है। वह आचार्य व्याडिकृत माना जाता है। परन्तु यह ग्रथ या तो किसी अर्वाचीन व्याडि का है, अथवा इसमें नमस्कार का श्लोक पीछे से मिलाया गया है।

९. **कोष**—व्याडि के कोष के उद्धरण कोश ग्रथो की अनेक टीकाओ मे उपलब्ध होते है। यह कोश विक्रमकालिक अर्वाचीन व्याडि का है।

७३. पतञ्जलि

वंश—पतञ्जलि की माता का नाम गोणिका कहा जाता है, परन्तु संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास पृ० २३५ पर श्री पं० युधिष्ठिर जी लिखते हैं—हमारा विचार है कि गोणिका-पुत्र भी पतञ्जलि से पृथक् व्यक्ति है। पतञ्जलि के पिता का नाम सर्वथा अज्ञात है।

नामान्तर—पतञ्जलि को गोनर्दीय, गोणिका-पुत्र, नागनाथ, अहिपति, फणिभृत्, चूर्णिकार और पदकार आदि नामों से स्मरण किया है।

अन्य सम्भावना—आगे ऐसे प्रमाण लिखेंगे जिनसे ज्ञात होता है कि चरक संहिता का प्रतिसंस्कर्ता एक पतञ्जलि था। श्री पं० युधिष्ठिर जी अपने व्या० इतिहास के पृ० २५३ पर लिखते हैं—क्या चरक पतञ्जलि का ही नामान्तर है? पतञ्जलि अधिकतर काठक संहिता के पाठों को उद्धृत करता है। काठक संहिता चरक चरणान्तर्गत है। यदि उपर्युक्त विचार ठीक हो तो पतञ्जलि का एक विशेषण चरक होगा। इस विचार की पुष्टि के लिए सब वैदिक पाठों की तुलना आवश्यक है।

स्थान—पतञ्जलि का एक विशेषण गोनर्दीय है, परन्तु श्री मीमांसक जी अपने इतिहास के पृ० २३४ पर लिखते हैं—हमारा विचार है कि गोनर्दीय पतञ्जलि से भिन्न व्यक्ति है। यदि पतञ्जलि का एक विशेषण गोनर्दीय है तो पतञ्जलि गोनर्द देशवासी था।

काल—गिरिन्द्रनाथ जी ने हि० इ० मे०, भाग ३, पृ० ७७८ पर पतञ्जलि की तिथि ईसा-पूर्व दूसरी शती लिखी है। यह तिथि पाश्चात्य लेखकों द्वारा कल्पित है। महाभाष्यान्तर्गत अनेक उद्धरणों से स्पष्ट है कि पतञ्जलि पुष्यमित्र का समकालिक था। पौराणिक काल-गणना के अनुसार, जो सर्वथा ठीक है, पुष्यमित्र विक्रम से लगभग १२०० वर्ष पूर्व हुआ। अतः पतञ्जलि का भी वही काल है।

ग्रन्थ

पतञ्जलि-विरचित तीन ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं।

१. सामवेदीय निदानसूत्र।

२. योगसूत्र।

३. महाभाष्य।

निम्नलिखित ग्रन्थ नाममात्रोपलब्ध हैं।

४. **रसतन्त्र**—रसरत्नसमुच्चय में पतञ्जलि को रसतन्त्रकर्ता कहा है।

५. चक्रपाणि तथा भोजदेव आदि के अनुसार पतञ्जलि ने चरक संहिता

का प्रतिसस्कार किया परन्तु इसके लिए प्रबल प्रमाण अपेक्षित है। उपलब्ध चरक सहिता के प्रत्येक अध्याय के अन्त मे लिखा है—**अग्निवेशकृते तन्त्रे चरकप्रतिसंस्कृते**। पूर्व पृ० पर लिख चुके है कि सम्भवत चरक शाखा का अध्येता होने के कारण पतञ्जलि का एक नाम चरक था। यह विचारणीय विषय है। महाराज समुद्रगुप्त ने अपने कृष्णचरित की प्रस्तावना मे लिखा है—

महाभाष्य के रचयिता पतञ्जलि ने चरक मे धर्मानुकूल कुछ योग सम्मिलित किए, और योग की विभूतियो का निदर्शक योग व्याख्यानभूत "महानन्द-काव्य" रचा।

इससे स्पष्ट है कि पतञ्जलि ने चरक सहिता मे कुछ योग सन्निविष्ट किए।

चक्रपाणि, पुण्यराज और भोजदेव आदि अनेक ग्रन्थकार मानते है कि—महाभाष्य, योगसूत्र तथा चरक सहिता का प्रतिसस्कर्ता एक ही पतञ्जलि था। परन्तु यह विचारणीय विषय है। षड्गुरुशिष्य ने लिखा है—

योगाचार्य. स्वयं कर्ता योगशास्त्रनिदानयोः।

इसके अनुसार योगदर्शन तथा सामवेदीय निदानसूत्र का कर्ता एक ही व्यक्ति है। यह अति प्राचीन ऋषि है। महाभाष्यकार पतञ्जलि इसकी अपेक्षा अर्वाचीन है। एक आङ्गिरस पतञ्जलि का उल्लेख मत्स्य १६५।२५ मे मिलता है।

७४. नागार्जुन

वंश—कहा जाता है कि नागार्जुन ब्राह्मणकुलोत्पन्न था। पर उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था।

स्थान—पूर्व पृ० २५१ पर लिख चुके है कि लामा तारानाथ के अनुसार वह मध्यप्रदेश, दक्षिण तथा श्रीपर्वत नामक विभिन्न स्थानो पर समय-समय पर रहा।

काल—पूर्व लिख चुके है कि नागार्जुन शक-प्रवर्तक साहसाङ्क विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व था।

चीनी ग्रन्थो का साक्ष्य—नागार्जुन सातवाहन महाराज मन्तलक=पत्तलक का समकालिक प्रतीत होता है। प० भगवद्दत्त जी भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय सस्करण, पृ० २६० पर लिखते है—ह्यूनत्साग की जीवनी मे लिखा है—नागार्जुन के समय मे देश का राजा **सो-तो-पो-हो** था। (अग्रेजी अनुवाद पृ० १३५)। यह सातवाहन शब्द का चीनी रूपान्तर है।" इति।

वाट्टर्स के अनुवाद मे **श-तो-पो-ह** पाठ है।[1]

---

१. भाग २, पृ० २०६।

पूर्वलिखित दोनो चीनी पाठ सातवाह (न) शब्द का रूपान्तर है ।

पुराणो के मुद्रित पाठो के अनुसार मत्तलक का राज्यकाल ५ वर्ष था । बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार नागार्जुन का आश्रयदाता राजा चिरजीवी था । इस स्थल पर पुराण पाठ चिन्त्य है ।

चीनी यात्री ह्यूनत्साग के अनुसार अश्वघोष और नागार्जुन समकालिक थें ।

मन्तलक की समकालिकता का हेतु—प्रसिद्ध इतिहास लेखक श्री ० भगवद्दत्त जी ने सर्वप्रथम नागार्जुन को मन्तलक का समकालिक सिद्ध किया है । वे भारतवर्ष का इतिहास, द्वितीय सस्करण, पृ० २९० पर लिखते है—"जीवनी के अनुवादक ने चीनी ग्रन्थो के आधार पर इस राजा का नाम **शि-यन-तो-किया** लिखा है । इत्सिग इस राजा का नाम **त्रि-इन-त-क** लिखता है । इन चीनी रूपान्तरो से मूल नाम **चिन्तक** अथवा **सन्तक** प्रतीत होता है ।" मन्तलक के पाठान्तरो मे चन्तक पाठ भी उपलब्ध है ।

जैन परम्परा का साक्ष्य—नागार्जुन का यथार्थ काल समझने के लिए जैन गुरु परम्परा का एक वशवृक्ष हम नीचे उद्धृत करते है । यह वृक्ष प० भगवद्दत्तकृत भा० व० इ०, द्वि० स०, पृ० २९८ पर मुद्रित है । इस वृक्ष मे हमने कुछ परिवर्धन किया है ।

समकालिक सातवाहन राज[१]—श्री कालिकाचार्य[२]—गर्दभिल्ल-दण्डनार्थं शकराज निमन्त्रयिता ।

|

आर्य नागहस्ती[२]

|

शकारि-शूद्रक विक्रम, सातवाहन (मत्तलक)[३], कालिदास[५] प्रथम — [४]पादलिप्तक[२]-नागार्जुन[३] । पाटलिपुत्र मे मुरुण्ड

|

स्कन्दिलाचार्य[४]—ज्योतिष-ग्रन्थ रचयिता

|

मुकुन्द वृद्धवादी[४]

|

सिद्धसेन दिवाकर[६]—सवत्-प्रवर्तक साहसाङ्क विक्रम[७] का समकालिक

---

१. प्रभावक चरित, श्री कालकसूरिप्रबन्ध, श्लोक ११३-११६ ।

२. प्रभावक चरित, श्री पादलिप्तप्रबन्ध, श्लोक १५ । प्रबन्धकोष, पृ०

इस वृक्ष में हमने दो स्थानो पर परिवर्धन किया है। प्रथम स्थान पर ५ का अङ्क लिखा गया है। इसका आधार है तिब्बतीय वर्णन। तदनुसार कालिदास, नागार्जुन और सातवाहन समकालिक थे। दूसरा परिवर्धन स्कन्दिलाचार्य नाम के सामने का पाठ है। इसके प्रमाण के लिए देखो इण्डियन कलचर भाग ११, अक १, पृ० ४ पर ज्योतिषग्रन्थ सारावलि का पाठ।

यह गुरु-परम्परा-वृक्ष दृढ प्रमाणो के आधार पर बनाया गया है। अतः स्वीकरणीय है तदानुसार सवत् प्रवर्तक सिद्धसेन दिवाकर से बहुत पूर्व नागार्जुन हो चुका था।

पाश्चात्य लेखको की भ्रष्ट काल-गणना—पाश्चात्य लेखक और उनके एतद्देशीय शिष्य सातवाहनो को ईसा की दूसरी शती मे मानते है। यह कालगणना कल्पित अर्थात् बनावटी है। पुराणो का सर्वसम्मत मत है कि आन्ध्रो अथवा सातवाहनो के आरम्भ पर शन्तनु-पिता प्रतीप के काल से आरम्भ होने वाला एक सप्तर्षि-चक्र पूरा हो गया था। यह सप्तर्षि काल की गणना अकाट्य है। पाश्चात्य लेखको ने इस गणना को छुआ भी नही, अतः उन्होने अपनी गणनाएँ कल्पित की है। हमने इन मन-घडन्त तिथियो का सर्वथा त्याग किया है।

१२। पुरातन प्रबन्ध-संग्रह पृ० ६२।

३. नागार्जुन सातवाहन का गुरु तथा पादलिप्तक का शिष्य। प्रबन्धकोष पृ० ८४। प्रबन्ध चिन्तामणि पृ० ११६।

४. भद्रेश्वर सूरि की कथावलि (संवत् ११३० के समीप) में सिद्धसेन और विक्रम की समकालिकता स्वीकृत है। देखो, अपभ्रंश काव्यत्रयी, भूमिका, पृष्ठ ७४। प्रभावकचरित, वृद्धवादि प्रबन्ध ६१, श्लोक ४,५। प्रबन्धकोष पृ० १५।

५. देखो, गङ्गानाथ झा रिसर्च जर्नल, भाग १, अंक ४, पृ० ४०३-४०६।

६. कालिकसूरिः प्रतिमां सुदर्शनाय व्यधापयद्यां प्राक्। साकाशे गच्छन्ती निषेधिता सिद्धसेनेन॥ प्रभावकचरित, श्री विजयसिंह सूरि प्रबन्ध, श्लोक ७८। प्रबन्धकोष पृ० १६।

७. श्री सिद्धसेनसूरेर्दिवाकरात् बोधमाप्य तीर्थेस्मिन्। उद्धारं ननु विदधे राजा श्री विक्रमादित्यः॥ प्रभावक चरित, श्री वि० सि० सूरि प्र० श्लोक ७७। विविध तीर्थकल्प, कुडुंगेश्वर युगादि देवकल्प, पृ० ८८, ८९।

चीनी ग्रन्थो मे नागार्जुन का काल—विभिन्न चीनी ग्रथो मे नागार्जुन को बुद्धनिर्वाण से ७००,५०० अथवा ४०० वर्ष[1] पश्चात् माना है ।[2] स्मरण रहे कि चीनी ग्रथ बुद्ध को ईसा से लगभग १००० वर्ष पूर्व मानते है । अत उनकी गणना के अनुसार नागार्जुन का काल ईसा अथवा विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व पडेगा । यही हम पहले लिख चुके है ।

अरबी ग्रंथो मे नागार्जुन—अलबेरूनी रसायनज्ञ नागार्जुन के काल-विषय मे लिखता है—वह हमारे काल से लगभग १०० वर्ष पूर्व जीवित था । इति ।[3] यह लेख हमारी समझ मे नही आया ।

संस्कृत के अन्य ग्रंथों मे नागार्जुन

क—राजगुरु श्री हेमराज जी काश्यपसहिता उपो० पृ० ६५ पर अपने पुस्तकसग्रह के एक सस्कृत के हस्तलिखित ग्रथ **शालवाहन चरित्र** का वचन उद्धृत करते है—

दृष्टतत्त्वो बोधिसत्त्वो महासत्त्वो महाराजगुरुः श्रीनागार्जुनाभिधानः शाक्यभिक्षुराजः । इति ।

ख—महाकवि भट्ट बाण अपने हर्ष-चरित के उत्तर उच्छ्वास ८ में नागार्जुन तथा सातवाहन को समकालिक कहता है—

समतिक्रामति च कियत्यपि काले तामेकावलीं तस्मान्नागराजान्नागार्जुनो नाम ···लेभे च, त्रिसमुद्राधिपतये शातवाहनाय नरेन्द्राय सुहृदे स ददौ ताम् ।

इन प्रबल प्रमाणो से यह सिद्ध है कि सातवाहन, कनिष्क तथा अश्वघोष

---

१. चन्द्रकीर्ति अपने मध्यमिकावतार षष्ठ प्रकरण श्लोक ३ में आर्य नागार्जुन का स्मरण करता है । इस श्लोक की अपनी टीका में वह नागार्जुन विषयक लङ्कावतार सूत्र के दो श्लोक उद्धृत करता है । इससे आगे वह आर्य द्वादशसहस्रमहामेघ ग्रंथ का पाठ उद्धृत करता है । यथा—

लिच्छिविकुमारोऽयं··· · ·· · ·· ।
निर्वाणात् चतु.शतेषु वर्शेषु व्यतीतेषु ।
नागाह्वयो भिक्षुर्भूत्वा ··· · ।
भविष्यति ··· ·· ॥

जर्नल ओरिएण्टल रिसर्च मद्रास सन् १६२६, अन्त में पृ० ४,५ ।

२. देखो वाट्टर्स भाग २, पृ० २०४ ।

३. भाग १, पृ० १८६ ।

समकालिक थे तथा विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व हुए ।

आयु—नागार्जुन की आयु पर्याप्त दीर्घ थी ।

१. तिब्बती ग्रन्थो में—पूर्व पृ० २५१ पर लिख चुके है कि लामा तारानाथ के लेखानुसार नागार्जुन की आयु ५२९ अथवा ५७१ वर्ष हुई ।

२ चीनी ग्रन्थो का सार—वाट्टर्स अपनी पुस्तक के भाग २, पृ० २०४ पर लिखता है –

In the apocraphycal line of succession he (नागार्जुन) is placed as the 14th or the 13th Patriarch, and he is said to have died in B. C. 212. He is said to have been born in B. C. 482, and he is described as contemporary with, or a little later than, Kanishka in the first century of our era.

अर्थात्—बुद्ध की उत्तरवर्ती-परम्परा मे नागार्जुन १४वा अथवा तेरहवा प्रधान-पुरुष था । कहते है वह २७० वर्ष की आयु मे ईसा से २१२ वर्ष पहले निधन को प्राप्त हुआ । वर्तमान लेखक उसे ईसा की प्रथम शती मे रखते है ।

वस्तुत शूद्रक, नागार्जुन, कनिष्क और अश्वघोष आदि विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व हुए थे ।

नागार्जुन २०० वर्ष से न्यून नही जिया ।

३. बौद्ध ग्रन्थो में—पूर्व लिख चुके है बौद्ध ग्रन्थो मे नागार्जुन के आश्रयदाता राजा का नाम चिर-जीवी लिखा है । वस्तुत नागार्जुन के रसायन-बल से दीर्घ आयु प्राप्त करने के कारण वह चिरजीवी कहाया ।

मोनियर विलियम्स अपनी पुस्तक "बुद्धिज्म" के पृ० १९६ पर एक कथा उद्धृत करता है । उसमे लिखा है—नागार्जुन जादू जानता था । इस जादू के बल से उसने अपनी तथा एक भारतीय राजा की आयु अति दीर्घ की थी ।

यह सुनिश्चित है कि नागार्जुन रसायनज्ञ था, तथा रसायन-बल से वह स्वय दीर्घायु हुआ ।

प्रतिसस्कर्ता—आचार्य डल्हण के अनुसार नागार्जुन ने सुश्रुतसहिता का प्रतिसस्कार किया ।

प्रफुल्लचन्द्र रे का हिन्दू इतिहास पर अत्याचार

हिस्ट्री आफ हिन्दू कैमिस्ट्री, भाग १, भूमिका पृ० २४ पर रे महोदय लिखते है ।

Here for the first time in the history of Hindu

medicine and Chemistry, we come across a personage who is historical rather than mythical.

अर्थात्—हिन्दू औषध तथा रसशास्त्र के इतिहास मे हम नागार्जुन पर एक ऐसे व्यक्ति से मिलते है, जो ऐतिहासिक है, कल्पित नही।

परिणाम—रे महोदय के वाक्य से निम्नलिखित परिणाम निकलते है—

१. भारतीय वैद्यक तथा रसशास्त्र मे नागार्जुन ही पहला व्यक्ति है जो कल्पित नही, अर्थात् नागार्जुन से पूर्व के सब आचार्य कल्पित थे।

२. भारतीय आयुर्वेदिक इतिहास का प्रारम्भ ही नागार्जुन से हुआ।

आलोचना—हम अब तक नागार्जुन से पूर्व के ७३ आचार्यो का क्रमवद्ध सक्षिप्त इतिहास लिख चुके है। आचार्य रे ने उन सब पर हडताल फेर कर कहा है कि नागार्जुन ही सर्वप्रथम ऐतिहासिक व्यक्ति था।

काश्यपसहिता, चरकसहिता तथा सुश्रुतसहिता विद्वज्जगत् को अपना साक्ष्य स्वय दे रही है कि ये निश्चित ही नागार्जुन से पूर्व की कृतियाँ है। क्या इनकी ओर से आँखे मूँद कर कहना होगा कि ये भी मिथिकल अर्थात् कल्पित लेखको की कृतिया है ?

आर्य इतिहास को लिखने का साहस करने वाले, भारत की भूमि मे जन्म लेने वाले, ऋषियो के उत्तराधिकारी रे महोदय का उपरिलिखित वाक्य पढ कर किस सच्चे ज्ञानवान् भारतीय का मन नही फटता। क्या इसी प्रकार सारा भारतीय इतिहास नष्ट-भ्रष्ट नही किया गया ? क्या आज के स्वतंत्र भारत में भी यही भावनाए फैलेगी।

वस्तुत पश्चिमी लेखको ने प्रच्छन्न-धारणा से भारतीय गौरव को नष्ट करने के लिए यह विष फैलाना आरम्भ किया और नाममात्र के कतिपय भारतीय इतिहास लेखको ने आखे मूद कर उस बने-बनाए मार्ग पर चलना स्वीकार कर लिया। तथा गौराग प्रभुओ की धूर्तता को भारतीय इतिहास के नाम से सारी जाति पर मढ कर भयङ्कर अत्याचार किया।

रसतन्त्रकार

ग्रंथ

१. **लोहशास्त्र**--चक्रदत्त ने मुनीन्द्र नागार्जुन के लौहशास्त्र का उल्लेख किया है। रसेन्द्रचिन्तामणि तथा तत्त्वचन्द्रिका में भी इसका सकेत मिलता है।

२. **रसरत्नाकर**—यह रसतन्त्र भी नागार्जुनकृत माना जाता है।

३. **कक्षपुटम्**—यह ग्रथ नागार्जुन का कहा जाता है। इसका हस्तलख उपलब्ध है।

४. **आरोग्य मंजरी।**

५. **योगसार**—नेपाल पुस्तकभण्डार की हस्तलेख सूचि सख्या २२, हस्त-लेख संख्या ११३७ के अन्तर्गत नागार्जुन के इस ग्रन्थ का उल्लेख है। वङ्गसेन में भी इसका उल्लेख है।

६. **रसेन्द्र मङ्गल।**

७. **रतिशास्त्र**—सवादात्मक यह ग्रंथ भी नागार्जुन रचित है।

८. **रसकच्छपुट।**

९. **सिद्ध नागार्जुन**—C. P. B. सूची की हस्तलेख संख्या ६४६४ के अंतर्गत इस ग्रंथ का उल्लेख है।

वचन—नागार्जुन के ६ वचन हि० ई० मे०, भाग ३, पृ० ८३३,३४ पर उद्धृत है।

योग—नागार्जुन के १६ योग हि० इ० मे० भाग ३, पृ० ८३४,३५ पर उद्धृत है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे षोडशोऽध्यायः।

सप्तदश अध्याय

प्रतिसंस्कर्तृ-युग

७५. चरक–विक्रम से ३००० वर्ष पूर्व

प्रास्ताविक—द्वापर की समाप्ति हो गई। अब मनुष्यो का ज्ञान, स्मृति और आयु किञ्चित् न्यून हुई। मूल ग्रथो के समझने मे परिश्रम पडने लगा। उस समय ससार पर कृपा करके अनेक ऋषियो ने मूल तन्त्रो के प्रतिसस्करण निकाले। ऐसा ही एक प्रतिसस्करण चरक ने अग्निवेशतन्त्र का किया।

प्रतिसस्करण का स्वरूप—ब्रह्मा का उपदेश **आगम** वा **आम्नाय** था। इन्द्र का उपदेश **शास्त्र** था। आत्रेय पुनर्वसु और अग्निवेश ने **तन्त्र** कहे वा लिखे। चरक ने प्रतिसस्कार करके अग्निवेश तन्त्र की **सहिता** बनाई। यह सहिता सूत्र, भाष्य तथा सग्रह युक्त है।

चरकसहिता सि० १२।६३, ६४ मे प्रतिसस्कार का निम्नलिखित लक्षण लिखा है—

विस्तारयति लेशोक्तं संक्षिपत्यतिविस्तरम्।
संस्कर्ता कुरुते तन्त्रं पुराणं च पुनर्नवम्॥

सूत्र-सग्रह भाष्यात्मिका चरकसहिता—चरक चि० ३।३२-३५ की जेज्जट व्याख्या से ज्ञात होता है कि यह प्रतिसस्कृत सहिता सूत्र, सग्रह तथा भाष्यात्मिका है। यथा—

सुप्रणीत-सूत्र-संग्रह-भाष्यं चेदं तन्त्रम्। पृ० ८७६

इसी बात को पृ० ८९३ पर जेज्जट पुन स्पष्ट करता है—

न केवलं तन्त्रान्तरप्रामाण्याद् अस्माच्च सन्ततसूत्रभाष्यात् प्रतिपादयिष्यति आचार्यः।

चार प्रकार के सूत्र—चरक सहिता सू० १।२ की व्याख्या मे चक्रपाणि पुरातन आचार्यो के मतानुसार लिखता है कि चरक सहिता मे सूत्र चार प्रकार के है। यथा—

चतुर्विधं सूत्रं भवति—गुरुसूत्रं, शिष्यसूत्रं, प्रतिसंस्कर्तृसूत्रं, एकीय-सूत्रम् च इति ।

प्रतिसंस्कर्तृ-सूत्र का स्वरूप—आचार्य डल्हण सुश्रुतसहिता सू० १।२ की व्याख्या में प्रतिसस्कर्तृ-सूत्र का स्वरूप स्पष्ट करता है । यथा—

यत्र-यत्र परोक्षे लिट्प्रयोगस्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्तृ-सूत्रं ज्ञातव्यम् इति ।

अनुव्याख्यानात्मक भाष्य—चरकसहिता नि० ६।१ मे लिखा है—**अथातः शोषनिदानं व्याख्यास्यामः ।** इसके आगे चरकसहिता नि० ६।४ मे लिखा है—

तत्र यदुक्तं साहसं शोषस्यायतन इति तद् अनुव्याख्यास्यामः ।

नाम—अग्निवेशतन्त्र के प्रतिसस्कर्ता, कृष्णद्वैपायन व्यास के शिष्य वैशम्पायन का अपरनाम चरक था ।

भगवद्दत्त जी का अनुसंधान—सवत् १९८४ मे सर्वप्रथम प० जी ने अपने वैदिक वाङ्मय का इतिहास, ब्राह्मण भाग, पृ० ७१ पर अष्टाध्यायी की काशिकावृत्ति ४।३।१०४ का निम्नलिखित पाठ उद्धृत किया—

चरक इति वैशम्पायनस्याख्या तत्सम्बन्धेन सर्वे तदन्तेवासिनश्च चरका इत्युच्यन्ते ।

अर्थात्-वैशम्पायन का ही अपरनाम चरक था । इस सम्बन्ध से उसके सब अन्तेवासी चरक कहे जाते थे ।

पं० जी द्वारा उद्धृत इस प्रमाण से निश्चित होता है कि वैशम्पायन का दूसरा नाम चरक था ।

राजगुरु की अनुमति—सवत् १९९५ मे राजगुरु श्री हेमराजजी ने काश्यपसहिता उपो० पृ० ९५ पर इसी प्रमाण को उद्धृत किया है । इस से उन्होने भी पूर्व निष्कर्ष ही निकाला है ।

रघुवीरशरण जी का अनुसरण—इसके पश्चात् स० २००७ मे श्री रघुवीरशरणजी ने भी अपने धन्वन्तरि-परिचय में यही प्रमाण उद्धृत किया ।

वस्तुत वेदव्यास का शिष्य वैशम्पायन, कृष्ण यजुर्वेद का अध्येता था । वह सर्वशाखाध्यायी अर्थात् कृष्ण यजुर्वेद की ८६ शाखाओ का प्रवचनकर्ता था । उसका प्रधान चरण चरक कहाया । उसके सब शिष्य गुरु के नामानुसार चरक हुए । तत्पश्चात् आयुर्वेदीय चरकसहिता के अध्येता भी चरकाचार्य अथवा चरक कहाए ।

मूल चरक एक—भारतीय इतिहास की परम्परानुसार मूल रूप से चरक नाम एक व्यक्ति का था । तदुपरान्त अन्य व्यक्तियो का गौण नाम चरक हुआ ।

किसी व्यक्ति के गौण नाम पर कोई ग्रथ प्रसिद्ध हो जाए, यह अन्वेषणीय है। अत अग्निवेशतन्त्र का प्रतिसस्कर्ता वैशम्पायन ही था, जिसकी आख्या चरक थी।

वैशम्पायन चरक बहुविध वैद्य—वैशम्पायन चरक न केवल नर-वैद्यक का ज्ञाता था, अपितु हस्त्यायुर्वेद तथा अश्वायुर्वेद का भी विशेषज्ञ था। अत द्वैपायन शिष्य वैशम्पायन चरक ही अग्निवेशतन्त्र का प्रतिसंस्कर्ता था।

भारत कथा सुनाते हुए शान्तिपर्व अ० १६ मे वैशम्पायन भीमसेन का मत सुनाता है—

शीतोष्णे चैव वायुश्च त्रयः शारीरजा गुणाः।
तेषां गुणानां साम्यं च तदाहु. स्वस्थलक्षणम् ॥ ११ ॥

यहा शीत तथा उष्ण से कफ और पित्त का तात्पर्य है। पजाब मे प्रतिश्याय को ठण्ड अर्थात् शीत अब भी कहते है। वैशम्पायन इन सिद्धान्तो से पूर्ण परिचित था। महाभारत मे आयुर्वेद-विषयक शतश श्लोक विद्यमान है। भावी लेखको को वैशम्पायन की रचनाओ मे शीत-उष्ण की परिभाषाओं का प्रयोग ढूंढना चाहिए।

इन दोनो विषयो पर लिखे उसके दो ग्रथ अब भी उपलब्ध है। देखो इसी प्रकरण का अगला ग्रथ शीर्षक।

काल

काल का आरम्भ—वैशम्पायन कृष्णद्वैपायन व्यास का शिष्य था। उसने कलि के आरम्भ मे कुरु महाराज जनमेजय को प्रसिद्ध सर्पसत्र मे भारत की कथा सुनाई। प्रतीत होता है उन्ही दिनो वैशम्पायन ने चरकसहिता का प्रतिसस्कार किया। यह काल-कलि का आरम्भ था।

चरकसंहिता का अन्तःसाक्ष्य—चरकसहिता शा० ६।२६ के वचन से स्पष्ट होता है कि चरकसहिता का प्रतिसस्कार कलि के आरम्भ मे हुआ। यथा—

वर्षशतं खल्वायुषः प्रमाणमस्मिन् काले।

अर्थात्—इस [कलि] काल मे [मानव] आयु-परिमाण सौ वर्ष है। चरक के अनुसार यह परिमाण कलि के आरम्भ मे होता है। तत्पश्चात् यह कुछ-कुछ न्यून होता जाता है।

चरक, ऋषि—अधिसीमकृष्ण के काल मे नैमिषारण्य मे दीर्घसत्र हुआ। उस समय ऋषि विद्यमान थे। तत्पश्चात् ऋषियुग शनै शनै समाप्त हुआ। यह गति कलि के ३००-४०० वर्ष व्यतीत होने तक थी।

वैशम्पायन चरक भी ऋषि था। अत उसका भी वही काल है।

अन्य अनेक ग्रन्थ, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और आयुर्वेद आदि रचे।

मीमासा भाष्यकार शबर स्वामी (प्रथम शती विक्रम) जैमिनीय न्याय-माला सूत्र २।३२ के भाष्य मे प्राचीन वृत्तिकार (उपवर्ष अथवा बोधायन) का एतद्विषयक व्याख्यान उद्धृत करता है—

वृत्तिकारस्तु शिष्यहितार्थं प्रपञ्चितवान्-इतिकरणबहुलम्। ··
हेतु निर्विचन निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः। इत्यादि।

वायुपुराण-गत श्लोको और वृत्तिगत श्लोको के पाठ का पूरा साम्य है। सभवत वायुपुराण के सकलन-कर्ता सूत ने यह पाठ वृत्ति से लिया है, अथवा दोनो ने यह पाठ पुराने ग्रन्थो से लिया है।

ब्राह्मणों में इन ग्रन्थो का उल्लेख—शतपथ ब्राह्मण ११।५।६।८ का वचन है—

यदनुशासनानि विद्या वाकोवाक्यम् इतिहासपुराणं गाथा· · ।

तथा शतपथ १४।६।१०।६ का वचन है—

इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोका. सूत्राणि-अनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि ।

यहाँ ब्राह्मण ग्रन्थो के ऐसे पाठो की विस्तृत व्याख्या का स्थान नही है। शतपथान्तर्गत बृहदारण्यक उपनिषद् के अंग्रेजी अनुवादक मैक्समूलर, ऐगलिङ्ग, ह्यूम आदि तथा राधाकुमुद मुकर्जि आदि एतद्देशीय लेखक इन ब्राह्मण वचनो का यत्किञ्चित अर्थ भी समझ नही सके। इसी कारण इनमे से मैक्स-मूलर ने इनका अर्थ ही नही किया। विशाल सस्कृत वाङ्मय के व्यापक अध्ययन के विना यह बात थी भी असभव।

हम आगे इन वचनो के कुछ एक आवश्यक पदो का अति सक्षिप्त अर्थ करते है। उससे हमारे पक्ष की सत्यता स्वय स्पष्ट हो जायगी।

१. **अनुशासन**—इस शब्द से वे सब ग्रन्थ अभिप्रेत है, जो अनुशासन रूप मे शतपथ के काल के पूर्ववर्ती ऋषियो ने रचे। यथा—

(क) इति ह स्माह भगवान् शालिहोत्रोऽनुशासनम्।[1]
(ख) अथ शब्दानुशासनम्।
(ग) अथ योगानुशासनम्।

---

१. देखो, श्री पण्डित भगवद्दत्त जी का लेख, अश्वशास्त्र, हयवेद। वेद-वाणी, मार्गशीर्ष विक्रम २००८, पृ० ११।

(घ) अपह्नवे तद् द्विगुणं तन्मनोरनुशासनम् । मनु ८।१३९॥

अनुशासन शैली पर रचे अन्य अनेक शास्त्र भी थे । अत शतपथ से पूर्व, शालिहोत्र, भरद्वाजीय व्याकरण और मानवधर्मशास्त्र आदि अनुशासन ग्रन्थ थे ।

२. **विद्या**—वाजसनेय शतपथ के प्रवचनकर्ता याज्ञवल्क्य ने स्वरचित स्मृति मे चौदह विद्याए गिनाई है । कही-कही विद्याएँ अठारह कही है । इस शब्द के अन्तर्गत वे सब विद्याएँ समझनी चाहिएँ । इनमे अनेक धर्मशास्त्र, न्याय, मीमासा और वेदाङ्ग आदि सम्मिलित है ।

३. **सूत्राणि**—इस शब्द के अन्तर्गत आयुर्वेद, ज्योतिष और अर्थशास्त्र पर समझे जाते है । यथा—

(क) आयुर्वेद ग्रन्थो मे सूत्र, सग्रह और भाष्य मिलते हैं । पूर्व पृष्ठ २८६ पर यह बात स्पष्ट की गई है ।

(ख) अर्थशास्त्र के ग्रन्थ भी सूत्र ग्रन्थ थे । आचार्य कौटल्य अपने अर्थ-शास्त्र के अन्त मे लिखता है—

स्वयमेव विष्णुगुप्तः चकार सूत्रं च भाष्यं च ।

अर्थात्—कौटल्य विष्णुगुप्त ने स्वय ही सूत्र रचे और उन पर अपना भाष्य किया ।

(ग) महाभारत, सभापर्व ५।१०९, ११० मे हस्तिसूत्र, अश्वसूत्र, रथ-सूत्र, धनुर्वेद सूत्र और यन्त्रसूत्रो का उल्लेख है ।

ये सब ग्रन्थ भी सूत्राणि पद से अभिप्रेत हैं ।

(घ) ज्योतिष-विषयक पराशर सहिता मे लिखा है—

यत्सूत्रमुक्तं भगवता युद्धम् इति ।[1]

इससे निश्चित होता है कि अनेक ज्योतिष ग्रन्थ भी सूत्राणि पद से अभिप्रेत है ।

राधाकुमुद का अधूरा अर्थ—श्री राधाकुमुद मुखोपाध्याय लिखते है—

"Sutra (or prose formulae) used in the Brhd. Up. in the sense of a work of rules for the guidance of sacrifices and other ritual."

अर्थात्—सूत्राणि का अर्थ है—बृ० उप० २।३।१०॥ ४।१।६ तथा ४।५।११ मे वर्णित यज्ञो के नियमो के प्रदर्शक ग्रन्थ ।

---

१. अद्भुतसागर, पृ० २०८ पर उद्धृत ।

इस अर्थ की अपेक्षा मुखोपाध्याय जी यदि कल्पसूत्र अर्थ करते, तो कुछ ठीक होता। पर उनका prose formulae अर्थ सर्वथा अस्पष्ट है।

४. **व्याख्यानानि**—इस शब्दान्तर्गत वे ग्रन्थ है, जो ग्रन्थारम्भ में **व्याख्यास्यामः** का प्रयोग करते है।

५. **अनुव्याख्यानानि—अनुव्याख्यास्यामः** की शैली पर रचे ग्रन्थ।

अतएव जब ब्राह्मण स्वय अपने से पूर्वकाल का इतना साहित्य मानते हैं, तो मैक्समूलर, कीथ और विण्टर्निट्ज के पक्षपात पूर्ण लेखो का क्या मूल्य है।

वात्स्यायन प्रामाण्य—अत. वात्स्यायन मुनि का लेख सर्वथा सत्य है कि ब्राह्मण ग्रन्थो के प्रवक्ता ही आयुर्वेद के रचयिता थे। वात्स्यायन का पूर्ववर्ती अक्षपाद-गौतम जो द्वापर के अन्त मे जीवित था, स्वय इस बात का सकेत अपने न्याय सूत्र मे करता है।

वात्स्यायन का काल—पाश्चात्य लेखको ने वात्स्यायन का काल ईसा की चतुर्थ शती माना है। यह उपहास की बात है। हम नागार्जुन के काल-विषय में पहले पृ०२८० पर लिख चुके है। नागार्जुन अपने ग्रन्थों में वात्स्यायन के अनेक बचन उद्धृत करता है। अत. वात्स्यायन नागार्जुन का पूर्ववर्ती ठहरता है। हमारा विचार है कि वात्स्यायन विक्रम-सवत् से कई शताब्दी पूर्व का आचार्य था। इतने प्राचीन आचार्यों के स्वीकृत ऐतिहासिक तथ्य को मैक्समूलर के कल्पित-मत के कारण त्यागा जाए, यह विद्वानो को शोभा नहीं देता।

अत. हमारे इस इतिहास में पुराने ऋषियो के वैदिक, लौकिक आदि अनेक विषयो पर रचे ग्रन्थों का जो वर्णन है, वह सत्य इतिहास का स्वल्प-प्रकाशन है।

इति कविराज सूरमचन्द्रकृते आयुर्वेदेतिहासे प्रथमो भागः समाप्तः

परिशिष्ट

१. हरिचन्द्र भट्टार।
|
२ अङ्गिरि, हिमदत्त (भीमदत्त ? भासदत्त ? भगदत्त ?), स्वामिदास, क्षीरस्वामिदत्त (=चरक वार्तिककार)
|
३ आषाढ वर्मा, सुवीर, सुकीर, सुधीर, नन्दि, वराह, चेल्लदेव। अमितप्रभ (चरक न्यास-कार)
|
४ वाग्भट, अच्युत (आयुर्वेदसार कर्ता)
|
५. जेज्जट, तीसट, अमृतमाला।

६ रविगुप्त, चन्द्रट (योगरत्न समुच्चय-कर्ता)
|
७ ईश्वरसेन (स०५७० से पूर्व) चरक स०-व्याख्याता। धर्मकीर्ति का गुरु।
|
८ ईशानदेव (=ईशान चन्द्र) (स० ७५०)
|
९ गयदास (पजिका-कार), भास्कर (महापञ्जिका-कार), माधवकर (सुश्रुत टिप्पनकार)
|
१० कार्तिक कुण्ड
|
११ ब्रह्मदेव, गदाधर, वृन्द, जिनदास (कर्मदण्डी-कर्ता)।
|
१२ चन्द्रनन्दन (सवत् १०००) पदार्थ-चन्द्रिका-कार। गोवर्धन (योगशत व्याख्या कर्म-माला), नरदेव=नरदत्त।
|
१३ चक्रपाणि, विजयरक्षित (सवत् ११०० के समीप), बकुल-कर, त्रिलोचन।
|
१४ श्रीकण्ठदत्त, निश्चल-कर (सवत् ११७०)
|
१५ अरुणदत्त
|
१६ डल्हण
|
१७ गुणाकर, श्वेताम्बर जैन (सवत् १२९६) नागार्जुन कृत योगमाला का टीकाकार, वोपदेव–पिता केशव।
|
१८ हेमाद्रि (संवत् १३२०), वोपदेव।
|
१९ शिवदास (सवत् १५५०)
|
२० नारायण

यह वृक्ष सख्या ४–२० तक सुदृढ प्रमाणो पर आश्रित है। सख्या २, ३ के अन्तर्गत नामो का क्रम अधिक सामग्री मिलने पर ठीक निश्चित हो सकेगा। सख्या १ का भट्टार हरिश्चन्द्र प्रथम शती विक्रम का ग्रन्थकार था। दृढबल आदि उस से बहुत पूर्व हो चुके थे। इस वृक्ष के सब उपयोगी प्रमाण भाग द्वितीय मे उपस्थित किए जाएँगे। अत्यावश्यक समझ कर इस मूल अन्वेषण को यही दे दिया है।